

शैक्षिक संस्कारों के परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति:
एक विवेचनात्मक अध्ययन



पी-एच.डी. (वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग)

उपाधि हेतु

शोध-प्रबन्ध

2024

शोध निर्देशक

डॉ. प्रभाकर पाण्डेय

विभागाध्यक्ष

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग

शोधार्थी

रास बिहारी शरण पाण्डेय

नामांकन संख्या: En21-00058

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग

सनातन धर्म एवं भारतीय ज्ञान अध्ययन प्राध्ययन केन्द्र

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

साँची, रायसेन (म.प्र.)



शोधार्थी द्वारा घोषणा पत्र

मैं एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि यह शोध-कार्य 'शैक्षिक संस्कारों के परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति: एक विवेचनात्मक अध्ययन' डॉ. प्रभाकर पाण्डेय (शोध निर्देशक) विभागाध्याक्ष, 'वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग' के निर्देशन में किया गया है। यह मेरा मौलिक शोध कार्य है, जिसे विभागीय शोध समिति द्वारा अनुमोदित किया गया है।

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार इस शोध-प्रबन्ध में किसी भी प्रकार का ऐसा तथ्य उद्धृत नहीं किया गया जो इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय के समक्ष किसी भी उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया हो।

साथ ही मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि—

1. मैंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 2009 के मापदण्डों के अनुसार कोर्सवर्क सफलतापूर्वक पूर्ण किया है।
2. मैंने शोध प्रबन्ध अन्तिम रूप से जमा करने के पूर्व विभागीय शोध समिति के समक्ष प्रस्तुति दी है और दिये गये निर्देश एवं सुझावों के आधार पर संशोधन को अपने शोध कार्य में सम्मिलित किया है।
3. मैंने शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित दो शोध पत्रों का प्रकाशन ISSN/रेफर्ड जनरल में कराया है जिसकी छायाप्रति शोध प्रबन्ध के अन्त में संलग्न है। मैंने शोध विषय से सम्बन्धित राष्ट्रीय संगोष्ठी में शोध-पत्र भी प्रस्तुत किया है।

4. साथ ही मैं यह घोषणा करता हूँ कि प्रस्तुत शोध—प्रबन्ध में कोई भी कंटेंट, किसी अन्य शोध प्रकाशित सामाग्री का हिस्सा नहीं है, यदि साहित्यिक चोरी के अन्तर्गत कोई भी कंटेंट पाया जाता है, तो उसके लिये मैं स्वयं उत्तरदायी रहूँगा ।

स्थान : साँ.बौ.भा.ज्ञा.अ.वि.वि., साँची, म.प्र.

शोधार्थी

दिनांक

रास बिहारी शरण पाण्डेय

नामांकन संख्या: En21-00058

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग



प्रमाण पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि शोध विषय 'शैक्षिक संस्कारों के परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति: एक विवेचनात्मक अध्ययन' रास बिहारी शरण पाण्डेय द्वारा किया गया शोध कार्य है, जिसे साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय में पी-एच.डी. (वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग) उपाधि के लिये मेरे निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

मेरी जानकारी के अनुसार—

1. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य प्रतीत होता है।
2. यह शोध कार्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग मापदण्डों एवं निर्देशों को पूरा करता है।
3. विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. की उपाधि से सम्बन्धित अध्यादेश की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

स्थान : साँ.बौ.भा.ज्ञा.अ.वि.वि., साँची, म.प्र.

हस्ताक्षर

दिनांक

शोध निर्देशक

डॉ. प्रभाकर पाण्डेय

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग



आभार

सर्वप्रथम मैं भगवान श्री राम के चरणों में यह शोध कार्य समर्पित करता हूँ और उनको दण्डवत् प्रणाम करता हूँ जिनकी चेतना से चैतन्य होकर मैं इस शोध कार्य का वाहक बन पाया हूँ।

तत्पश्चात् मैं आदरणीय श्री चम्पत राय 'बाबूजी' (महासचिव—श्रीराम जन्मभूमि तीर्थक्षेत्र श्री अयोध्या धाम) का हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ कि जिनकी प्रेरणा व आशीर्वाद से यह कार्य पूर्ण कर सका।

मैं अपने पिता श्री कपीन्द्र शरण पाण्डेय एवं माता श्रीमती रेनू पाण्डेय के आशीर्वाद, प्रेरणा, प्रोत्साहन व वात्सल्य के लिये सहृदय आभार व्यक्त करता हूँ। इसी क्रम में साँची विश्वविद्यालय के कुलगुरु प्रो. वैद्यनाथ लाभ महोदय के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके नेतृत्व में शोधकर्ता को उत्तम शैक्षणिक वातावरण प्राप्त हुआ। समय—समय पर शोध सम्बन्धित मार्गदर्शन हेतु कुलसचिव प्रो. अलकेश चतुर्वेदी, अधिष्ठाता प्रो. नवीन कुमार मेहता एवं शोध समन्वयक डॉ. देवेन्द्र सिंह तथा शोधनिर्देशक डॉ. प्रभाकर पाण्डेय (विभागाध्यक्ष, वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग) एवं समस्त गुरुजनों, विभाग के लिपिक श्री धम्मदीप सहारे सहित साँची विश्वविद्यालय परिवार के सभी सदस्यों का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिनके प्रेरणा, प्रोत्साहन, व प्रयास से मेरा यह शोधकार्य सम्पन्न हुआ।

यह मेरा परम् सौभाग्य है कि मुझे यह शोधकार्य डॉ. प्रभाकर पाण्डेय (वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग) के निर्देशन में पूर्ण करने का अवसर

प्राप्त हुआ जो स्वयं ज्ञान से परिपूर्ण एवं श्रेष्ठ प्राध्यापक हैं, आपने बहुमूल्य समय इस शोधकार्य में देकर मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया है, जिसके लिये मैं जीवनपर्यंत हृदय से आपका आभारी रहूँगा।

मैं अपने परिवार तथा सभी मित्रजनों का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

अन्त में उन सभी ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों, शोध पत्र एवं शोधार्थियों, कर्मचारियों का मैं आभारी हूँ जिनका इस शोध-कार्य को सम्पन्न करने में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से यत्किंचित सहयोग प्राप्त हुआ। इस शोध-प्रबन्ध की पूर्णता मेरे स्वयं के प्रयास से संभव नहीं थी। अतः इस शोध-प्रबन्ध के कार्य में जिन महानुभावों का मार्गदर्शन, निर्देशन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करना परमकर्तव्य एवं सौभाग्य समझता हूँ।

सादर धन्यवाद

शोधार्थी

रास बिहारी शरण पाण्डेय

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग

सर्वाधिकार

मैं रास बिहारी शरण पाण्डेय एतद्द्वारा घोषणा करता हूँ कि साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची, रायसेन, मध्यप्रदेश द्वारा इस शोध-प्रबन्ध “शैक्षिक संस्कारों के परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति: एक विवेचनात्मक अध्ययन” को शैक्षणिक/ अनुसन्धान उद्देश्य से इलेक्ट्रॉनिक या प्रिंट प्रारूप में उपयोग करने का अधिकारी होगा।

नोट : शोधार्थी अथवा अन्य द्वारा शोध-प्रबन्ध के आँकड़ों/निष्कर्ष का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से किया जा सकेगा बशर्ते विश्वविद्यालय के सर्वाधिकार का उल्लेख किया जाए।

स्थान : साँ.बौ.भा.ज्ञा.अ.वि.वि., साँची, म.प्र.

शोधार्थी

दिनांक

रास बिहारी शरण पाण्डेय

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग



Established by Ministry of Culture Govt. of Madhya Pradesh
Recognised by UGC under section 2(F) & 12(B)

Sanchi University of Buddhist-Indic Studies साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

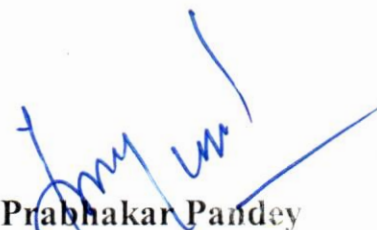
No ¹⁹⁷⁴...../AE&HD/SUBIS/2024

Sanchi, Date: 14/10/2024

Certificate

TO WHOMSOEVER IT MAY CONCERN

This is to certify that **Mr. Ras Bihari Sharan Pandey** having Enrollment Number/Registration Number En21-00058 in the Department of Alternative Education & Holistic Development, School of Sanatan Dharm and Indic Studies, Sanchi University of Buddhist-Indic Studies, Sanchi, Raisen, Madhya Pradesh, has Made **Pre-Ph.D. Presentation Seminar** on **07/10/2024** on our University Campus under the supervision of **Dr. Prabhakar Pandey** before the DRC members, faculty members and research Scholars for feedback and comments according to UGC Regulation 2016 on his Research topic "शैक्षिक संस्कारों के परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति : एक विवेचनात्मक अध्ययन".


Dr. Prabhakar Pandey
HoD

Department of Alternative Education & Holistic Development
SUBIS, Sanchi



The Report is Generated by DrillBit Plagiarism Detection Software

Selected Language

Hindi

Submission Information

Author Name	रास बिहारी शरण पाण्डेय
Title	शैक्षिक संस्कारों के परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति : एक विवेच नात्मक अध्ययन
Paper/Submission ID	2409153
Submitted by	coordinator.inflibnet@subis.edu.in
Submission Date	2024-10-13 19:05:55
Document type	Thesis

Result Information

Similarity	8%
------------	----

A Unique QR Code use to View/Download/Share Pdf File



विषयानुक्रमणिका

अध्याय 1

1-30

शोध अध्ययन की पृष्ठभूमि एवं रूपरेखा

- 1.1. शिक्षा का स्वरूप
- 1.2. शोध अध्ययन की आवश्यकता
- 1.3. शोध अध्ययन का उद्देश्य
- 1.4. शोध प्रश्न
- 1.5. शोध प्रविधि

अध्याय 2

31-58

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का स्वरूप और विकास

- 2.1 गुरुकुल शिक्षा का स्वरूप
- 2.2 गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शिक्षा के उद्देश्य
- 2.3 गुरुकुल शिक्षा का संगठन और प्रणाली
- 2.4. गुरुकुल शिक्षा का ऐतिहासिक विकास
- 2.5. गुरुकुल शिक्षा का विकास

अध्याय 3

59-101

शैक्षिक संस्कारों की अर्थवत्ता

- 3.1 संस्कारों का स्वरूप
- 3.2 षोडश संस्कार
- 3.3. शैक्षिक संस्कारों का वैशिष्ट्य
- 3.4. दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक महत्व
- 3.5. शैक्षिक संस्कारों का आधुनिक शिक्षा में अनुप्रयोग

अध्याय 4:

102-130

शैक्षिक संस्कारों के परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति का विश्लेषण

- 4.1. गुरुकुल शिक्षा में संस्कारों की भूमिका
- 4.2. छात्रों के नैतिक और व्यक्तित्व विकास में गुरुकुल का योगदान
- 4.3. गुरुकुलों में संस्कारों के विकास हेतु प्रणालियाँ
- 4.4. संस्कारों के सन्दर्भ में गुरुकुल और आधुनिक शिक्षा की तुलना
- 4.5. भविष्य में संस्कार आधारित शिक्षा की संभावनाएं

अध्याय 5

131-156

उपसंहार एवं सुझाव

- 5.1. शोध सारांश
- 5.2. शैक्षिक संस्कारों की उपादेयता
- 5.3. वर्तमान शिक्षा प्रणाली हेतु सुझाव
- 5.4. भविष्य के अनुसंधान के लिए सुझाव
- 5.5. निष्कर्ष

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

157-178

अध्याय 1

शोध अध्ययन की पृष्ठभूमि एवं रूपरेखा

- 1.1. शिक्षा का स्वरूप
- 1.2. शोध अध्ययन की आवश्यकता
- 1.3. शोध अध्ययन का उद्देश्य
- 1.4. शोध प्रश्न
- 1.5. शोध प्रविधि

अध्याय 1

अध्ययन की पृष्ठभूमि एवं रूपरेखा

ज्ञान कोई नवीन प्रत्यय नहीं जिसका सृजन किया जा सके यह समष्टि में निहित वो गुण है जो सदैव विद्यमान रहता है। समष्टि का गुण होने के कारण व्यष्टि भी इससे अक्षुता नहीं है, अर्थात् समष्टि का प्रत्येक कण ज्ञानवान बनने की प्रक्रिया में संलग्न है, जिसका प्रतिफल उसके व्यवहार में परिमार्जन के रूप में दिखाई पड़ता है। जिज्ञासु मस्तिष्क अन्तर्ज्ञानि हृदय, चेतनशील आत्मा और छानबीन करने वाले विवेक का विकास कर सौन्दर्यात्मक और आध्यात्मिक उत्कर्ष द्वारा पूर्ण मानव का विकास शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है। वैदिक वाङ्मय के तत्त्वावलोकन से यह ज्ञात होता है कि सत्य सम्वेष्टित धर्माचरण के अनुपालन द्वारा अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति का विकास वैदिक शिक्षा की मूल-अवधारणा रही है, जिससे अध्यात्मिकता से पोषित ज्ञान का विस्तार किया जा सके। बृहदारण्यकोपनिषद् में इस का दृष्टान्त है, जिसमें 'विद्यया देवलोकः' अर्थात् विद्या से देव लोक की तथा 'कर्मणा पितृलोकः' अर्थात् कर्म अविद्या से पितृलोक की प्राप्ति होती है। इस निर्देश द्वारा उभय पक्षात्मक व्यवहारिक और पारमार्थिक दृष्टि के विकास का मार्ग प्रशस्त किया गया है, जिसका मुख्य ध्येय पंचकोश अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय का विकास करना है। इस प्रकार वैदिक आदर्श के अनुसार शिक्षा भौतिक उपलब्धियों तक ही सीमित न रह कर आत्मचिन्तन का उच्च लक्ष्य निर्धारित करती है, तदनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य आत्मज्ञान की उपलब्धि है, जिसे केवल पुस्तकीय ज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।

सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय और उससे सम्बद्ध विद्याओं का परम प्रतिपाद्य विषय आत्माभिव्यक्ति है। जो आत्माभिव्यक्ति नहीं जानता वह वेद पढ़कर भी क्या करेगा? जैसा कि ऋग्वेद-1/164/39 में कहा भी गया है - "जो केवल वेद की ऋचाओं का उच्चारण ही करता है, वह अन्तस् में सन्निहित परमात्मतत्त्व को नहीं पहचानता।" शिक्षा के इन्हीं उदात्त भावों को संजोए प्राचीन भारतीय शिक्षा की संकल्पना है। प्राचीन भारतीय शिक्षा की अवधारणा व्यक्तित्व के सर्वांगीण पक्षों के संवर्द्धन द्वारा पुरुषार्थचतुष्टयांतर्गत धर्म-अर्थ और काम रूप सांसारिक साधनों का समभाव से उपभोग करते हुए अपनी चेतना के अधिकतम

विस्तार द्वारा परम-पद को प्राप्त करना है। प्राचीन समय से भारतीयों की दृष्टि में शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का साधन रही है। इसका उद्देश्य मात्र पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करना नहीं अपितु मनुष्य का शारीरिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक विकास करना था। कहा गया है कि शास्त्रों का पण्डित भी मूर्ख है यदि उसने कर्मशील व्यक्ति के रूप में निपुणता प्राप्त नहीं की है।

शिक्षा का स्वरूप 1.1.

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा।

यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ॥

शिक्षा के द्वारा मनुष्य आजीविका का उत्तम साधन प्राप्त करता है। किन्तु इसे मात्र आजीविका का साधन मानना भारतीयों की दृष्टि में उचित नहीं था। ऐसी मान्यतावालों की निन्दा की गई है। प्राचीन विचारकों की दृष्टि में शिक्षा मनुष्य के साथ आजीवन रहने वाली वस्तु है। वास्तविक अध्यापक वह है जो अपने जीवन के अन्त तक विद्यार्थी बना रहता है कहा भी गया है – ‘यावज्जीवमधीते विप्रः’। इस प्रकार प्राचीन भारतीयों की दृष्टि में शिक्षा व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उत्थान का प्रमुख माध्यम स्वीकार की गई थी। शिक्षा के लिए अन्य शब्द विद्या का प्रयोग किया जाता है। ‘विद्या धनं सर्वधनं प्रधानम्’ यह उक्ति विद्या के महत्त्व को दर्शाती है। भर्तृहरि ने कहा है –

विद्यानाम् नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं

विद्याभोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः ।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता

विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्याविहीनः पशुः ॥ (नीतिशतक. 20)

अर्थात् विद्या ही वह साधन है जो मानव के सम्पूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति करने में सहायक है। यह मातावत् संरक्षिका है, पितावत् सत्यप्रदर्शिका है, कान्ता के समान सुखद एवं मनोरञ्जक है। यह दुर्गुणों का नाश कर मन को पवित्र करनेवाली, वैभव एवं कीर्ति प्रदान

करनेवाली है। यह सभी अभीष्टों की पूर्ति करनेवाली, सभी गुणों से हमें युक्त करनेवाली, सभी सुखों की प्रदाता है। इस सन्दर्भ में भोजप्रबन्ध में वर्णित है-

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते,

कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्।

लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥

1.1.1. शिक्षा का अर्थ और परिभाषा

शिक्षा का संस्कृत में मूल 'विद्या' का ही समानार्थी है। यह शिक्ष (विद्या उपादाने) + अ (गुरोश्च हलः पाणिनी 3/3/103) + टाप् प्रत्यय से बना है।¹ अर्थात् विद्या प्राप्त करने का साधन ही शिक्षा है। अविद्या का निराकरण विद्या का अन्य फल है। भारतीय चिंतन में शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान का प्रसार नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य व्यक्ति के समग्र विकास को करना है। पाणिनीय शिक्षा में 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग वेदों के सही उच्चारण और पठन के लिए है। वेदों के मंत्रों के उच्चारण में स्वर की त्रुटि का बड़ा प्रभाव होता था, इसलिए अक्षरों और स्वरों के सही उच्चारण की शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया था। इस प्रकार की शिक्षा का महत्व वेदों के सस्वर पाठ के दौरान समझा जा सकता है, जिसमें एक गलत उच्चारण से मंत्र के अर्थ में भिन्नता आ सकती है।

1.1.2. शिक्षा का व्यापक दृष्टिकोण

प्राचीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप व्यापक था और यह केवल विद्या प्राप्ति तक सीमित नहीं था। यह जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक, और बौद्धिक विकास का एक महत्वपूर्ण माध्यम था। वेदों और उपनिषदों में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य स्व का परिमार्जन और मोक्ष की प्राप्ति था। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की शिक्षा दी जाती थी, जिसे पुरुषार्थ चतुष्टय के रूप में जाना जाता था। इस प्रकार, शिक्षा केवल व्यक्ति को जीविकोपार्जन के लिए तैयार नहीं करती थी, बल्कि उसे एक संपूर्ण

जीवन जीने के योग्य बनाती थी⁴। शिक्षा के ही समतुल्य विद्या शब्द को स्पष्ट करते हुए मधुसूदन ओझा जी ने ब्रह्मसमन्वय में लिखा है कि 'विद्यास्ति ज्ञानविज्ञानदर्शनः संस्क्रिसात्मनि' अर्थात् ज्ञान-विज्ञान एवं दर्शन के द्वारा आत्मा में एक प्रकार का संस्कार उत्पन्न करना विद्या है।

वेद के छः अंगों में से एक अंग शिक्षा को स्पष्ट करते हुए कहा गया है- 'शिक्ष्यते अनया इति शिक्षा' अर्थात् जिसके द्वारा वर्णादि के उच्चारण का ज्ञान हो अथवा 'शिक्ष्यन्ते इति शिक्षा' जिसके द्वारा अकारादि वर्ण उदात्तादि स्वर, ह्रस्व, दीर्घ, मात्रा आदि का ज्ञान हो, उसे शिक्षा कहा जाता है। आधुनिक सन्दर्भ में प्रयुक्त शिक्षा के लिए प्राचीन भारतीय शिक्षा में 'विद्या' शब्द का प्रयोग किया जाता था। इसीलिये कहा है 'विद्ययाऽमृतमश्नुते'। इस विद्या को बृहदारण्यकोपनिषद् में परिभाषित करते हुए कहा है कि महान् की श्वास भूत उत्पन्न ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराणविद्या, उपनिषद्, श्लोक (स्मृति) सूत्र (कल्पादिसूत्र) और उनके अनुव्याख्यान ग्रन्थ ये सभी विद्या के अन्तर्गत आते हैं। इनका ज्ञान प्राप्त करना ही विद्या प्राप्ति है।ⁱⁱ विद्या को परिभाषित करने के उपरान्त विद्या देने की प्रक्रिया का भी उपनिषदों में वर्णन किया गया है। विद्या देने की प्रक्रिया को उपनिषदों में अधिविद्या कहा है। अधिविद्या को स्पष्ट करते हुए तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि विद्या का पूर्वरूप आचार्य है, जो दिया जाने वाला विषय अर्थात् विद्या है वही संधि है। एवं उस विषय या विद्या का अपने शिष्य के हृदय में हृदयंगम करवाने हेतु किया गया प्रवचन ही संधान है। अतः आचार्य, विषय या विद्या एवं तृतीय आचार्य के द्वारा किया गया इनका प्रवचन। इन तीनों का सकल स्वरूप ही अधिविद्या है। अतः अधिविद्या की परिभाषा शिक्षा प्राप्ति की प्रक्रिया के प्रधान तीन अवयवों को बताती है।ⁱⁱⁱ

1.1.3. शिक्षा का उद्देश्य

प्राचीन भारतीय जीवन दर्शन में मोक्ष परम पुरुषार्थ था। इसीलिए प्राचीन भारतीय शिक्षा का प्रधान उद्देश्य मोक्ष था। कहा भी गया है "सा विद्या या विमुक्तये"। शिक्षा का सम्बन्ध जीवन की सम्पूर्णता से एवं उसके भौतिक तथा आध्यात्मिक विस्तार से था। अथर्ववेद में विद्या अथवा शिक्षा तथा उसके परिणाम का उल्लेख किया गया है जिसमें श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धन, आयु, और अमृतत्व को सम्मिलित किया गया है।^{iv}

मनुष्य का चरित्र निर्माण भी प्राचीन शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य था। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपनी तामसी और पाश्विक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रखता था और सद्सत् का भेद कर सकने में समर्थ होता था। ब्रह्मचर्य को धारण करने वाला ही तेजोमय ब्रह्म को धारण करने में समर्थ होता था, और उसमें समस्त देवता अधिवास करते थे।^v

शिक्षा धर्म को धारण की शक्ति के साथ-साथ अभ्युदय, श्रेय एवं सिद्धि को प्रदान करती है, तथा भौतिकता, आध्यात्मिकता दोनों का संवर्धन करती है। मनु ने शौच, पवित्रता, आचार, स्नान क्रिया आदि अग्निकार्य और संधोपासन को ब्रह्मचारी के धर्म के रूप में प्रतिपादित किया है। इसके साथ ही उसे धर्म के पालन में प्रमाद न करने का निर्देश दिया है, जिससे उसके व्यवहार में धर्मनिष्ठा बनी रहे।^{vi} छान्दोग्योपनिषद् में धर्म के तीन स्कन्ध अथवा आधार बताये गये हैं, जिसमें पहला स्कन्ध यज्ञ, अध्ययन और दान दूसरा स्कन्ध तप अर्थात् कष्ट और द्वन्द में समरूप एवं तीसरा स्कन्ध आचार्यकुल में रहते हुए अपने शरीर को अत्यंत क्षीण कर देना था। इन स्कन्धों का अनुसरण अत्यंत पुण्य को देने वाला था।^{vii} साथ ही इन स्कन्धों के पालन से सामाजिक सांस्कृतिक जीवन का उत्कर्ष भी होता था। तीन प्रकार के ऋण- ऋषिऋण, देवऋण, एवं पितृऋण की संकल्पना इन्हीं उदात्त भावों को परिपुष्ट करने के लिए प्रचलित थी।^{viii} तैत्तिरीय संहिता में ब्रह्मचर्य द्वारा व्यक्ति को ऋषि ऋण अथवा संस्कृति के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए निर्देश है।^{ix} इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य व्यक्ति के जीवन के सभी क्षेत्रों में उत्तरोत्तर उन्नयन द्वारा सर्वांगीण विकास कर परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त करने में सहयोग करना था।

1.1.4. शिक्षा का महत्त्व

शिक्षा का मूल प्रयोजन मानव के तीनों आयामों बुद्धि, मन तथा शरीर को स्वस्थ बनाकर उसे सुसभ्य, सुसंस्कृत तथा विकासोन्मुख बनाना है। मनुष्य में शिक्षा को मात्र लौकिक ही नहीं, अपितु पारलौकिक कल्याणार्थ महत्त्व प्राप्त होने से इसकी प्रासंगिकता अधिक है। मनु ने भी कहा है कि मनुष्य का महत्त्व ही तब है, जब वह ज्ञान प्राप्त करता है, ज्ञान ही उसे मानवता प्रदान करता है।^x साथ ही नित्य शास्त्रों का पठन करने से बुद्धि और धर्म का शीघ्र विकास होता है।^{xi}

भारतीय संस्कृति और समाजिक जीवन पद्धति में संस्कार का अत्यंत महत्त्व है। भारतीय परम्परा में विद्यारम्भ भी एक संस्कार के अन्तर्गत है, अतः उसके लिये भी विशद विवेचन धर्मशास्त्रों में हमें प्राप्त होता है। धर्मशास्त्रों के अंतर्गत विद्या प्राप्ति सम्बन्धित संस्कारों का विषद वर्णन इसके महत्त्व को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करता है। “विद्यारम्भस्तु कर्त्तव्यो यथोक्ततिथिवासरे” विद्यारम्भ के लिये दिवस, तिथि आदि का गम्भीरतापूर्वक विचार इसका स्पष्ट प्रमाण है। बृहस्पति कहते हैं कि उपनयन होने से पूर्व बालक को अक्षर ज्ञान कराना चाहिये।^{xii} आपस्तम्ब ने उपनयन का विद्या प्राप्ति के लिये आवश्यक श्रौत संस्कार कहा है।^{xiii} इस प्रकार उपनयन से पूर्व अक्षर ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि उपनयन के उपरान्त विद्यार्थी को वेदों का अध्ययन करना है। शिक्षा संस्कार का महत्त्व इसलिए भी था क्योंकि यह संस्कार आचार्य और शिष्य के मध्य उस भावनात्मक एकता को पुष्ट करता था, जिससे बुद्धि के उत्कृष्ट स्वरूप को उपलब्ध हुआ जा सके। आचार्य का यह संकल्प कि मैं अपने व्रत में तुम्हारे हृदय का अवधान करता हूँ, जिससे तुम्हारा चित्त (अनुसंधानात्मक अन्तःकरण) मेरे चित्त का अनुगामी हो, तुम मेरे वचनों को एकाग्र मन होकर सुनो, बुद्धि का बृहस्पति तुम्हें मेरे प्रति शुभ भावों के साथ प्रेरित करे।^{xiv} अध्ययन को स्पष्ट करते हुए कात्यायन कहते हैं कि अध्ययन का अर्थ मात्र पठन नहीं है, और न ही अक्षर ज्ञान है, अपितु अध्ययन का तात्पर्य है पठित का अर्थ के साथ ग्रहण करना।^{xv}

1.1.5. शिक्षक के लक्षण व प्रकार

शिक्षण प्रक्रिया को सम्पादित करानेवाले व्यक्तित्व को शिक्षक कहा जाता है। प्राचीन भारतीय शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक के तीन स्तर प्राप्त होते हैं सर्वोच्च स्तर आचार्य का था, द्वितीय स्तर पर उपाध्याय और तृतीय स्तर पर गुरु को कहा गया है। मनु ने आचार्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि जो उपनयन करके द्विजत्व प्रदान करे और कल्प और रहस्य सहित वेदों का अध्यापन करवाये वही आचार्य है।^{xvi} इसी प्रकार के लक्षण गौतम-गृह्यसूत्र और वसिष्ठ-धर्मसूत्र में भी कहे गए हैं। आचार्य के लक्षण करने के उपरान्त धर्मशास्त्रकारों ने आचार्य, उपाध्याय और गुरू में भेद किया है कि जो एक वेद का सांगोपांग अध्ययन करवाए, वह उपाध्याय कहलाता है।^{xvii} उपाध्याय शिक्षण कार्य वृत्ति अर्थात् जीविकोपार्जन हेतु किया करता था। तन्त्रसार के अनुसार गुरु शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार से की गई है- ‘ग’ अक्षर सिद्धिदायक कहा गया है और ‘र’ पाप का हरण करनेवाला

है। 'उ' अव्यक्त विष्णु है। इस प्रकार उन तीन अक्षरों से बना यह शब्द परमगुरु का वाचक है।^{xviii} प्राचीन काल से भारत का अस्तित्व एक विराट गुरुकुल के रूप में ही विकसित हुआ। एक ऐसा गुरुकुल जहां गुरु व शिष्य दोनों अनन्य भाव से ज्ञान की साधना में निमग्न रहते हैं। भारत को समझना है तो गुरु-तत्व को समझना होगा और यदि गुरु-तत्व को समझना है तो फिर भारत को समझना पड़ेगा। प्राचीन शिक्षा पद्धति में शिक्षा केन्द्रों की भव्यता आचार्यों की गुणवत्ता व छात्रों के प्रति उनकी समर्पण निष्ठाओं के मानदण्ड के आधार पर ही परखी जाती रही। वस्तुतः शिक्षालयों की अपेक्षा शिक्षक ही वह चाक है जिस पर मानवता का वास्तविक स्वरूप आकार लेता है। यही कारण रहा कि इस देश में गुरुओं को जितना सम्मान मिला, उनके प्रति जितनी प्रबल श्रद्धा रही उसका सहस्रांश भी विश्व में अन्यत्र कहीं देखने व सुनने को नहीं मिलता है। विश्व के अन्य हिस्सों में कुशल विशेषज्ञ मिल सकते हैं, शिक्षण तकनीकी में पारंगत पेशेवर अध्यापक भी मिल सकते हैं किन्तु अपने आचरण मात्र से ही छात्रों के अन्तःकरण में ज्ञान के उद्गात गुणों की लौ को प्रज्वालित कर देने वाले आचार्य केवल भारतवर्ष में ही उपलब्ध हो सकते हैं (आचिनोति च शास्त्रार्थन शिष्यान् ग्राहयते सुधीः स्वयमाचरते चैव स आचार्य इति स्मृतः -निरुक्त-1.2.2)। किंचित् गुरु के इसी दिव्य स्वभाव के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए भारतीय मानस ने उन्हें त्रिदेवों से भी उच्च स्थान, परमब्रह्म, के समकक्ष मानकर उनकी अभ्यर्थना की। भारतीय मान्यताओं में अध्यापन कार्य किसी व्यवस्था या प्रणाली द्वारा तय किए गए दायित्व को कुशलतापूर्वक निभाने या फिर पाठ्यपुस्तकों में वर्णित संदर्भों व उससे संबन्धित सूचनाओं को रटा देने की योग्यता मात्र तक सीमित नहीं रहती है। बल्कि भारत में अध्यापन आत्मत्याग द्वारा प्रज्ञावान पीढ़ी के सृजन में निरन्तर प्रयत्नशील बने रहने की एक सतत प्रक्रिया है। यह एक ऐसा दायित्व है जिसके पालन में व्यक्तिगत अभिलाषाएं एवं आकांक्षाएं प्रायः गौण हो जाया करती हैं। भारतीय मनीषा की यह मान्यता रही कि जब तक व्यक्ति के अन्दर अध्यापन करने की ऐसी ज्वलन्त उत्कण्ठा न हो तब तक मात्र जीविकोपार्जन के क्षुद्र लक्ष्य को हासिल करने के लिए उसे अध्यापक नहीं बनना चाहिए। कालिदास ने इसी मन्तव्य को मालविकाग्निमित्रम् नामक नाटक में स्पष्ट करते हुए कहा है कि केवल आजीविका के लिए पढ़ाने वाले को व्यापारी ही कहा जाता है शिक्षक नहीं। वास्तविकता भी यही है कि सच्चा अध्यापक अन्तर्मन से समृद्ध होता है, अतः उसे बाह्य प्रलोभन प्रभावित नहीं करते हैं। व्यक्ति से परिवार, परिवारों से लोक तथा लोक से राष्ट्र एवं वैश्विक परिवेश का निर्माण

शिक्षक के इसी दायित्वपूर्ण बोध पर ही निर्भर होता है। इसीलिए वेद में कहा भी गया है कि वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः (यजुर्वेद-9/23)। वस्तुतः संसार में जितने भी प्रकार के काम हैं, वे सभी भौतिक समृद्धि के लिए किए जाते हैं, जबकि गुरु या आचार्य का यशस्वी पद तो केवल त्याग व बलिदान के आग्रही को ही प्राप्त हो सकता है। यहां तक कि माता-पिता अपने अंशदान द्वारा एक दैहिक संतान को जन्म देकर उसका लालन-पालन तो अवश्य करते हैं, किन्तु नश्वर देह वाले उस बालक को शिष्य के रूप में अंगीकार कर गुरु अपने आत्मदान द्वारा अमरत्व प्रदान कर देता है। इसलिए प्राचीनकाल में शिष्यों को प्रायः अमृतस्य पुत्राः कहकर ही सम्बोधित किया जाता रहा। इस सम्बन्ध में प्रमाण के रूप में आधुनिक काल के दो संदर्भ हमारे सामने उपस्थित होते हैं। पहला संदर्भ आचार्य चाणक्य का है जिसके संपर्क में आने के उपरान्त दासी मुरा का पुत्र सम्राट चन्द्रगुप्त के रूप में इतिहास में अमर हुआ, वहीं दूसरा उदाहरण विश्वनाथ दत्त के पुत्र नरेन्द्र का है जो ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के संसर्ग में आकार विश्व में विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार गुरु से उपकृत होने वाले छात्र प्रतिउत्तर में अपने लिये तो मात्र निरोगी आयु की कामना करते रहे किन्तु गुरु के लिए ईश्वर से अमरत्व प्रदान करने की याचना की – आयुरस्मासु देहि अमृतत्वम् आचार्य। गुरु या आचार्य के लिए आवश्यक इन्हीं अर्हताओं को ध्यान में रखते हुए ऋग्वेद के दशवें मंडल के 71वें सूक्त के ऋषि बृहस्पति आंगिरस आचार्यों के कर्तव्य को निर्धारण करते हुए कहते हैं कि उसे ऐसी विधा अपनानी चाहिए जिससे सभी छात्र अपनी क्षमताओं के हिसाब से विषय को सहजता से ग्रहण कर सकें। आचार्यों के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ क्रियात्मक ज्ञान की भी शिक्षा देनी चाहिए अन्यथा उनका ज्ञान बिना दूध देने वाली गाय जैसी ही हो जायेगी। इसलिए उन्हें अध्यापन में विचारात्मक, वर्णनात्मक, संवादात्मक, कथात्मक, क्रियात्मक, प्रयोगात्मक तथा रचनात्मक सभी शैलियों को समाविष्ट करना चाहिए (अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः। आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे हृदाइव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे॥)। इसके अतिरिक्त वेदों में आचार्य से संयमी, वाचस्पति (वाणी का स्वामी), वसुपति (गुणधर्म को जानने वाला), भूतकृत (चरित्र निर्माता), ज्ञाननिधि (विषयों पर अच्छी पकड़), मनुर्भव (मननशील व विचारक), वाक् तत्त्ववित् (भाषा विज्ञानी), दूरदर्शी एवं प्रसन्नचित्त आदि गुणों से सम्पन्न होने की भी अपेक्षा की गयी है। इसके साथ ही छात्रों से भी यह अपेक्षा की गयी है कि वह आचार्य द्वारा प्रदत्त ज्ञान को अध्ययन (अधिति), अनुशीलन (बोध), व्यवहारिक प्रयोग

(आचरण) के माध्यम से ग्रहण करते हुए लोक में इसको उचित रूप से सम्प्रेषित (प्रचारण) करने का प्रयत्न करें ताकि उनके द्वारा अर्जित ज्ञान का लाभ जन समुदाय भी उठा सके। बदलते सामाजिक परिवेश और भारतीय मूल्यों के बीच हमारी शिक्षा व्यवस्था को समावेशी बनाना अत्यावश्यक है। यह समावेशी व्यवस्था भारतीय प्राचीन ज्ञान परंपरा को लिए बिना नहीं चल सकती है, क्योंकि एक तरफ तो हम आधुनिकता के दौर में सरपट भागे जा रहे हैं, वहीं हमारी संस्कृति में निहित ज्ञान विज्ञान परंपरा को भूलते जा रहे हैं। इस अंधानुकरण में हमारी वही स्थिति हो चुकी है जैसाकि उपनिषदों में कहा गया है कि यदि दृष्टिहीन को रास्ता दिखाने वाला भी दृष्टिहीन हो तो लक्ष्य कैसे प्राप्त हो सकेगा।

1.1.6. विद्यार्थी के लक्षण

प्राचीन भारतीय शिक्षण व्यवस्था में विद्यार्थी के पर्याय के रूप में शिष्य, छात्र, अन्तेवासी आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। विद्यार्थी शब्द 'विद्या' उपपद 'अर्थ' धातु से 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' से 'णिनि' प्रत्यय करने पर बना है^{xix}, जिसका तात्पर्य गुरु को विद्या का धनी समझकर उनसे विनम्रतापूर्वक विद्या की याचना करना है। विद्या के प्रति उत्कट अनुराग और गुरु के प्रति शुश्रूषाभाव विद्यार्थी शब्द के अर्थ को ध्वनित करता है। 'शिष्य' शब्द 'शास्' धातु से 'क्यप्' प्रत्यय करने पर बना है। शिष्य का निर्वचन करते हुये कहा है 'दृ' शासितुं योग्यः शिष्यः। जिसका अर्थ है जिसको शासित किया जा सके। छात्र का निर्वचन करते हुये कहा है - गुरोर्दोषाणामावरणं छत्रमस्तच्छीलमस्य छात्रः। छात्रादिभ्यो णः।^{xx} छात्र उन्हें कहते थे, जो केवल स्वाध्यायरत होकर गुरुजनों के यत्किंचित् दोष पर भी आवरण देकर उनके यश को फैलाता है। अन्तेवासी का निर्वचन किया है-अन्ते गुरुसमीपे वसति तच्छीलः, पूर्ववत् 'णिनि' प्रत्यय। 'शयवासवसिश्चकालात्' से अलुक् करने पर अन्तेवासी शब्द बनता है।^{xxi} अन्तेवासी उसे कहा जाता था जो गुरु के समीप रहकर विद्याध्ययन करता था। इसे सर्वदा शंका-समाधान का अवसर प्राप्त होता था और निरन्तर शुश्रूषा करने का सुअवसर भी प्राप्त होता था।

भारतीय शिक्षा प्रणाली योग्य शिष्य को ही ज्ञान देने में उत्सुक रहा है। निरुक्त के संहितोपनिषद् में विद्या- ब्राह्मण संवाद के मन्त्रों में शिक्षा स्वयं शिक्षक को निवेदन कर रही है कि जो निम्न अवगुणों - गुणों में दोषदर्शी, कुटिल स्वभाववाले और मन आदि इन्द्रियों को

वश में न रखनेवाले हों उस व्यक्ति को मुझे प्रदान नहीं करना।^{xxii} शिष्य चयन में सावधानी को स्पष्ट कर शिष्य के कर्तव्यों को भी स्पष्ट किया गया है। शिष्य का कर्तव्य है कि जो व्यक्ति उसके कानों में सुखपूर्वक सत्य सिद्धान्तामृत का सिंचन करता है और उसे इस प्रकार अमृत का दान करता है, उसे अपना पिता और माता समझे एवं उस गुरु से कभी द्रोह न करे।^{xxiii} मनुस्मृतिकार ने विद्यार्थियों के कर्तव्यों को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि वह मधु, माँस, स्त्री प्रसंग आदि से दूर रहे। सभी प्रकार की जीवहिंसा से सर्वथा परे रहे।^{xxiv} भाव के महत्त्व को बताते हुए मनुस्मृतिकार विद्यार्थियों के लिए यह प्रावधान करते हैं कि उन्हें लौकिक अथवा पारलौकिक किसी भी प्रकार का ज्ञान देने वाले के प्रति सदैव सम्मान का भाव रखना चाहिए।^{xxv} गुरु की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि वे छात्र अपने गुरु से गुरुकुल में भोजन प्राप्त करने योग्य नहीं हैं जो मन, वाणी और कर्म से गुरु का आदर नहीं करते। विद्या ऐसे छात्रों की रक्षा नहीं करती।^{xxvi}

उपदेश सम्बन्धि नियमों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि अध्यापक उस व्यक्ति को उपदेश दे जिसे वह शुचि, अप्रमत्त, मेधावी और ब्रह्मचर्य सम्पन्न समझे।^{xxvii}

1.1.7. शिक्षा प्राप्ति का स्थल

शिक्षा प्राप्ति के स्थल के रूप में गुरुकुल का प्रचलन था। गुरुकुल का शाब्दिक अर्थ है गुरु का परिवार अथवा गुरु का वंश। परंतु यह भारतवर्ष में शिक्षासंस्था के अर्थ में व्यवहृत होता रहा है। गुरुकुल के अतिरिक्त परिषद और तपस्थली भी ज्ञान प्रसार का केन्द्र था। गुरुकुलों के इतिहास में भारत की शिक्षाव्यवस्था और ज्ञानविज्ञान की रक्षा का इतिहास समाहित है। यज्ञ और संस्कारों द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालक 6, 8 अथवा 11 वर्ष की अवस्थाओं में यज्ञोपवीत, उपनयन अथवा उपवीत कर गुरुकुलों में ले जाए जाते थे और गुरु के पास बैठकर ब्रह्मचारी के रूप में शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरु उनके मानस और बौद्धिक संस्कारों को पूर्ण करता हुआ उन्हें सभी शास्त्रों एवं उपयोगी विद्याओं की शिक्षा देता तथ अंत में दीक्षा देकर उन्हें विवाह कर गृहस्थाश्रम के विविध कर्तव्यों का पालन करने के लिए वापस भेजता। यह दीक्षित और समावर्तित स्नातक ही पूर्ण नागरिक होता और समाज के विभिन्न उत्तरदायित्वों का वहन करता हुआ त्रिवर्ग की प्राप्ति का उपाय करता। स्पष्ट है, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास में गुरुकुलों का महत्वपूर्ण योगदान था।

गुरुकुल प्रायः गाँवों अथवा नगरों के भीतर तथा बाहर दोनों ही स्थानों में चलाए जाते थे। धनी और गरीब सभी योग्य विद्यार्थियों के लिए गुरुकुलों के द्वार खुले रहते थे। उनके भीतर का जीवन सादा, श्रद्धापूर्ण, भक्तिपरक और त्यागमय होता था। शिष्य गुरु का अंतेवासी होकर (पास रहकर) उसके व्यक्तित्व और आचरण से सीखता। गुरु अन्तर्जगत् में जिज्ञासात्मक सम्प्रश्नों का उत्थान करता हुआ शास्त्रानुमोदित, परम्परानुमोदित सुतर्कों के माध्यम से शास्त्रीय तत्त्वों का श्रवण-मनन, निदिध्यासन करता हुआ आचारात्मक कर्तव्यकर्मों में निष्ठापूर्वक प्रवृत्त रहता। गुरु और शिष्य के आपसी व्यवहारों की एक संहिता होती और उसका पूर्णतः पालन किया जाता। गुरुकुलों में तब तक जाने हुए सभी प्रकार के शास्त्र और विज्ञान पढ़ाए जाते और शिक्षा पूर्ण हो जाने पर गुरु शिष्य की परीक्षा लेता, दीक्षा देता और समावर्तन संस्कार संपन्न कर उसे अपने परिवार को भेजता। शिष्यगण चलते समय अपनी शक्ति के अनुसार गुरु को दक्षिणा देते, किंतु गरीब विद्यार्थी उससे मुक्त भी कर दिए जाते थे।

प्राचीन भारतीय गुरुकुलों में कुलपति हुआ करते थे। कालिदास ने वसिष्ठ तथा कण्व ऋषि को कुलपति की संज्ञा दी है।^{xxviii} अध्ययन अध्यापन के प्रधान केंद्र गुरुकुल में दूर दूर से ब्रह्मचारी विद्यार्थी, अथवा सत्यान्वेषी परिव्राजक अपनी अपनी शिक्षाओं को पूर्ण करने जाते थे। वे गुरुकुल छोटे अथवा बड़े सभी प्रकार के होते थे। स्मृतिवचनों के अनुसार जो ऋषि दस हजार मुनि विद्यार्थियों को अन्नादि द्वारा पोषण करता हुआ उन्हें विद्या पढ़ाता था, उसे ही कुलपति कहते थे।^{xxix} अंतेवासी विद्यार्थी कुलपति के महान विद्यापरिवार का सदस्य होता था और उसके मानसिक और बौद्धिक विकास का उत्तरदायित्व कुलपति पर होता था।

1.1.8. शिक्षण विधि

प्रातिशाख्य (वेदांग 'शिक्षा' से सम्बंधित) ग्रंथों में वैदिक शिक्षा पद्धति का विवरण मिलता है। प्रत्येक छात्र को व्यक्तिगत रूप से पढ़ाया जाता था। अर्थात् गुरु एक बार में एक छात्र को पढ़ाता था। छात्र को एक दिन में दो या तीन वैदिक ऋचाएं याद करनी होती थीं। छात्र को गुरु के निर्देश के अनुसार शब्दों का सही उच्चारण करना होता था, और ऋचाओं को ठीक उसी ढंग से बोलना या गाना होता था जो परम्परा से चला आता था। अध्यापन

मौखिक था। लिपि का विकास होने के बाद भी वैदिक मन्त्रों का मौखिक अध्यापन जारी रहा क्योंकि उच्चारण और गायन की मूल परम्परा को मौखिक रूप में ही पूरी तरह सुरक्षित रखा जा सकता था। याद करके सीखने का तरीका केवल वैदिक संहिताओं के लिए प्रयोग होता था। अन्य विषयों को पढ़ाने के लिए व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, शास्त्रार्थ इत्यादि का सहारा लिया जाता था। छात्रों की संख्या कम होती थी ताकि गुरु प्रत्येक छात्र पर पर्याप्त ध्यान दे सके। अल्तेकर ने अनुमान किया है कि एक गुरु के पास बीस से अधिक छात्र नहीं होते होंगे।

तैत्तिरीय उपनिषद् में आत्मा की पंचकोशात्मक अभिव्यक्ति का वर्णन है। उस वर्णन के अनुसार मनुष्य का व्यक्तित्व पंचकोशात्मक है। (यद्यपि उपनिषद् उसका वर्णन पंचविध पुरुष के रूप में ही करता है, पंचकोश संज्ञा भगवान आदि शंकराचार्य की दी हुई है)। शिक्षा का विचार करते समय इस पंचकोशात्मक व्यक्तित्व की संकल्पना का स्वीकार कर सकते हैं।

1.1.9. शिक्षा प्रणाली

भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिष्य को गुरु के साक्षात् सम्पर्क में आने और उनका अनुकरण करने का अवसर प्राप्त होता है। गुरुकुल में मुख्यतया शिक्षण मौखिक ही होता था। मौखिक शिक्षण के लिए वैदिक काल में व्याख्या विधि, पाठ पारायण विधि, शास्त्रार्थ विधि, सूत्र विधि इत्यादि का प्रयोग होता था। इसके अतिरिक्त प्रश्नोत्तर विधि, वाकोवाक् विधि (कथोपकथन विधि), वाद विवाद विधि, उदाहरण कथन, दृष्टान्त कथन, रूपक, उपमा, तुलना इत्यादि विधियों का उपयोग शिक्षण में किया जाता था। शिक्षण विधियों में श्रवण (सुनना), मनन (विचार करना) तथा निदिध्यासन (गहन चिन्तन करना) के क्रम का पालन किया जाता था।

वैदिक काल में उच्चारण की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसके लिए शिक्षा वेदांग का समुपयोग किया जाता था। पाणिनीय शिक्षा, नारदीय शिक्षा, याज्ञवल्क्य शिक्षा इत्यादि शिक्षाओं के माध्यम से शुद्ध एवं मानक उच्चारण का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था। शिक्षण एवं निर्देश की भाषा के रूप में संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाता था। वैदिक काल में लेखन कार्य के लिए यद्यपि अधिक अवसर एवं आवश्यकता नहीं होती थी,

तथापि उस समय लेखन कला का विकास हो चुका था। लेखन सामग्री की सीमित उपलब्धता की दृष्टि से ज्ञान को कण्ठस्थीकृत करने पर ही बल दिया जाता था। उस समय मान्यता थी कि वैदिक साहित्य को यदि असावधानी या प्रमादतापूर्वक लिपिबद्ध किया गया तो उनमें दोष होने की पूर्ण सम्भावना है। वैदिक काल में गुरुकुल में श्रावण मास की पूर्णिमा से लेकर पौषमास की पूर्णिमा तक अध्ययन सत्र की अवधि होती थी। ब्रह्मचारी बटुक प्रतिदिन ब्रह्म मुहूर्त में शय्या का त्याग कर देते थे। तत्पश्चात् यथासमय पाठ श्रवण, पारायण, सन्ध्योपासना, हवन इत्यादि कार्य किये जाते थे छात्रों की दिनचर्या में यज्ञ, भिक्षाटन, अध्ययन काल, अभ्यास काल, श्रमदान, क्रीडा इत्यादि के लिए भी समय निश्चित होता था। मौसम की अस्थिरता या राजकीय शोक की स्थितियों में अवकाश का भी प्रावधान शास्त्र सम्मत माना गया है। धर्मसिन्धु नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में प्रतिपदा एवं अष्टमी तिथि को शैक्षणिक अवकाश माना जाता था।

1.1.10. पाठ्यविषय

प्राचीन काल में औपचारिक पाठ्यविषयों में चारों वेदों, वेदांगों, ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषदों के अतिरिक्त इतिहास पुराण नाराशंसी की शिक्षा दी जाती रही (इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीना च प्रियं धम भवति य एवं वेद – अथर्ववेद-15/6/12) । याज्ञवल्क्य स्मृति (1/3) के अनुसार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम एवं अथर्व) षडंग (व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प एवं छन्द), न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र एवम् पुराण ये चौदह विद्या हैं। वहीं आन्वीक्षिकी त्रयी वर्ता दण्डनीति ये चार विद्याएँ लोक – व्यवहार को स्थिर करने वाली हैं। इसी के साथ अंगिरस (गीत, नृत्य तथा ललित कला), सर्प विद्या (विष विज्ञान), देवजन विद्या (मानव जीवन पर होने वाले दुष्प्रभावों का अध्ययन), माया विद्या (अनार्यों की गतिविधियों तथा उनके प्रतिरोध के उपाय), निधि विद्या (धन संबंधी), एकायन (नीतिशास्त्र), ब्रह्म विद्या (आध्यात्मिकता), भूत विद्या (प्राणी शास्त्र), क्षत्र विद्या (युद्ध कौशल), नक्षत्र विद्या (पिण्डीय संरचना व विकरण) व वाकोवाक्य की भी शिक्षा दी जाती रही।

इनके अतिरिक्त व्यावसायिक शिक्षाओं में खाद्यान्न, मसाले व सुगंधित द्रव्य का उत्पादन, आभूषण, वस्त्र, काष्ठ के सामान व बर्तन तथा अस्त्र-शस्त्र का निर्माण आदि का

प्रशिक्षण भी दिया जाता था। औद्योगिक शिक्षा के अन्तर्गत लोक उपयोगी सभी प्रकार के घरेलू उत्पाद के निर्माण की विधियाँ बताई जाती थी। चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा के अन्तर्गत शरीर विज्ञान, रोगों के कारण व उपचार के लिए औषधियों के ज्ञान के साथ-साथ शल्य क्रिया की भी शिक्षा अनुभवी आचार्यों के माध्यम से दी जाती रही। इसके अतिरिक्त कृषि विज्ञान, पशु पालन एवं पशु चिकित्सा की शिक्षा एवं प्रशिक्षण दी जाती थी। शिल्प विद्या के अंतर्गत नाना प्रकार के उद्यमों तथा उनमें प्रयुक्त होने वाले औजारों यंत्रों को बनाने, उनके प्रयोग करने तथा आवश्यकता पड़ने पर उनकी मरम्मत करने आदि की विधियाँ सिखाई जाती थीं। इसी प्रकार खगोल विज्ञान तथा विज्ञान एवं तकनीकी की प्रयोगात्मक शिक्षा दी जाती थी। इन्हीं विषयों के आधार पर गुरुकुलों में कुछ प्रमुख विभाग स्थापित किये गए जो निम्न प्रकार से रहे -

1. अग्नि स्थान (यज्ञादि कर्मकाण्डों के लिए)
2. ब्रह्म स्थान (आत्मविद्या के लिए)
3. विष्णु स्थान (सृष्टिरचना विज्ञान)
4. महेंद्र स्थान (युद्धकौशल व सैनिक शिक्षा)
5. विवस्वत् स्थान (ज्योतिष/नक्षत्र विद्या)
6. सोम स्थान (उद्भिज-विज्ञान)
7. गरुड़ स्थान (यातायात)
8. कार्तिकेय स्थान (व्यूह -रचना व आयुध -संधान)
9. विश्वकर्मा स्थान (शिल्प व स्थापत्य कला)
10. इंद्र स्थान (राजनीति/अर्थनीति शिक्षा)
11. धन्वन्तरि- स्थान (आयुष व भेषज विज्ञान)
12. अंगिरस स्थान (गीत, संगीत व ललित कला) आदि- आदि।

1.1.11. अनुशासन

भारतीय मनीषा मनुष्य की मूल प्रकृति को आध्यात्मिक मानती रही है। अपनी इसी आध्यात्मिक प्रकृति के कारण ही मनुष्य अपने आप को कला, संस्कृति, सदाचार और धर्म के रूप में अभिव्यक्त करता रहता है। मनुष्य की यह आध्यात्मिक प्रकृति उसके अस्तित्व का मूल है, अतः प्राचीन आचार्यों ने आन्तरिक अनुशासन के इस महत्वपूर्ण सत्य को शिक्षा का प्रथम आधार बनाया।

गुरुकुलों में विद्यार्थियों का सामाजिक जीवन ऊँच-नीच, वर्ण-भेद की मलिन भावनाओं से रहित भातृ भावना से ओत-प्रोत हुआ करता था। कठोर अनुशासन का पालन तथा पवित्र तथा पवित्र आचरण को बनाये रखते हुए गुरु या आचार्य की सेवा करना व उनके प्रति एकांतिक श्रद्धा भाव रखना, पृथ्वी पर शयन करना, प्रातःकाल में शैया त्यागना, स्नानादि नित्य कर्म से निवृत्त होकर सूर्योदय पूर्व संध्या वंदन व प्राणायाम करना, आश्रम का रख-रखाव करना, भोजन प्रबंध करना, वेश-भूषा धारण करना, यज्ञादि करना तथा समान पठन-पाठन सभी के लिए अनिवार्य हुआ करती थी।

1.1.12. भिक्षाटन

सामान्यतः भिक्षाटन को हेय दृष्टि से देखा जाता है, किन्तु गुरुकुलों में इसे नैतिक शिक्षा के पाठ के रूप में ही अपनाया गया। लोक के प्रति दायित्व का बोध कराने तथा ऊँच-नीच, सम्पन्न विपन्न के आन्तरिक अहंभाव के शमन के लिए सभी को समान रूप से समीपस्थ गृहस्थों के द्वार तक जाकर-तत्र भवति मातः ! भिक्षां देहि। की पुकार करनी पड़ती थी। भिक्षाटन हेतु नियमित रूप से जाना पड़ता था। गुरुकुलों की शिक्षा निःशुल्क हुआ करती थी। इस प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में सार्वभौमिक सत्ता का दिग्दर्शन करते हुए सार्वभौमिक बंधुत्व की भावना के साथ देश-काल की सीमा से परे इस व्यावहारिक शिक्षा से शिक्षार्थियों का आभ्यान्तरिक ज्ञान तथा आचरण निखर उठता था।

1.1.3. मूल्यांकन प्रणाली

प्राचीन भारत का शिष्य गुरु का न केवल विद्यार्थी होता था, अपितु वह गुरु के परिवार का एक सदस्य भी होता था। प्रातः काल से निद्रा पर्यन्त वह गुरु के पर्यवेक्षण में

उनके द्वारा बताये गए नियमों के पालन करने तथा अध्ययन में निरत रहता था। इस अनोखे स्नेहात्मक संबंध के कारण शिष्यों की व्यक्तिगत अभिरुचियों, विशेषताओं तथा आचरण-व्यवहार की पूर्ण परख गुरु द्वारा सतत, सहज और स्वभाविक रूप से होती रहती थी। शिष्य भी गुरु द्वारा दिये गए उपदेशों का ध्यानपूर्वक श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन कर विद्या में पारंगत होता रहता था (श्रवणं तु गुरोः मननं तदनन्तरम्। निदिध्यासनमित्येतत्पूर्णबोधस्य कारणम्)। इस सतत मूल्यांकन के आधार पर गुरु अपने विषयों शत प्रतिशत अधिकार प्रदर्शित करना ही उसकी शिक्षा की पूर्णता का मापदण्ड होता था। छात्र के प्रदर्शन से संतुष्ट होकर ही आचार्य उसे स्नातक होने की घोषणा कर देते थे। उस काल में वर्तमान शिक्षा पद्धति जैसी लिखित परीक्षा व प्राप्तांको के आधार पर उपाधियों को वितरित करने की प्रथा नहीं थी। वैसे भी अनुभव यही बताता है कि ज्ञान का अंक पत्र या डिग्री से कोई संबंध नहीं होता है।

1.1.4. भारतीय शिक्षा के केंद्र

भारत में शिक्षा की समृद्ध परंपरा अनादिकाल से चली आ रही है, जिसमें गुरुकुलों और आश्रमों की प्रमुख भूमिका रही है। वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक शिक्षा केंद्र स्थापित हुए, जो ज्ञान और विद्या के अद्वितीय स्रोत थे। इन गुरुकुलों में अध्यात्म, धर्म, साहित्य, गणित, विज्ञान, दर्शन और कला का व्यापक अध्ययन कराया जाता था। इन शिक्षा केंद्रों का लक्ष्य केवल सैद्धांतिक ज्ञान प्रदान करना नहीं था, बल्कि जीवन के व्यावहारिक पक्ष और समाज सेवा के लिए भी व्यक्तियों को तैयार करना था।

1.1.4.1. वैदिक ऋषियों के विद्या केंद्र

भारत में अनादि काल से ही गुरुकुलों की एक समृद्ध परंपरा रही है। वैदिक काल के महर्षियों जैसे भृगु, कश्यप, अत्रि, मरीचि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, और बादरायण के आश्रम अपने-अपने समय में विद्या के प्रमुख केंद्र थे। वैदिक ग्रंथों में इन ऋषियों के आश्रमों के संदर्भ मिलते हैं, जो सरस्वती नदी के किनारे और हिमालय की तलहटी में स्थित थे। उदाहरणस्वरूप, रामायण में उल्लेख मिलता है कि ब्रह्मर्षि वशिष्ठ मुनि का आश्रम सरयू नदी के तट पर अवध प्रदेश में स्थित था, जबकि राजर्षि विश्वामित्र का आश्रम कौशिकी नदी

के तट पर मगध प्रदेश में था। इसी प्रकार, महर्षि वाल्मीकि का आश्रम गंगा और तमसा नदियों के किनारे था।^{xxx}

1.1.4.2. प्राचीन गुरुकुल और शिक्षा के उद्देश्य

गुरुकुल भारतीय शिक्षा पद्धति का आधार थे। यहाँ पर बालक गुरु के संरक्षण में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरुकुल का उद्देश्य केवल शास्त्रीय ज्ञान देना नहीं था, बल्कि विद्यार्थी को जीवन के हर पहलू में कुशल बनाना था। छात्रों को अनुशासन, विनम्रता, और आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाया जाता था। इसके अलावा, उन्हें समाज और परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों का बोध कराया जाता था। गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्रों को धर्म, दर्शन, राजनीति, और विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी।^{xxxi}

गुरुकुलों में दी जाने वाली शिक्षा केवल किताबी ज्ञान तक सीमित नहीं थी। यह संपूर्ण जीवन के हर पहलू में लागू होती थी। छात्रों को जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक पक्षों को समझने की शिक्षा दी जाती थी। उन्हें ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, और तप के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी जाती थी।^{xxxii}

1.1.4.3. महाभारत और रामायण काल के विद्या केंद्र

महाभारत काल में विद्या के प्रमुख केंद्रों में से एक था महर्षि वेदव्यास का आश्रम, जो हिमालय के क्षेत्र में स्थित था। इसी प्रकार, महर्षि शौनक का आश्रम नैमिषारण्य में स्थित था। ये आश्रम अपने समय के प्रमुख शिक्षा केंद्र थे, जहाँ हजारों विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। महाभारत और रामायण में इन आश्रमों का विस्तृत वर्णन मिलता है।^{xxxiii}

शिक्षा केवल बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसका उद्देश्य व्यक्ति के चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास को भी सुनिश्चित करना था। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में यह मान्यता थी कि विद्या व्यक्ति को उसकी आत्मा के सत्य से परिचित कराती है, जिससे वह समाज और राष्ट्र के लिए एक आदर्श नागरिक बन सकता है।^{xxxiv}

1.1.4.4. तक्षशिला विश्वविद्यालय

तक्षशिला विश्वविद्यालय प्राचीन भारत के सबसे प्रसिद्ध शिक्षा केंद्रों में से एक था। यह विश्वविद्यालय महाभारत काल से प्रख्यात था और इसमें हजारों विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। यहाँ के प्रसिद्ध आचार्यों में चाणक्य, पाणिनि, चरक, और जीवक का नाम उल्लेखनीय है। तक्षशिला में लगभग 10,500 विद्यार्थी और 2,000 आचार्य एक साथ शिक्षा प्राप्त करते थे। यह विश्वविद्यालय न केवल भारत, बल्कि मध्य एशिया तक प्रसिद्ध था।^{xxxv}

तक्षशिला में विविध विषयों की शिक्षा दी जाती थी, जिसमें वेद, राजनीति, युद्ध-कला, चिकित्सा, और व्याकरण जैसे विषय शामिल थे। तक्षशिला का अध्ययन पाणिनि के प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' का केंद्र रहा था। इसी विश्वविद्यालय में चाणक्य ने अपने शिष्य चंद्रगुप्त मौर्य को राजनीति और युद्ध-कला की शिक्षा दी थी।^{xxxvi}

1.1.4.5. काशी और मिथिला के विद्या केंद्र

काशी भी प्राचीन भारत में शिक्षा का महत्वपूर्ण केंद्र था। यहाँ के आचार्यों में जगद्धर, विद्यापति, पक्षधर मिश्र, वाचस्पति मिश्र आदि प्रमुख थे। काशी में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य धार्मिक और आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार करना था। यहाँ के गुरुकुलों में वेदों, शास्त्रों, और दर्शन की गहन शिक्षा दी जाती थी। मिथिला भी शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र था, जहाँ राजर्षि जनक के काल से ही औपनिषदिक ज्ञान का अध्ययन किया जाता था। मिथिला में शिक्षा की एक विशिष्ट पद्धति 'शलाका परीक्षा' बहुत प्रसिद्ध थी।^{xxxvii}

1.1.4.5. शारदा और नालंदा विश्वविद्यालय

शारदा विश्वविद्यालय, जो वर्तमान में पाकिस्तान के मुजफ्फराबाद में स्थित है, भी प्राचीन काल में एक महत्वपूर्ण शिक्षा केंद्र था। इस विश्वविद्यालय में 14 विषयों की शिक्षा दी जाती थी और यहाँ के छात्रों को शारदा लिपि में भी प्रशिक्षण दिया जाता था। यह विश्वविद्यालय सम्राट कनिष्क के समय में मध्य एशिया का सबसे बड़ा शिक्षा केंद्र था।^{xxxviii}

नालंदा विश्वविद्यालय का भी प्राचीन शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान था। यह विश्वविद्यालय लगभग 700 वर्षों तक शिक्षा का प्रमुख केंद्र रहा और इसमें हजारों विद्यार्थी अध्ययन करते

थे। नालंदा में विशेष रूप से बौद्ध धर्म, चिकित्सा, ज्योतिष, और गणित की शिक्षा दी जाती थी।^{xxxix}

1.1.4.6. अन्य प्रमुख शिक्षा केंद्र

प्राचीन भारत में तक्षशिला और नालंदा के अलावा भी कई प्रसिद्ध शिक्षा केंद्र थे। इनमें वल्लभी विश्वविद्यालय, विक्रमशिला विश्वविद्यालय, ओदंतपुरी विश्वविद्यालय, जगदला विश्वविद्यालय, और उदयगिरि विश्वविद्यालय प्रमुख थे। ये शिक्षा केंद्र अपने समय के महान विद्वानों और आचार्यों द्वारा संचालित होते थे, जो समाज में शिक्षा का प्रसार करते थे।^{xl}

वल्लभी विश्वविद्यालय सौराष्ट्र के काठियावाड़ क्षेत्र में स्थित था और यह विशेष रूप से बौद्ध शिक्षा का केंद्र था। विक्रमशिला विश्वविद्यालय मगध में स्थित था और इसमें तंत्र और मंत्र विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी।^{xli}

इस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति न केवल भारतीय समाज को नैतिक और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध करती थी, बल्कि यह विद्या और विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में भी योगदान करती थी। गुरुकुलों, आश्रमों, और विश्वविद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा ने समाज को संतुलित और समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तक्षशिला, नालंदा, शारदा, और मिथिला जैसे विश्वविद्यालयों ने न केवल भारतीय छात्रों को, बल्कि विदेशी छात्रों को भी शिक्षा दी। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति न केवल भारत, बल्कि विश्व के अन्य भागों में भी प्रसिद्ध थी।^{xlii}

1.2. शोध अध्ययन की आवश्यकता

गुरुकुल शिक्षा पद्धति भारतीय ज्ञान परंपरा का एक प्रमुख हिस्सा रही है, जो छात्रों के नैतिक, बौद्धिक, शारीरिक, और आध्यात्मिक विकास का समग्र दृष्टिकोण प्रदान करती थी। वर्तमान समय में, जबकि आधुनिक शिक्षा प्रणाली तकनीकी विकास, प्रतिस्पर्धात्मकता, और करियर उन्मुखी शिक्षा पर केंद्रित हो गई है, गुरुकुल शिक्षा की अवधारणा की पुनः परीक्षा करना और उसका विश्लेषण करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। निम्नलिखित कारणों से यह शोध अध्ययन महत्वपूर्ण बनता है:

1. मानव मूल्य और नैतिकता का हास आधुनिक शिक्षा प्रणाली का ध्यान मुख्यतः शैक्षिक और व्यावसायिक उपलब्धियों पर केंद्रित है, जिसमें मानव मूल्य, नैतिकता और सामाजिक जिम्मेदारी का महत्व धीरे-धीरे घटता जा रहा है। नैतिकता का अभाव और व्यक्तिगत हित की बढ़ती प्रवृत्ति वर्तमान समाज की प्रमुख समस्याएं हैं। गुरुकुल शिक्षा पद्धति छात्रों में मानवीय मूल्यों, नैतिकता और समाज के प्रति उत्तरदायित्व का विकास करने पर बल देती थी। वर्तमान समय में विद्यार्थियों के नैतिक विकास के लिए गुरुकुल शिक्षा के सिद्धांतों की प्रासंगिकता बढ़ जाती है।
2. शिक्षा का समग्र दृष्टिकोण आज की शिक्षा प्रणाली में शारीरिक, मानसिक, और भावनात्मक विकास की अनदेखी की जाती है। छात्रों का संपूर्ण विकास—शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक—एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए आवश्यक है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में इन सभी पहलुओं पर ध्यान दिया जाता था, जिससे विद्यार्थियों का समग्र विकास होता था। अतः इस पद्धति का अध्ययन करके हम शिक्षा को एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान कर सकते हैं।
3. शिक्षक-शिष्य संबंध का महत्व आधुनिक शिक्षा में शिक्षक और शिष्य के बीच का संबंध अक्सर औपचारिक और मात्र शिक्षण कार्य तक सीमित रह गया है। शिक्षक का केवल एक ज्ञानदाता के रूप में देखा जाना, विद्यार्थियों के समग्र विकास के लिए हानिकारक साबित हो सकता है। इसके विपरीत, गुरुकुल शिक्षा में शिक्षक (गुरु) और शिष्य के बीच गहरा और भावनात्मक संबंध होता था। गुरु न केवल शिक्षा प्रदान करता था, बल्कि शिष्य के चरित्र निर्माण और जीवन के प्रत्येक पहलू में मार्गदर्शन भी करता था। इस प्रकार के संबंध का पुनः स्थापन करने से छात्रों में नैतिक और भावनात्मक स्थिरता उत्पन्न हो सकती है।
4. जीवन कौशल का विकास और आत्मनिर्भरता आज के शहरीकृत और प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में जीवन कौशल की कमी का असर छात्रों के भविष्य पर पड़ता है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में छात्रों को जीवन कौशल, जैसे आत्मनिर्भरता, अनुशासन, और सामूहिक जीवन जीने की कला सिखाई जाती थी। इससे उनमें जीवन की चुनौतियों का सामना करने की क्षमता विकसित होती थी। आधुनिक

शिक्षा में इन गुणों का विकास नहीं हो पाता, जिससे विद्यार्थियों में तनाव और अवसाद जैसी समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। गुरुकुल शिक्षा के माध्यम से जीवन कौशल का पुनः प्रवर्तन आज की शिक्षा प्रणाली में अत्यंत आवश्यक हो गया है।

5. पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता गुरुकुल शिक्षा पद्धति में विद्यार्थियों को प्राकृतिक परिवेश में शिक्षा दी जाती थी, जिससे उनमें पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता और प्रकृति के प्रति सम्मान का विकास होता था। आज के समय में जब पर्यावरणीय समस्याएं गंभीर रूप ले रही हैं, शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में पर्यावरणीय चेतना जागृत करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति का अध्ययन कर हम पर्यावरण के प्रति जागरूक और संवेदनशील नागरिक तैयार कर सकते हैं।
6. आधुनिक शिक्षा के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियां आधुनिक शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थियों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। शारीरिक गतिविधियों की कमी, अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, और परीक्षा केंद्रित शिक्षा के कारण तनाव, अवसाद, और अन्य मानसिक समस्याएं बढ़ रही हैं। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शारीरिक व्यायाम, योग, प्राणायाम, और ध्यान का नियमित अभ्यास शामिल था, जो छात्रों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होता था। आज की शिक्षा में इन तत्वों को शामिल करके विद्यार्थियों के संपूर्ण स्वास्थ्य को बेहतर बनाया जा सकता है।
7. भारतीय सांस्कृतिक और आध्यात्मिक धरोहर का संरक्षण भारतीय शिक्षा प्रणाली की नींव भारतीय संस्कृति, परंपराओं, और आध्यात्मिकता पर आधारित है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इन पहलुओं को अनदेखा किया गया है, जिससे विद्यार्थियों में अपने सांस्कृतिक धरोहर के प्रति जागरूकता और गर्व की भावना कम होती जा रही है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति भारतीय संस्कृति, परंपराओं, और अध्यात्म को विद्यार्थियों के जीवन में स्थापित करती थी। इस शिक्षा पद्धति के अध्ययन से विद्यार्थियों में भारतीयता और सांस्कृतिक गर्व की भावना को पुनः स्थापित किया जा सकता है।

8. समाज और व्यक्तिगत जीवन में संतुलन की आवश्यकता आधुनिक जीवन शैली, जो प्रतिस्पर्धा और उपभोक्तावादी दृष्टिकोण से प्रेरित है, व्यक्ति और समाज के बीच असंतुलन पैदा कर रही है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में समाज और व्यक्ति के बीच संतुलन पर बल दिया गया था। इस शिक्षा पद्धति में विद्यार्थियों को समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों के बारे में बताया जाता था और उनमें परोपकार, सहिष्णुता, और समर्पण जैसे गुण विकसित किए जाते थे। समाज के समग्र विकास के लिए इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली की पुनः स्थापना आवश्यक हो गई है।
9. व्यक्तित्व विकास शिक्षा का मुख्य उद्देश्य केवल जानकारी प्रदान करना नहीं होना चाहिए, बल्कि विद्यार्थियों का व्यक्तित्व विकास भी होना चाहिए। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में व्यक्तित्व विकास के पहलू की उपेक्षा होती है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में विद्यार्थियों का व्यक्तित्व संपूर्ण रूप से विकसित किया जाता था, जिसमें उनके नैतिक, मानसिक, और शारीरिक विकास का समावेश होता था। वर्तमान समय में ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है, जो व्यक्तित्व के सभी पहलुओं पर ध्यान दे और छात्रों को जीवन में संतुलन बनाए रखने के योग्य बनाए।
10. आध्यात्मिक विकास और मानसिक शांति आज के समय में जब समाज में मानसिक तनाव और अवसाद के मामले तेजी से बढ़ रहे हैं, आध्यात्मिक विकास और मानसिक शांति की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में अध्यात्मिकता का प्रमुख स्थान था, जिसमें योग, ध्यान, और ध्यान केंद्रित अभ्यास शामिल थे। इससे छात्रों को मानसिक शांति प्राप्त होती थी और वे जीवन की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होते थे। आज के युग में जब मानसिक स्वास्थ्य एक बड़ी समस्या बन गई है, गुरुकुल शिक्षा के आध्यात्मिक दृष्टिकोण का महत्व और अधिक बढ़ गया है।

इन सभी कारणों से यह स्पष्ट होता है कि गुरुकुल शिक्षा पद्धति का अध्ययन वर्तमान शिक्षा प्रणाली के समक्ष आने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसके माध्यम से हम शिक्षा को केवल बौद्धिक विकास तक सीमित रखने की बजाय एक समग्र और संपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान कर सकते हैं, जिसमें नैतिकता, आध्यात्मिकता, और समाज के

प्रति उत्तरदायित्व का समावेश हो। अतः इस शोध अध्ययन की आवश्यकता न केवल भारतीय शिक्षा प्रणाली में सुधार लाने के लिए है, बल्कि एक स्वस्थ, नैतिक, और संतुलित समाज के निर्माण में भी सहायक हो सकती है।

1.3. शोध अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध अध्ययन का उद्देश्य निम्नलिखित बिंदुओं में स्पष्ट किया जा सकता है:

1. गुरुकुल शिक्षा पद्धति के सार और सिद्धांतों की पुनः खोज: इस अध्ययन का एक प्रमुख उद्देश्य प्राचीन गुरुकुल शिक्षा पद्धति के मूल सिद्धांतों, दर्शन, और कार्यप्रणाली को समझना और उन तत्वों की पुनः खोज करना है जो इस शिक्षा प्रणाली को विशेष बनाते थे। इसमें विशेष रूप से शिक्षा की प्रक्रिया, शिक्षक-शिष्य संबंध, और शिक्षा में मूल्यों और संस्कारों का समावेश शामिल है।
2. शैक्षिक संस्कारों का अध्ययन: गुरुकुल शिक्षा में शैक्षिक संस्कारों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान था, जिनमें मेधाजनन, विद्यारंभ, उपनयन, और समावर्तन जैसे संस्कार शामिल हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य इन शैक्षिक संस्कारों का विश्लेषण करना है, ताकि इनके माध्यम से व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को विकसित करने की प्रक्रिया को समझा जा सके। यह अध्ययन करेगा कि किस प्रकार ये संस्कार विद्यार्थियों में नैतिकता, अनुशासन, और आत्मनिर्भरता के गुण विकसित करते थे।
3. गुरुकुल शिक्षा के तत्वों का आधुनिक शिक्षा प्रणाली में उपयोग: गुरुकुल शिक्षा पद्धति के तत्वों को आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में किस प्रकार से सम्मिलित किया जा सकता है, इस पर विचार करना भी इस शोध का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। अध्ययन का प्रयास होगा कि गुरुकुल शिक्षा के अनुशासन, नैतिकता, आत्मविकास, और समाज के प्रति सेवा भावना जैसे गुणों को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में कैसे उपयोगी बनाया जा सकता है।
4. मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक महत्व का विश्लेषण: गुरुकुल शिक्षा पद्धति के मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक महत्व का विश्लेषण करना भी अध्ययन का उद्देश्य है। यह समझना कि किस प्रकार इस पद्धति से विद्यार्थियों का समग्र विकास होता था -

चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक हो, या आध्यात्मिक - और इन सभी पहलुओं का आज के शैक्षिक दृष्टिकोण में क्या महत्व है।

5. समाज में नैतिकता और संस्कारों का संवर्धन: इस अध्ययन का उद्देश्य उन पहलुओं को पहचानना भी है जो समाज में नैतिकता और संस्कारों को बढ़ावा देने में गुरुकुल शिक्षा की भूमिका को रेखांकित करते हैं। आज जब समाज नैतिक मूल्यों के पतन और सामाजिक असंतोष जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, ऐसे में गुरुकुल शिक्षा से प्रेरणा लेकर एक संतुलित और समरस समाज की स्थापना कैसे की जा सकती है, यह शोध का उद्देश्य है।
6. शिक्षक-शिष्य संबंध का अध्ययन: गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शिक्षक और शिष्य का संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण था। इस शोध का उद्देश्य इस बात की भी समीक्षा करना है कि कैसे शिक्षक और शिष्य के बीच एक आध्यात्मिक और नैतिक आधार पर निर्मित संबंध आज की शिक्षा प्रणाली में लाया जा सकता है, ताकि विद्यार्थियों में न केवल ज्ञान, बल्कि आचार और संस्कार का भी समुचित विकास हो सके।
7. शिक्षा के उद्देश्यों का पुनः परिभाषा: गुरुकुल शिक्षा के दृष्टिकोण से शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों को समझना और आज की प्रतिस्पर्धात्मक शिक्षा प्रणाली के संदर्भ में उन्हें पुनः परिभाषित करना भी इस शोध का एक प्रमुख उद्देश्य है। इसका उद्देश्य शिक्षा को केवल एक कैरियर बनाने वाली प्रणाली के रूप में न देखकर, जीवन को समग्र रूप से विकसित करने वाले साधन के रूप में स्थापित करना है।
8. समकालीन समस्याओं के समाधान के लिए गुरुकुल शिक्षा के सिद्धांतों की प्रासंगिकता: इस अध्ययन का उद्देश्य यह भी है कि गुरुकुल शिक्षा के सिद्धांतों को वर्तमान शैक्षिक और सामाजिक समस्याओं के समाधान के रूप में कैसे लागू किया जा सकता है। यह शोध इस बात की भी जांच करेगा कि नैतिक शिक्षा, सामाजिक चेतना, और समग्र विकास जैसे मुद्दों पर गुरुकुल शिक्षा कैसे उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

9. शोध निष्कर्षों का क्रियान्वयन: शोध के निष्कर्षों को इस प्रकार प्रस्तुत करना कि वे शिक्षा नीति निर्माताओं, शिक्षाविदों, और समाज के अन्य हितधारकों के लिए उपयोगी हो सकें। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि गुरुकुल शिक्षा के सार्थक पहलुओं को पुनः प्रचलन में लाया जाए और शिक्षा प्रणाली में ऐसे बदलाव लाए जाएं जो विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित कर सकें।

इस प्रकार, इस शोध का मुख्य उद्देश्य केवल गुरुकुल शिक्षा पद्धति का विश्लेषण करना ही नहीं है, बल्कि उसके सार्थक सिद्धांतों और प्रक्रियाओं को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सम्मिलित करना, शैक्षिक संस्कारों की भूमिका को पुनः समझना और इसे एक अधिक नैतिक, संवेदनशील, और समग्र शिक्षा व्यवस्था के रूप में विकसित करना भी है।

1.4. शोध प्रश्न

उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रस्तुत शोध कार्य में निम्नलिखित शोध प्रश्न शामिल किए गए हैं:

1. गुरुकुल शिक्षा पद्धति के प्रमुख सिद्धांत और तत्व क्या हैं? इस प्रश्न के माध्यम से अध्ययन का उद्देश्य गुरुकुल शिक्षा के मूल सिद्धांतों और प्रक्रियाओं को समझना है, जो इसे एक अनूठी शिक्षा पद्धति बनाते हैं।
2. शैक्षिक संस्कारों का विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक, और नैतिक विकास में क्या योगदान है? इस प्रश्न से यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि मेधाजनन, विद्यारंभ, उपनयन, और समावर्तन जैसे शैक्षिक संस्कारों का विद्यार्थियों के समग्र विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है।
3. गुरुकुल शिक्षा पद्धति के कौन से तत्व वर्तमान शिक्षा प्रणाली में लागू किए जा सकते हैं?
4. इस प्रश्न का उद्देश्य गुरुकुल शिक्षा के उन तत्वों की पहचान करना है जो वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में समाहित किए जा सकते हैं, ताकि विद्यार्थियों का समग्र विकास सुनिश्चित किया जा सके।

5. गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शिक्षक-शिष्य संबंध का महत्व क्या था, और वर्तमान में इसे कैसे पुनःस्थापित किया जा सकता है? इस प्रश्न के माध्यम से शिक्षक और शिष्य के संबंध की गहन समझ विकसित की जाएगी और यह विचार किया जाएगा कि कैसे इस संबंध को आधुनिक शिक्षा में पुनःस्थापित किया जा सकता है।
6. गुरुकुल शिक्षा पद्धति के तत्वों का मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक दृष्टिकोण से क्या महत्व है?
7. अध्ययन का उद्देश्य गुरुकुल शिक्षा के मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन करना है, ताकि इसके तत्वों का गहन विश्लेषण किया जा सके।
8. समकालीन समाज में नैतिकता और संस्कारों के संवर्धन में गुरुकुल शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता क्या है? इस प्रश्न के माध्यम से यह समझा जाएगा कि आज के सामाजिक संदर्भ में नैतिकता और संस्कारों के संवर्धन के लिए गुरुकुल शिक्षा पद्धति किस प्रकार से उपयोगी सिद्ध हो सकती है।
9. शैक्षिक संस्कारों का आधुनिक शिक्षा में क्या स्थान हो सकता है? इस प्रश्न के तहत अध्ययन का उद्देश्य शैक्षिक संस्कारों के समकालीन शिक्षा प्रणाली में योगदान को समझना और उन्हें पुनः स्थापित करने की संभावनाओं की जांच करना है।
10. गुरुकुल शिक्षा पद्धति में किस प्रकार के शैक्षिक और सामाजिक परिणाम प्राप्त किए गए थे? इस प्रश्न का उद्देश्य उन शैक्षिक और सामाजिक परिणामों का मूल्यांकन करना है जो गुरुकुल शिक्षा पद्धति से प्राप्त हुए थे और यह देखना कि क्या वर्तमान शिक्षा में उन परिणामों को पुनः प्राप्त किया जा सकता है।
11. शैक्षिक दृष्टिकोण से गुरुकुल शिक्षा पद्धति का अन्य प्राचीन शिक्षा प्रणालियों से तुलना कैसे की जा सकती है? इस प्रश्न से अध्ययन का उद्देश्य गुरुकुल शिक्षा पद्धति की अन्य प्राचीन शिक्षा प्रणालियों जैसे कि यूनानी, चीनी आदि से तुलना करना है, ताकि इसकी विशेषताओं और कमजोरियों का पता लगाया जा सके।

इन शोध प्रश्नों का उद्देश्य इस अध्ययन को एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करना है, जिसमें गुरुकुल शिक्षा के ऐतिहासिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, और शैक्षिक पहलुओं का गहन विश्लेषण हो सके और इसे वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उपयुक्त रूप से पुनःस्थापित किया जा सके।

1.5. शोध प्रविधि

गुणात्मक शोध प्रविधि का उपयोग करते हुए इस शोध में प्राचीन ग्रंथों, शोध आलेखों, और पुस्तकों का गहन अध्ययन किया जाएगा। यह विधि इस शोध के लिए सबसे उपयुक्त है, क्योंकि यह गुरुकुल शिक्षा पद्धति और शैक्षिक संस्कारों जैसे विषयों के गहन एवं सारगर्भित अध्ययन की अनुमति देती है। इस प्रविधि में ज्ञान को समझने और संदर्भित करने के लिए प्राचीन साहित्य और शैक्षिक दस्तावेजों का विश्लेषण प्रमुख है।

1.5.1. शोध का प्रकार:

यह शोध वर्णनात्मक (Descriptive) और विश्लेषणात्मक (Analytical) है, जिसका उद्देश्य गुरुकुल शिक्षा पद्धति के शैक्षिक संस्कारों का अध्ययन करना, उनके मूलभूत सिद्धांतों, प्रक्रियाओं और वर्तमान शैक्षिक प्रणाली में उनके महत्व को समझना है। इस शोध में विभिन्न प्राचीन ग्रंथों, शोध आलेखों, और अन्य संदर्भित पुस्तकों का अध्ययन किया जाएगा।

1.5.2. डेटा संग्रहण की विधियाँ:

इस शोध में डेटा संग्रहण के लिए मुख्यतः दस्तावेज़ विश्लेषण (Document Analysis) का उपयोग किया गया है। इसका उद्देश्य शोध के विषय से संबंधित सूचनाओं का संकलन और विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित स्रोतों का उपयोग किया जाएगा:

- प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन: प्राचीन ग्रंथों जैसे वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ, और महाभारत आदि का गहन अध्ययन किया जाएगा। इससे गुरुकुल शिक्षा पद्धति और संस्कारों के मूल सिद्धांतों को समझने में सहायता मिलेगी।
- शोध आलेख और शैक्षिक पत्रिकाएँ: शोध आलेख और शैक्षिक पत्रिकाओं में प्रकाशित संबंधित विषयों के लेखों का विश्लेषण किया जाएगा। इससे विषय के

विविध दृष्टिकोणों को समझने और वर्तमान समय में गुरुकुल शिक्षा पद्धति के महत्व का विश्लेषण करने में मदद मिलेगी।

- पुस्तकें: विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखी गई पुस्तकों का अध्ययन किया जाएगा, जो गुरुकुल शिक्षा पद्धति, भारतीय शैक्षिक परंपराओं और शैक्षिक संस्कारों से संबंधित हैं। इन पुस्तकों से विषय का गहन ज्ञान प्राप्त होगा।

1.5.3. डेटा का विश्लेषण:

गुणात्मक शोध में डेटा का विश्लेषण विषयगत विश्लेषण (Thematic Analysis) के माध्यम से किया जाएगा। यह प्रविधि विभिन्न ग्रंथों और लेखों से प्राप्त सूचनाओं को संबंधित विषयों के आधार पर वर्गीकृत करने और उनके विश्लेषण में सहायक है। इसमें गुरुकुल शिक्षा के संदर्भ में शैक्षिक संस्कारों के दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, और सामाजिक महत्व को समझने का प्रयास किया जाएगा।

1.5.4. डेटा की विश्वसनीयता और वैधता:

डेटा की विश्वसनीयता और वैधता सुनिश्चित करने के लिए त्रिकोणिकीकरण (Triangulation) का उपयोग किया जाएगा। इसके अंतर्गत विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जानकारी की तुलना कर उनकी सत्यता सुनिश्चित की जाएगी। इससे यह सुनिश्चित होगा कि अध्ययन में किसी प्रकार की पक्षपातपूर्ण या भ्रामक जानकारी का उपयोग न हो।

1.5.5. अनुसंधान प्रक्रिया:

- शोध समस्या की पहचान: सबसे पहले शोध समस्या को पहचानकर शोध के उद्देश्यों और शोध प्रश्नों को निर्धारित किया गया है।
- साहित्य का अध्ययन: प्राचीन ग्रंथों, शोध आलेखों, और पुस्तकों का अध्ययन किया जाएगा ताकि विषय से संबंधित सभी आवश्यक सूचनाएँ संकलित की जा सकें।
- डेटा का संकलन और विश्लेषण: दस्तावेज़ विश्लेषण के माध्यम से सूचनाओं का संकलन और उनके गहन विश्लेषण के द्वारा निष्कर्ष निकाला जाएगा।

1.5.6. नैतिकता के पहलू:

शोध में नैतिकता का पालन करना महत्वपूर्ण है। इसलिए शोध के दौरान साहित्य और सूचनाओं का उचित सन्दर्भ देना, प्राचीन ग्रंथों और विद्वानों के विचारों का आदर करना और किसी भी प्रकार की सूचना की वैधता का ध्यान रखना अनिवार्य है।

इस प्रकार गुणात्मक शोध प्रविधि इस शोध अध्ययन के लिए उपयुक्त है, क्योंकि यह गुरुकुल शिक्षा और शैक्षिक संस्कारों जैसे विषयों की गहनता और व्यापकता को समझने में सहायक है। प्राचीन ग्रंथों, पुस्तकों, और शोध आलेखों के अध्ययन के माध्यम से इस शोध का उद्देश्य शैक्षिक संस्कारों की प्राचीन परंपरा, उनके उद्देश्यों, उनके आधुनिक संदर्भ में अनुप्रयोग, और शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान को समझना है।

ⁱ अमरकोष, पृ० 64-65, सूत्र सं. 4

ⁱⁱ अस्य महतो भूतस्य निश्चितमेदद्यद्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरसः।

ⁱⁱⁱ तैत्तिरीय उपनिषद्

^{iv} अथर्ववेद, ११/३/१५ द सम्पा. एस. पी. पंडित बम्बई १८९५-९८

^v अथर्ववेद ११/५/२४

^{vi} मनुस्मृति २/६९

^{vii} छान्दोग्योपनिषद् २/२३/१

^{viii} शतपथ ब्राह्मण, १.५५

^{ix} जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान्.. तैत्तिरीय संहिता ६/३/१०/५

^x कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः। संभूतिं तस्य तां विद्याद्योनावभिजायते

^{xi} बुद्धिवृद्धिकराण्याषु धर्मयाणि च हितानि च। नित्यंशास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ।।

^{xii} द्वितीयजन्मनः पूर्वमारेभेताक्षरान् सुधीः, बृहस्पति

^{xiii} उपनयनं विद्यार्थस्य श्रुतितः संस्कार

^{xiv} ओम मम व्रते ते हृदयं दधामि. ॥ पारस्करगृह्यसूत्र १/८/८

^{xv} ज्ञेय इत्यध्ययनविधेरक्षरग्रहणमात्रपर्यवसायित्व परिहारेणार्थाज्ञानपर्यवसायित्वावगमाय।

^{xvi} आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि। स्वयमाचरते यस्मात् तस्मादाचार्य इष्यते।

^{xvii} एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः। योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते।

^{xviii} गकार सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य हारकः। उकारो विष्णुरव्यक्तस्त्रितयात्मा गुरुः परः।

^{xix} पाणिनीय सूत्र 3/2/78

^{xx} पाणिनीय सूत्र 4/4/62

^{xxi} पाणिनीय सूत्र 6/3/18

^{xxii} विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा ष्वेधिष्ठैऽहमस्मि

^{xxiii} य आतृणत्यवितथेन कर्णावदुःखं कुर्वन्नमृतं सम्प्रयच्छन् । तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत कतमच्चनाह ।

^{xxiv} वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः । शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ।

^{xxv} लौकिकं वैदिकं वापि तथाऽध्यात्मिकमेव च । आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् । मनु 2/117

^{xxvi} अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा । यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत् ।

^{xxvii} यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् ।

^{xxviii} रघुवंश, प्रथम, 95 तथा अभि. शा., प्रथम अंक

^{xxix} मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादि पोषाणात् । अध्यायपति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः ।'

^{xxx} वाल्मीकि, रामायण, कांड 3, पृष्ठ 120.

^{xxxi} शुक्ल, एम. भारतीय शिक्षा प्रणाली, पृष्ठ 45.

^{xxxii} मनुस्मृति, अध्याय 2, श्लोक 121.

^{xxxiii} व्यास, महाभारत, कांड 4, पृष्ठ 260.

^{xxxiv} तिवारी, आर. गुरुकुल शिक्षा प्रणाली, पृष्ठ 78.

^{xxxv} तक्षशिला विश्वविद्यालय का इतिहास, प्रकाशन विभाग, 1995, पृष्ठ 93.

^{xxxvi} पाणिनि अष्टाध्यायी, विद्याभवन, पृष्ठ 62.

^{xxxvii} मिथिला और शलाका परीक्षा, प्राचीन शिक्षा ग्रंथ, पृष्ठ 50.

^{xxxviii} कल्हण, राजतरंगिणी, कांड 6, पृष्ठ 315.

^{xxxix} नालंदा विश्वविद्यालय का इतिहास, आचार्य प्रकाशन, 1980, पृष्ठ 143.

^{xl} प्राचीन विश्वविद्यालयों का इतिहास, विद्या निकेतन, 1975, पृष्ठ 89.

^{xli} वल्लभी और विक्रमशिला, भारतीय विद्या भवन, पृष्ठ 67.

^{xlii} शास्त्री, डी. भारतीय शिक्षा का इतिहास, पृष्ठ 105.

अध्याय 2

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का स्वरूप और विकास

- 2.1 गुरुकुल शिक्षा का स्वरूप
- 2.2 गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शिक्षा के उद्देश्य
- 2.3 गुरुकुल शिक्षा का संगठन और प्रणाली
- 2.4. गुरुकुल शिक्षा का ऐतिहासिक विकास
- 2.5. गुरुकुल शिक्षा का विकास

अध्याय 2

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का स्वरूप और विकास

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में शिक्षा का स्वरूप केवल ज्ञान प्राप्ति तक सीमित नहीं था। यह जीवन के हर पहलू पर प्रभाव डालने वाला एक व्यापक दृष्टिकोण था। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के नैतिक, आध्यात्मिक, और बौद्धिक विकास को प्रोत्साहित करना था। यह पद्धति आज के समाज में भी प्रासंगिक है, जब शिक्षा का स्वरूप केवल आर्थिक लाभ तक सीमित हो गया है। हमें अपनी प्राचीन शिक्षा पद्धति जिसे गुरुकुल शिक्षा भी कहा जाता है उसके तत्वों को अपनाने की आवश्यकता है, जो व्यक्ति और समाज के सर्वांगीण विकास में सहायक हों। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की पृष्ठभूमि को समझने के लिए भारतीय शिक्षा के इतिहास में गहराई से जाना आवश्यक है। भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर आधारित थी, जिसे वैदिक काल से ही विकसित किया गया। इस शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं था, बल्कि जीवन के हर पहलू का विकास करना था। इसमें मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, और आध्यात्मिक विकास सभी शामिल थे। गुरुकुल में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्या, संस्कार, और मूल्य आधारित शिक्षा प्रदान करना था ताकि विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास हो सके।

2.1 गुरुकुल शिक्षा का स्वरूप

गुरुकुल प्रणाली का उल्लेख वैदिक साहित्य और प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। "गुरुकुल" शब्द की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है जिसमें "गुरु" का अर्थ शिक्षक या आचार्य और "कुल" का अर्थ परिवार या आवास से है। इस प्रकार, गुरुकुल का अर्थ गुरु के संरक्षण में चलने वाले विद्यालय से है जहाँ शिष्य उनके साथ रहकर ज्ञान प्राप्त करते थे। इस पद्धति में शिक्षा केवल शैक्षिक ज्ञान तक सीमित न होकर संपूर्ण व्यक्तित्व विकास को ध्यान में रखती थी। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का उल्लेख वैदिक साहित्य और प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। "ऋग्वेद" और "अथर्ववेद" में गुरु-शिष्य परंपरा का विवरण मिलता है, जिसमें इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था का महत्व बताया गया है। गुरुकुल प्रणाली में शिक्षा केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह नैतिक मूल्यों, आत्मसंयम, अनुशासन, तथा व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास

पर केंद्रित थी। "तैत्तिरीय उपनिषद" के शिक्षावल्ली खंड एक के अनुसार, गुरु का कर्तव्य है कि वे अपने शिष्य को न केवल शास्त्रों का अध्ययन कराएं बल्कि जीवन की सार्थकता, कर्तव्य, और सच्चे ज्ञान का भी बोध कराएं। इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल किताबी ज्ञान तक सीमित नहीं था, बल्कि शिष्य के जीवन के हर पहलू का विकास करना था।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली की मूल धारा थी, जो वैदिक काल से चली आ रही है। इस प्रणाली में शिक्षा का उद्देश्य केवल अकादमिक ज्ञान तक सीमित नहीं था, बल्कि इसका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास करना था। गुरुकुल प्रणाली का प्रमुख पहलू यह था कि विद्यार्थी अपने गुरु के सान्निध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरु का सान्निध्य और आश्रम का वातावरण विद्यार्थियों को न केवल शिक्षित करता था बल्कि उन्हें अनुशासित और जिम्मेदार नागरिक भी बनाता था। गुरुकुल प्रणाली का सबसे प्रारंभिक उल्लेख 'ऋग्वेद' में मिलता है, जिसे विश्व की प्राचीनतम धार्मिक पुस्तक माना जाता है। ऋग्वेद के अनुसार, ज्ञान प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन गुरु के साथ निवास करना है। ऋग्वेद में कई मंत्रों के माध्यम से गुरु-शिष्य परंपरा और शिक्षा के महत्व का उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिए, 'ऋग्वेद' में कहा गया है:

"अभि यं गच्छतो मम, ममार्यो न मित्रस्य चक्षसा..." (ऋग्वेद, मण्डल 1, सूक्त 62, मंत्र 10)

इस मंत्र में कहा गया है कि ज्ञान का शिष्य द्वारा आत्मसात करना गुरु की कृपा से ही संभव है। इस शिक्षा पद्धति में गुरुकुल के परिसर में शिष्य अपने गुरु के निर्देशन में जीवनयापन करते थे और उनसे विद्या का अध्ययन करते थे। यह केवल एक औपचारिक शिक्षा तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें जीवन के विभिन्न पहलुओं का भी अध्ययन किया जाता था।

'तैत्तिरीय उपनिषद' और 'छांदोग्य उपनिषद' में भी गुरुकुल शिक्षा का विस्तृत उल्लेख मिलता है। उपनिषदों में गुरु-शिष्य संवाद के माध्यम से ज्ञान का आदान-प्रदान होता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य शिष्य को न केवल बाहरी जगत के ज्ञान से

परिचित कराना था, बल्कि आत्मा के सत्य और उसके वास्तविक स्वरूप को भी समझाना था। तैत्तिरीय उपनिषद में यह वर्णन किया गया है कि शिष्य अपने गुरु के सानिध्य में शिक्षा प्राप्त करने के बाद समाज में अपना योगदान देने के लिए तैयार होता था। तैत्तिरीय उपनिषद में वर्णित है:

"वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति सत्यं वद। धर्मं चर।" (तैत्तिरीय उपनिषद, भाग 1, अनुच्छेद 11)

यहां गुरु शिष्य को सत्य और धर्म का पालन करने का उपदेश देता है, जो गुरुकुल शिक्षा का मूल सिद्धांत है। इसके माध्यम से छात्रों में नैतिक मूल्यों का विकास किया जाता था। गुरु शंकराचार्य और अन्य संतों ने शिक्षा के माध्यम से समाज में वैदिक ज्ञान का प्रचार किया। शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठ और शिक्षा संस्थान गुरुकुल पद्धति पर आधारित थे। 'माधवीय शंकरविजयम्' में शंकराचार्य की शिक्षाओं का वर्णन मिलता है, जिसमें बताया गया है कि उन्होंने गुरुकुल शिक्षा पद्धति के माध्यम से ज्ञान का प्रसार किया था।

2.2 गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शिक्षा के उद्देश्य

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का प्रमुख उद्देश्य जीवन के सभी पहलुओं का संतुलित विकास करना था। इसमें न केवल अकादमिक और शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी, बल्कि छात्रों के नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास का भी ध्यान रखा जाता था। इसका लक्ष्य था कि छात्र जीवन में आने वाली सभी चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार हो सकें और एक अच्छे नागरिक बनें।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में छात्रों को निम्नलिखित प्रकार की शिक्षा दी जाती थी:

1. **वेद और शास्त्रों का अध्ययन:** वेद, उपनिषद, पुराण और धर्मशास्त्र का अध्ययन गुरुकुल शिक्षा पद्धति का मूलभूत हिस्सा था। इसके माध्यम से छात्रों को न केवल धार्मिक ज्ञान प्राप्त होता था बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी वे सशक्त बनते थे। उपनिषदों में यह स्पष्ट कहा गया है कि ज्ञान का उद्देश्य आत्मा की पहचान करना है और उसका सत्य स्वरूप जानना है। तैत्तिरीय उपनिषद के भाग दो अनुच्छेद पाँच में लिखा गया है: "विद्या से आत्मा का साक्षात्कार होता है।"

2. **चारित्रिक और नैतिक शिक्षा:** गुरुकुल में छात्रों को नैतिक शिक्षा दी जाती थी, जिससे उनके चरित्र का निर्माण होता था। गुरु और शिष्य का रिश्ता केवल विद्या का आदान-प्रदान तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें अनुशासन, नैतिकता और सेवा भाव भी सिखाया जाता था। महाभारत में गुरु द्रोणाचार्य और उनके शिष्यों का संबंध इसके प्रमुख उदाहरण हैं। महाभारत के आदिपर्व अध्याय 35, श्लोक 8 में उल्लेख मिलता है कि कैसे गुरु द्रोणाचार्य ने शिष्यों को न केवल शस्त्र विद्या, बल्कि अपने कर्तव्यों का भी बोध कराया।
3. **व्यावहारिक शिक्षा:** गुरुकुल शिक्षा पद्धति में छात्र अपने गुरु के साथ दैनिक कार्यों में भाग लेते थे, जिससे वे जीवन के व्यावहारिक पहलुओं को समझ पाते थे। यह शिक्षा प्रणाली छात्रों को स्वावलंबी बनाती थी। गुरु के आश्रम में रहने के दौरान शिष्य आश्रम की देखरेख, भोजन की व्यवस्था, और अन्य कार्यों में सहयोग करते थे।
4. **कला और शिल्प शिक्षा:** गुरुकुल शिक्षा पद्धति में कला और शिल्प का भी शिक्षण होता था। इसमें संगीत, नृत्य, चित्रकला, और हस्तकला आदि का ज्ञान दिया जाता था। गुरुकुल में छात्रों को शस्त्र और शास्त्र दोनों का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिलता था।
5. 'नारद संहिता अध्याय 4, श्लोक 15' में उल्लेख मिलता है कि विद्यार्थियों को कला और शिल्प में भी पारंगत किया जाता था ताकि वे जीवन में अपनी जीविका कमा सकें।

2.3 गुरुकुल शिक्षा का संगठन और प्रणाली

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का संगठन बहुत ही व्यवस्थित और सुविचारित था। इसमें गुरु का स्थान सर्वोपरि होता था और उनके निर्देशन में शिक्षा दी जाती थी। इस पद्धति के तहत छात्र एक बड़े परिवार की तरह गुरु के साथ रहते थे और उनसे जीवन के हर पहलू में मार्गदर्शन प्राप्त करते थे।

1. **गुरु का महत्व:** गुरुकुल प्रणाली में गुरु का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण होता था। गुरु को शिक्षा का स्रोत माना जाता था, और छात्रों की प्रगति गुरु के ज्ञान और व्यक्तित्व पर निर्भर करती थी। तैत्तिरीय उपनिषद भाग तीन, अनुच्छेद एक में गुरु की महत्ता पर जोर देते हुए उनकी प्रार्थना दैवीय सत्ता के रूप में की गई है।
2. **आश्रम प्रणाली:** गुरुकुल शिक्षा पद्धति का संचालन आश्रम प्रणाली के माध्यम से होता था। इस प्रणाली में छात्रों को गुरु के आश्रम में रहना होता था और वे जीवन के विभिन्न आयामों को सीखते थे। आश्रम में रहने से वे आत्मानुशासन और आत्मनिर्भरता की भावना को विकसित करते थे।
3. **शिक्षा का अनौपचारिक तरीका:** गुरुकुल में शिक्षा अनौपचारिक और संवादमूलक होती थी। छात्रों को प्रश्न पूछने और चर्चा करने की स्वतंत्रता होती थी। उपनिषदों में 'प्रश्नोपनिषद' के उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि शिष्य गुरु से प्रश्न पूछते थे और गुरु उन प्रश्नों का समाधान करते थे। प्रश्नोपनिषद में शिष्यों द्वारा गुरु से प्रश्न करने और उनके उत्तर पाने की प्रक्रिया का वर्णन मिलता है।
4. **शिक्षा की अवधि:** गुरुकुल में शिक्षा की कोई निश्चित अवधि नहीं होती थी। यह छात्र की योग्यता, उत्सुकता, और गुरु के निर्देशों पर निर्भर करता था। जब गुरु यह समझते थे कि छात्र ने पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर लिया है और जीवन के लिए तैयार है, तब उसे आश्रम से विदा दी जाती थी।

गुरुकुल शिक्षा के स्वरूप और उद्देश्य को स्पष्ट करने के बाद इसके वैशिष्ट्य को स्पष्ट करना उचित होगा। गुरुकुल शिक्षा का वैशिष्ट्य निम्नानुसार है -

2.3.1. शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थियों का शारीरिक विकास प्राथमिकता से होता था। विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के शारीरिक कार्यों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था, जैसे आश्रम की साफ-सफाई करना, जल लाना, भोजन तैयार करना, और अन्य शारीरिक श्रम। इन कार्यों से विद्यार्थियों में न केवल शारीरिक शक्ति बढ़ती थी, बल्कि उनमें स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता की भावना भी विकसित होती थी।¹

मानसिक विकास के लिए विद्यार्थियों को तर्कशक्ति और आत्मनिरीक्षण करने के लिए प्रेरित किया जाता था। वेदों, उपनिषदों और शास्त्रों का अध्ययन करते समय विद्यार्थियों को विभिन्न प्रश्नों के उत्तर देने के लिए सोचना पड़ता था, जिससे उनकी सोचने-समझने की क्षमता विकसित होती थी। इसके अलावा, ध्यान और योग का अभ्यास विद्यार्थियों को मानसिक शांति प्रदान करता था और उनके मन को एकाग्र बनाता था।ⁱⁱ

आध्यात्मिक विकास भी गुरुकुल शिक्षा का महत्वपूर्ण हिस्सा था। विद्यार्थियों को गुरु के मार्गदर्शन में तपस्या, ध्यान, और धार्मिक क्रियाओं का अभ्यास कराया जाता था। इससे वे अपने भीतर की शक्ति को पहचानते थे और आत्मानुभूति का अनुभव करते थे। यह उन्हें जीवन में आने वाली कठिनाइयों से जूझने की शक्ति प्रदान करता था और उन्हें आत्म-नियंत्रण सिखाता था।ⁱⁱⁱ

2.3.2. गुरु-शिष्य परंपरा का महत्व

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी गुरु-शिष्य परंपरा। गुरु केवल एक शिक्षक नहीं होता था, बल्कि वह विद्यार्थियों के जीवन में मार्गदर्शक, संरक्षक और आदर्श होता था। विद्यार्थी अपने गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण और श्रद्धा रखते थे। इस परंपरा में गुरु का आशीर्वाद विद्यार्थियों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता था और उनकी शिक्षाओं का अनुसरण विद्यार्थी अपने जीवन भर करते थे।^{iv}

गुरु का सान्निध्य विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ-साथ जीवन के मूल्यों को भी सिखाता था। गुरु उन्हें संयम, अनुशासन, सच्चाई, और करुणा जैसे गुणों का महत्व समझाते थे। शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं होती थी, बल्कि इसका उद्देश्य जीवन के विभिन्न पहलुओं का समुचित ज्ञान प्राप्त करना होता था।^v

2.3.3. शिक्षा का व्यावहारिक पक्ष

गुरुकुल में शिक्षा का दृष्टिकोण पूरी तरह से व्यावहारिक था। विद्यार्थी न केवल शास्त्रों का अध्ययन करते थे, बल्कि वे जीवन में उनके व्यावहारिक उपयोग को भी समझते थे। जैसे कि ज्योतिष और चिकित्सा का ज्ञान न केवल सिद्धांतों तक सीमित था, बल्कि इनका उपयोग जीवन में कैसे करना है, यह भी सिखाया जाता था। इसी प्रकार, धर्मशास्त्र

और नीति शास्त्र का अध्ययन करने से विद्यार्थियों में सामाजिक जिम्मेदारी और नैतिकता का विकास होता था।^{vi} गुरुकुल में शिक्षा व्यक्तिगत विकास पर केंद्रित होती थी और इसका उद्देश्य केवल नौकरी पाने तक सीमित नहीं होता था। विद्यार्थियों को समाज में अपनी जिम्मेदारी का एहसास कराया जाता था और उन्हें समाज के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया जाता था।^{vii}

2.3.4. समाज और पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थियों को समाज और पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाना भी महत्वपूर्ण था। आश्रम में रहने के दौरान विद्यार्थी प्रकृति के साथ घुल-मिल जाते थे और उसे समझने का प्रयास करते थे। उन्हें वृक्षों की देखभाल करना, जलस्रोतों का संरक्षण करना, और पशुपालन करना सिखाया जाता था। इससे उनमें प्रकृति के प्रति आदर और संरक्षण की भावना विकसित होती थी।^{viii} समाज के प्रति संवेदनशीलता का अर्थ था कि विद्यार्थी अपने ज्ञान का उपयोग समाज के उत्थान के लिए करें। वे समाज के विभिन्न पहलुओं को समझते थे और अपनी शिक्षा का उपयोग सामाजिक समस्याओं का समाधान करने के लिए करते थे।^{ix}

2.3.5. विद्यार्थियों में नैतिकता और अनुशासन का विकास

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का एक प्रमुख पहलू था विद्यार्थियों में नैतिकता और अनुशासन का विकास करना। आश्रम के नियम और अनुशासन विद्यार्थी के जीवन का हिस्सा बन जाते थे। उन्हें सिखाया जाता था कि कैसे कठिन परिस्थितियों में भी संयम और धैर्य बनाए रखना चाहिए। शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में ईमानदारी, सहानुभूति, और आत्मसंयम जैसे गुणों का विकास किया जाता था।^x नैतिक शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों को समाज में सत्य और धर्म का पालन करने के लिए प्रेरित किया जाता था। उन्हें सिखाया जाता था कि जीवन में सफलता केवल ज्ञान से नहीं, बल्कि अच्छे कर्मों से प्राप्त होती है।^{xi}

2.3.6. शिक्षा में कला और संस्कृति का स्थान

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में कला और संस्कृति का भी विशेष स्थान था। विद्यार्थी संगीत, नृत्य, चित्रकला, और काव्य जैसी कलाओं का अध्ययन करते थे। ये कलाएं उनके मानसिक और

भावनात्मक विकास में सहायक होती थीं। कला के माध्यम से विद्यार्थी अपनी भावनाओं को व्यक्त करते थे और अपने मानसिक संतुलन को बनाए रखते थे।^{xii} इसके अलावा, भारतीय संस्कृति और परंपराओं का ज्ञान विद्यार्थियों को गुरुकुल में दिया जाता था। उन्हें विभिन्न पर्वों और त्योहारों का महत्व समझाया जाता था और उनकी धार्मिक तथा सांस्कृतिक धरोहर से परिचित कराया जाता था।^{xiii}

इस प्रकार ये कहा जा सकता है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली एक संपूर्ण शिक्षा प्रणाली थी जिसमें शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास पर ध्यान दिया जाता था। इसमें केवल शैक्षणिक ज्ञान नहीं, बल्कि जीवन के हर पहलू का समुचित विकास होता था। विद्यार्थी अपने गुरु के सान्निध्य में रहकर जीवन के हर पहलू को समझते थे और समाज के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का उपयोग करने के लिए प्रेरित होते थे। गुरुकुल शिक्षा का उद्देश्य समाज को ऐसे नागरिक प्रदान करना था जो न केवल शास्त्रज्ञ हों, बल्कि नैतिक, जिम्मेदार, और संवेदनशील भी हों। गुरुकुलों का यह वैशिष्ट्य भारतीय संस्कृति के विकास क्रम के साथ प्रवाहमान है। इस विकास क्रम कि निम्नानुसार उल्लेखित किया जा सकता है-

2.4. गुरुकुल शिक्षा का ऐतिहासिक विकास

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का इतिहास बहुत प्राचीन है, जिसकी जड़ें वैदिक काल में पाई जाती हैं। यह प्रणाली भारत के सांस्कृतिक और शैक्षिक परंपरा की धरोहर है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक इसके स्वरूप और कार्यप्रणाली में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इस विकास को समझने के लिए हमें इसे विभिन्न कालखंडों में विभाजित करके देखना होगा।

2.4.1. वैदिक काल में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली

गुरुकुल शिक्षा पद्धति भारतीय शिक्षा प्रणाली का सबसे पुराना और प्रमुख रूप है। इसका उल्लेख वेदों, उपनिषदों और अन्य प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। गुरुकुल एक ऐसी संस्था थी जहाँ छात्रों को अपने गुरु के अधीन शिक्षा दी जाती थी। इसमें छात्रों का निवास स्थान भी गुरुकुल के भीतर ही होता था, जहाँ वे गुरु के निर्देशन में जीवन के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान प्राप्त करते थे। इस प्रणाली में मुख्यतः तीन तरह की शिक्षा दी जाती थी:

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। इस पद्धति का उद्देश्य न केवल विद्या अर्जन करना था, बल्कि छात्रों में नैतिक और सामाजिक मूल्यों का भी समावेश करना था।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का उल्लेख सबसे पहले ऋग्वेद में मिलता है, जहाँ इसे 'सह-अध्यायन' कहा गया है। इस प्रणाली में शिक्षा न केवल पाठ्य पुस्तकों तक सीमित थी, बल्कि इसमें संगीत, कला, शिल्प, धर्म, संस्कृति, और वैदिक ज्ञान का भी समावेश था। 'ऋग्वेद' के एक श्लोक में कहा गया है कि "विद्या का सबसे उत्तम स्वरूप गुरु से ही प्राप्त होता है" (ऋग्वेद, मण्डल 1, सूक्त 62)। इस काल में शिक्षा का माध्यम मौखिक था। गुरु अपने आश्रम में विद्यार्थियों को शास्त्रों का ज्ञान मौखिक रूप से प्रदान करते थे और विद्यार्थी उसे याद करके गुरु के सामने प्रस्तुत करते थे। इस प्रकार, शिक्षा का संपूर्ण आदान-प्रदान स्मरण शक्ति पर आधारित था।^{xiv}

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी बचपन से ही गुरु के पास रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा में धार्मिक, नैतिक, और दार्शनिक ज्ञान के साथ-साथ शारीरिक विकास का भी ध्यान रखा जाता था। विद्यार्थी के जीवन में अनुशासन और संयम अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता था।^{xv}

2.4.2. महाभारत और रामायण काल में शिक्षा का स्वरूप

महाभारत और रामायण जैसे महाकाव्यों में भी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का उल्लेख मिलता है। राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न जैसे पात्रों ने महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी। इसी प्रकार, महाभारत में अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर आदि ने द्रोणाचार्य के आश्रम में अपनी शिक्षा पूरी की थी।^{xvi}

इस काल में शिक्षा का उद्देश्य शास्त्र और शस्त्र दोनों का ज्ञान प्रदान करना था। विद्यार्थियों को न केवल वेद-पुराणों का ज्ञान दिया जाता था, बल्कि युद्ध कला, धनुर्विद्या, और नीति शास्त्र का भी अध्ययन कराया जाता था। इस प्रकार, शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को समाज के लिए एक संपूर्ण व्यक्तित्व बनाना था।^{xvii}

2.4.3. बौद्ध काल में शिक्षा का विकास

बौद्ध काल में शिक्षा के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस काल में तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई, जो तत्कालीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का उन्नत रूप थे। तक्षशिला और नालंदा जैसे स्थान ज्ञान के केंद्र बन गए और देश-विदेश से विद्यार्थी यहाँ अध्ययन के लिए आने लगे।^{xviii}

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का विस्तार इस काल में हुआ और इसमें बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का भी समावेश हुआ। बौद्ध धर्म के विकास ने शिक्षा में करुणा, अहिंसा, और साधना का महत्व बढ़ा दिया। विद्यार्थियों को जीवन के हर पहलू का सम्यक ज्ञान प्रदान करने के लिए इन विश्वविद्यालयों में व्यापक विषयों का अध्ययन कराया जाता था।^{xix}

2.4.3. गुप्त काल में शिक्षा का स्वर्णिम युग

गुप्त काल को भारतीय इतिहास में शिक्षा का स्वर्णिम युग माना जाता है। इस समय गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बड़े बदलाव आए और यह और भी संगठित और व्यापक हो गई। शिक्षा का उद्देश्य केवल धार्मिक और शास्त्रीय ज्ञान नहीं था, बल्कि विज्ञान, गणित, खगोलशास्त्र, और चिकित्सा का भी अध्ययन कराया जाता था।^{xx}

इस काल में आर्यभट और वराहमिहिर जैसे महान वैज्ञानिकों और गणितज्ञों ने अपनी शिक्षा गुरुकुलों में प्राप्त की थी। शिक्षा का विस्तार समाज के विभिन्न वर्गों तक हुआ और इसमें शिल्प, कला, और विज्ञान का भी समावेश किया गया।^{xxi}

2.4.4. मध्यकालीन भारत में शिक्षा का पतन

मध्यकालीन भारत में मुस्लिम आक्रमणों के साथ ही गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर विपरीत प्रभाव पड़ा। इस काल में कई गुरुकुल और शिक्षा संस्थान नष्ट कर दिए गए और शिक्षा का स्वरूप बदलने लगा। फारसी और अरबी भाषाओं के प्रसार के कारण शिक्षा का माध्यम भी बदल गया और गुरुकुलों का महत्व घटने लगा।^{xxii}

मध्यकालीन काल में कुछ स्थानों पर गुरुकुलों ने अपना अस्तित्व बनाए रखा, लेकिन इनकी संख्या में भारी कमी आई। शिक्षा का स्तर भी गिर गया और इसमें शास्त्रीय

ज्ञान का प्रसार सीमित हो गया। इस काल में शिक्षा का अधिकतर हिस्सा धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित रह गया।^{xxiii}

2.4.5. आधुनिक काल में पुनरुत्थान प्रयास

ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय शिक्षा प्रणाली में कई बदलाव हुए। अंग्रेजों ने आधुनिक शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की, जिसके परिणामस्वरूप गुरुकुलों का महत्व कम होने लगा। हालांकि, इस समय भी कई विद्वानों ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया।^{xxiv}

स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना के साथ ही गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के पुनरुत्थान का प्रयास किया। उन्होंने हरिद्वार में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना की, जहां प्राचीन शिक्षा प्रणाली के अनुरूप विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान की जाने लगी। इसी प्रकार, महर्षि दयानंद और अन्य संतों ने भी इस दिशा में प्रयास किए।^{xxv}

2.4.6. स्वतंत्रता के बाद गुरुकुल शिक्षा का विकास

भारत की स्वतंत्रता के बाद गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को नए सिरे से पहचान दिलाने का प्रयास हुआ। आज भी कई संस्थान गुरुकुल पद्धति के अनुरूप शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, जैसे कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय और अन्य सांस्कृतिक शिक्षा केंद्र। इन संस्थानों में विद्यार्थी प्राचीन भारतीय शास्त्रों और परंपराओं का अध्ययन करते हैं और उन्हें आधुनिक विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का भी ज्ञान दिया जाता है।^{xxvi}

2.4.7. वर्तमान में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली

वर्तमान समय में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का स्वरूप काफी बदल चुका है। हालांकि आज की शिक्षा प्रणाली आधुनिक पाठ्यक्रम पर आधारित है, लेकिन कई संस्थान ऐसे हैं जो गुरुकुल प्रणाली को जीवित रखे हुए हैं। इन गुरुकुलों में विद्यार्थियों को शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान की जाती है।^{xxvii}

वर्तमान गुरुकुलों में ध्यान, योग, और शास्त्रों का अध्ययन कराया जाता है, जो विद्यार्थियों को एक संपूर्ण शिक्षा प्रदान करते हैं। इसके साथ ही उन्हें आधुनिक विषयों का

भी ज्ञान दिया जाता है, ताकि वे समय के साथ तालमेल बिठा सकें।^{xxviii} आज के समय में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का महत्व इसलिए भी बढ़ गया है क्योंकि यह बच्चों के संपूर्ण विकास पर जोर देती है। लेकिन इसके साथ ही इसमें कई चुनौतियां भी हैं। आधुनिक तकनीकी शिक्षा और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के बीच गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का स्थान सीमित होता जा रहा है। हालांकि, इसके सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं और शिक्षा प्रणाली में नैतिक मूल्यों के समावेश की आवश्यकता को दर्शाते हैं।^{xxix}

2.5. गुरुकुल शिक्षा का ऐतिहासिक विकास

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का ऐतिहासिक विकास भारतीय शैक्षिक परंपरा की महान धरोहर है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक इस प्रणाली में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, लेकिन इसका मूल उद्देश्य विद्यार्थियों का संपूर्ण विकास करना हमेशा से एक ही रहा है। आज भी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली भारतीय समाज में अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। यहाँ कुछ गुरुकुलों का वर्णन आवश्यक है जिससे उनकी गतिविधियों पर विचार किया जा सके-

2.5.1. गुरुकुल कांगड़ी

स्वामी श्रद्धानंद ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना 1902 में की थी। उन्होंने ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के खिलाफ एक विकल्प के रूप में वैदिक परंपरा पर आधारित शिक्षा की आवश्यकता महसूस की थी। यह संस्थान भारतीय युवाओं को उनकी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने का एक प्रयास था। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की शिक्षा पद्धति वैदिक गुरुकुल परंपरा पर आधारित है, जहाँ विद्यार्थियों को गुरु-शिष्य परंपरा के अनुसार शिक्षा दी जाती है। यहाँ शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य विद्यार्थियों का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास करना है।^{xxx} गुरुकुल कांगड़ी में विद्यार्थियों की दिनचर्या बहुत ही अनुशासित होती है। यहाँ के छात्रों को प्रातःकाल यज्ञ और योगाभ्यास करना अनिवार्य होता है। गुरुकुल का शैक्षिक वातावरण विद्यार्थियों को स्वावलंबी और चरित्रवान बनाने का प्रयास करता है।^{xxxi} गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का उद्देश्य भारतीय संस्कृति और मूल्यों का संरक्षण करना है। यह विद्यार्थियों को न केवल वैदिक ज्ञान देता है बल्कि उन्हें जीवन जीने की कला भी सिखाता है। विद्यार्थियों में नैतिकता, आत्म-संयम, और समाज सेवा की भावना विकसित करना यहाँ की

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।^{xxxii} हालांकि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का आधार वैदिक शिक्षा है, लेकिन यहाँ आधुनिक विषय जैसे विज्ञान, गणित, प्रबंधन, और तकनीकी शिक्षा को भी पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। इस प्रकार यह गुरुकुल प्राचीन और आधुनिक शिक्षा का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करता है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। यहाँ के विद्यार्थियों में देशभक्ति, त्याग, और समाज सेवा की भावना विकसित की जाती है।^{xxxiii}

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय भारतीय शिक्षा प्रणाली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ परंपरागत और आधुनिक शिक्षा का मिश्रण विद्यार्थियों को चरित्रवान और समाज के प्रति जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने भारतीय संस्कृति, शिक्षा और समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और आज भी शिक्षा के क्षेत्र में अपने उद्देश्यों को सफलतापूर्वक पूरा कर रहा है।

2.5.2. श्री स्वामीनारायण गुरुकुल, राजकोट का विस्तार से विवरण

श्री स्वामीनारायण गुरुकुल, राजकोट, गुजरात में स्थित एक प्रमुख शिक्षण संस्थान है, जो प्राचीन भारतीय गुरुकुल परंपरा और आधुनिक शिक्षा का समन्वय करता है। इस गुरुकुल की स्थापना 1948 में श्रीधर्मजीवन दासजी स्वामी ने की थी। इसका उद्देश्य युवाओं में वैदिक शिक्षा और नैतिक मूल्यों का समावेश करते हुए उन्हें समर्पित, स्वावलंबी, और समाज के प्रति जिम्मेदार नागरिक बनाना है। स्वामीनारायण संप्रदाय की गुरुकुल परंपरा पर आधारित, श्री स्वामीनारायण गुरुकुल की स्थापना का उद्देश्य था कि आधुनिक शिक्षा के साथ साथ भारतीय संस्कृति, धर्म, और नैतिक मूल्यों को बनाए रखा जा सके। "इसके संस्थापक श्रीधर्मजीवन दासजी स्वामी ने गुरुकुल का आरंभ भारतीय युवाओं के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य से किया था। गुरुकुल का आदर्श रहा है 'विद्या विनयेन शोभते' — विद्या विनय से शोभा पाती है।"^{xxxiv} श्री स्वामीनारायण गुरुकुल में शिक्षा का मुख्य आधार वैदिक शिक्षा पद्धति है, जिसमें छात्रों को गुरुओं के निकट रहकर ज्ञान अर्जित करना होता है। यहां गुरुकुल परंपरा के अनुसार, छात्रों का शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास भी सुनिश्चित किया जाता है। "इसमें वेद, उपनिषद, भगवद गीता, पुराण, तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन के साथ ही आधुनिक विषय जैसे विज्ञान, गणित,

और कंप्यूटर शिक्षा भी दी जाती है।^{xxxv} गुरुकुल की दैनिक दिनचर्या में प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में उठकर योगाभ्यास, प्राणायाम, और ध्यान शामिल है। इसके बाद वैदिक मंत्रों का उच्चारण और यज्ञ किया जाता है। छात्रों के लिए नियमित अध्ययन के साथ-साथ शारीरिक व्यायाम, खेलकूद, और अन्य गतिविधियाँ अनिवार्य हैं। इसके अलावा “विद्यार्थियों को कृषि और विभिन्न शिल्पों का भी ज्ञान दिया जाता है ताकि वे जीवन के हर पहलू में सक्षम बन सकें।”^{xxxvi}

यहाँ परंपरागत गुरु-शिष्य संबंधों को आधुनिक युग के अनुरूप बनाते हुए एक अनुशासित वातावरण में शिक्षा दी जाती है। छात्र अपने गुरुओं के साथ घनिष्ठ संबंध रखते हैं और उनसे केवल शैक्षिक ही नहीं बल्कि जीवन जीने की कला भी सीखते हैं। यहाँ का अनुशासन और अनुशासनात्मक शिक्षण प्रणाली छात्र को मानसिक रूप से मजबूत और आत्मनिर्भर बनाती है। गुरुकुल में आधुनिक शिक्षा को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। छात्रों को विज्ञान, गणित, और कंप्यूटर विज्ञान जैसे विषयों का गहन ज्ञान प्राप्त होता है। यह गुरुकुल छात्रों को भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करता है, जबकि उनकी सांस्कृतिक जड़ों को मजबूत बनाए रखता है। यहाँ के विद्यार्थी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परीक्षाओं में भी उत्कृष्ट प्रदर्शन कर रहे हैं।

श्री स्वामीनारायण गुरुकुल में शिक्षा का लक्ष्य केवल शैक्षिक ज्ञान देना ही नहीं है, बल्कि छात्रों का नैतिक और आध्यात्मिक विकास भी करना है। “छात्रों को सामाजिक सेवा, धार्मिक कृत्य, और नैतिकता पर आधारित जीवन जीने की प्रेरणा दी जाती है। इसके परिणामस्वरूप, वे समाज में आदर्श नागरिक के रूप में अपनी भूमिका निभाते हैं। धार्मिक और नैतिक शिक्षण के माध्यम से विद्यार्थियों में सहानुभूति, त्याग, और परोपकार जैसे गुण विकसित किए जाते हैं।”^{xxxvii} श्री स्वामीनारायण गुरुकुल का भारतीय समाज में शिक्षा और नैतिकता के क्षेत्र में अत्यधिक योगदान रहा है। यहाँ से निकले छात्र विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त कर रहे हैं और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन कर रहे हैं। “इस गुरुकुल का उद्देश्य न केवल छात्रों को शैक्षिक रूप से सक्षम बनाना है, बल्कि उन्हें समाज सेवा के महत्व को भी सिखाना है।”^{xxxviii}

श्री स्वामीनारायण गुरुकुल, राजकोट, भारतीय शिक्षा प्रणाली का एक अनूठा उदाहरण है। यहाँ प्राचीन गुरुकुल परंपरा के साथ-साथ आधुनिक शिक्षा का संयोग विद्यार्थियों को जीवन के हर क्षेत्र में सक्षम बनाता है। गुरुकुल शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान देना नहीं है, बल्कि छात्रों को नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से तैयार करना भी है ताकि वे समाज में सकारात्मक योगदान दे सकें। इस प्रकार श्री स्वामीनारायण गुरुकुल भारतीय शिक्षा की प्राचीन प्रणाली और आधुनिक आवश्यकताओं के बीच सेतु का कार्य करता है, जिससे युवा पीढ़ी का सर्वांगीण विकास संभव हो सके।

2.5.3. महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम, नोएडा का विस्तार से विवरण

महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम, नोएडा, एक प्रख्यात शिक्षण संस्थान है जो प्राचीन वेदिक ज्ञान और आधुनिक शिक्षा का उत्कृष्ट समन्वय प्रस्तुत करता है। यह गुरुकुल महर्षि महेश योगी द्वारा स्थापित किया गया था और इसका उद्देश्य भारतीय वेदिक परंपराओं के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना है। यह संस्थान आधुनिक विज्ञान और प्राचीन वेदिक शिक्षा का संयोजन करते हुए विद्यार्थियों को शिक्षित और संस्कारित बनाता है।

महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम की स्थापना महर्षि महेश योगी द्वारा की गई थी, जो 'महर्षि महेश योगी वेद विज्ञान विश्वविद्यापीठम' के अंतर्गत आता है। महर्षि का उद्देश्य था कि विश्वभर में भारतीय ज्ञान की महान परंपरा को पुनः स्थापित किया जाए और वेदिक शिक्षा का लाभ हर व्यक्ति तक पहुँचे। "इस गुरुकुल का लक्ष्य है कि विद्यार्थियों में न केवल शैक्षिक बल्कि मानसिक, शारीरिक और आत्मिक विकास को भी सुनिश्चित किया जाए²।"^{xxxix} महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम में शिक्षा का मुख्य आधार वेद और वेदांग हैं। यहाँ छात्रों को वैदिक मंत्रों का अभ्यास, वेदांत, आयुर्वेद, और योगाभ्यास का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके साथ ही आधुनिक विज्ञान, गणित, और कंप्यूटर जैसे विषयों की शिक्षा भी प्रदान की जाती है।

गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली छात्रों को सर्वांगीण विकास की दिशा में प्रेरित करती है। "यहाँ का पाठ्यक्रम छात्रों को शास्त्र और विज्ञान दोनों का ज्ञान प्रदान करता है, जिससे उनका मानसिक और बौद्धिक विकास संभव हो सके³।"^{xl} महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम में योग और ध्यान का विशेष महत्व है। यहाँ छात्र नियमित रूप से ध्यान करते हैं और

योगाभ्यास के माध्यम से अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाते हैं। महर्षि महेश योगी का मानना था कि ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपनी आंतरिक शांति को प्राप्त कर सकता है और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी को बेहतर तरीके से समझ सकता है। "गुरुकुल में 'ट्रान्सेडेंटल मेडिटेशन' का अभ्यास छात्रों को मानसिक शांति और एकाग्रता प्रदान करने के लिए कराया जाता है।"⁴ "xli" महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम की दिनचर्या काफी अनुशासित और व्यवस्थित होती है। छात्रों का दिन प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में उठकर योग और ध्यान से शुरू होता है। इसके बाद वैदिक मंत्रों का अभ्यास और यज्ञ किया जाता है। शिक्षा के साथ ही छात्रों को समाज सेवा, कृषि कार्य, और आत्मनिर्भर बनने के लिए विभिन्न शिल्पों का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। गुरुकुल में सादा जीवन और उच्च विचार का आदर्श छात्रों के जीवन में रच-बस जाता है, जिससे वे समाज के लिए योगदान देने वाले आदर्श नागरिक बन सकें।

महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम में छात्रों को वैदिक शिक्षा के साथ-साथ आधुनिक विज्ञान और तकनीकी शिक्षा भी प्रदान की जाती है। यहाँ छात्रों को गणित, भौतिकी, रसायन विज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान आदि विषयों में प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वे वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुसार खुद को तैयार कर सकें। इस प्रकार गुरुकुल का लक्ष्य है कि विद्यार्थी पारंपरिक और आधुनिक शिक्षा दोनों में पारंगत हों और भविष्य की चुनौतियों का सामना कर सकें। महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों का नैतिक और आध्यात्मिक विकास करना है। यहाँ छात्रों को वेदों की शिक्षा, ध्यान, और सामाजिक सेवा के माध्यम से उच्च नैतिक मूल्यों का पालन सिखाया जाता है। यह गुरुकुल शिक्षा को केवल जानकारी प्रदान करने तक सीमित नहीं रखता, बल्कि छात्रों में सेवा, सहिष्णुता, और सामाजिक योगदान के गुण भी विकसित करता है। "गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य है कि विद्यार्थी ज्ञानवान और आत्मनिष्ठ बन सकें, जो समाज में सकारात्मक योगदान देने के लिए प्रेरित हों।"⁷ "xlii" महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम, नोएडा, अपने छात्रों को केवल शैक्षिक रूप से सक्षम नहीं बनाता, बल्कि उन्हें समाज के प्रति जागरूक और जिम्मेदार नागरिक भी बनाता है। यहाँ के विद्यार्थी विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त कर रहे हैं और समाज में अपने नैतिक मूल्यों का प्रभाव स्थापित कर रहे हैं। "इस गुरुकुल का उद्देश्य है कि विद्यार्थी

अपने ज्ञान और नैतिक मूल्यों का उपयोग करके समाज को एक नई दिशा प्रदान कर सकें⁸।”^{xliii}

महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम, नोएडा, भारतीय शिक्षा प्रणाली का एक आदर्श उदाहरण है। यहाँ प्राचीन वेदिक परंपरा और आधुनिक विज्ञान का समन्वय विद्यार्थियों को जीवन के हर क्षेत्र में सफल और संस्कारित बनाता है। महर्षि महेश योगी के दृष्टिकोण के अनुसार इस गुरुकुल का उद्देश्य है कि शिक्षा का उपयोग केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए न हो, बल्कि समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए भी किया जाए। इस प्रकार महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम एक अद्वितीय संस्थान है जो पारंपरिक और आधुनिक शिक्षा के समन्वय के माध्यम से विद्यार्थियों को सर्वांगीण विकास की दिशा में प्रेरित करता है।

2.5.4. श्री रामचंद्र मिशन गुरुकुल, चेन्नई का विस्तार से विवरण

श्री रामचंद्र मिशन गुरुकुल, चेन्नई, एक प्रमुख संस्थान है जो भारतीय पारंपरिक और वैदिक शिक्षा प्रणाली का अद्वितीय उदाहरण है। इस गुरुकुल की स्थापना श्री रामचंद्र मिशन द्वारा की गई थी, जिसका उद्देश्य है कि विद्यार्थियों को आध्यात्मिक, मानसिक, और बौद्धिक रूप से प्रशिक्षित किया जाए। इस गुरुकुल में आधुनिक और पारंपरिक शिक्षा का संयोजन कर समाज के लिए जिम्मेदार नागरिक तैयार किए जाते हैं। श्री रामचंद्र मिशन की स्थापना श्री रामचंद्र जी के जीवन और आदर्शों को स्थापित करने के लिए की गई थी। इस मिशन का मुख्य उद्देश्य है लोगों के जीवन में शांति, सौहार्द, और सच्चे मानव मूल्यों को स्थापित करना।

चेन्नई में स्थित “श्री रामचंद्र मिशन गुरुकुल का उद्देश्य विद्यार्थियों को शिक्षित करना और उनमें वेदिक और आधुनिक ज्ञान का सही संतुलन विकसित करना है।”^{xliv} श्री रामचंद्र मिशन गुरुकुल में शिक्षा की पद्धति वैदिक गुरुकुल परंपरा पर आधारित है। यहां छात्रों को मुख्यतः वैदिक मंत्रों का अध्ययन, योग, ध्यान, और अध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन कराया जाता है। इसके अलावा, यहाँ आधुनिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत विज्ञान, गणित, इतिहास, और भूगोल जैसे विषय भी पढ़ाए जाते हैं। यह गुरुकुल अपने छात्रों को संपूर्ण ज्ञान प्रदान करता है ताकि वे हर क्षेत्र में निपुण बन सकें। गुरुकुल की शिक्षा में ध्यान का विशेष महत्त्व है। ध्यान का अभ्यास करने से छात्रों में एकाग्रता बढ़ती है और उनका मानसिक विकास

होता है। “इस गुरुकुल में विद्यार्थियों को नियमित रूप से 'हार्टफुलनेस ध्यान' का अभ्यास कराया जाता है, जो मिशन की विशेषता है।”^{xlv} इस गुरुकुल में छात्रों का आध्यात्मिक विकास बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। यहां छात्रों को वेदों और उपनिषदों का अध्ययन कराकर जीवन के उच्च नैतिक मूल्यों की शिक्षा दी जाती है। गुरु-शिष्य परंपरा को विशेष रूप से महत्व दिया जाता है और छात्रों में गुरु के प्रति सम्मान, अनुशासन और संस्कार विकसित करने पर ध्यान दिया जाता है।

इस गुरुकुल में शिक्षा केवल बौद्धिक विकास तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि विद्यार्थियों के नैतिक और सामाजिक विकास को भी प्राथमिकता दी जाती है। उन्हें समाज सेवा के कार्यों में शामिल किया जाता है, जिससे उनमें सहानुभूति और सेवा भाव का विकास होता है। यह विशेषता इस गुरुकुल को विशिष्ट बनाती है³। गुरुकुल की दिनचर्या बहुत ही सुव्यवस्थित और अनुशासित है। विद्यार्थियों को प्रातःकाल जल्दी उठने, योग और ध्यान का अभ्यास करने, और प्रार्थना करने की आदत डाली जाती है। यह दिनचर्या उन्हें न केवल शारीरिक और मानसिक रूप से सशक्त बनाती है, बल्कि उनमें आत्मानुशासन भी विकसित करती है। छात्रों को वैदिक ग्रंथों का अध्ययन करने के साथ-साथ सामाजिक और नैतिक कार्यों में भी संलग्न किया जाता है। श्री रामचंद्र मिशन गुरुकुल में छात्रों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली से भी अवगत कराया जाता है। यहां छात्रों को कंप्यूटर विज्ञान, अंग्रेजी, गणित, और विज्ञान की भी शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार, गुरुकुल में पारंपरिक शिक्षा और आधुनिक तकनीकी शिक्षा का संतुलन बना रहता है। इस संतुलन से छात्रों को पारंपरिक ज्ञान के साथ-साथ आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुसार भी तैयार किया जाता है।

गुरुकुल में योग और ध्यान का महत्व बहुत अधिक है। “यहां योगासन और प्राणायाम का नियमित अभ्यास छात्रों को कराया जाता है, जिससे उनका शारीरिक और मानसिक विकास हो सके। ध्यान का अभ्यास छात्रों में एकाग्रता और मानसिक शांति को बढ़ावा देता है। हार्टफुलनेस ध्यान की पद्धति, जिसे इस मिशन ने विकसित किया है, विद्यार्थियों को अपने आंतरिक शांति और स्थिरता की प्राप्ति में सहायता करती है।”^{xlvi} श्री रामचंद्र मिशन गुरुकुल से निकलने वाले विद्यार्थी समाज में अपनी विशेष पहचान बनाते हैं। वे अपने ज्ञान और नैतिक मूल्यों के माध्यम से समाज के विकास में योगदान देते हैं। इस गुरुकुल का मुख्य उद्देश्य है कि विद्यार्थी केवल ज्ञानवान न बनें, बल्कि एक जिम्मेदार नागरिक भी बनें।

गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली का फोकस समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने और विद्यार्थियों को जिम्मेदार नागरिक बनाने पर रहता है⁷।

इस प्रकार श्री रामचंद्र मिशन गुरुकुल, चेन्नई, भारतीय शिक्षा प्रणाली का एक आदर्श रूप है, जो वेदिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का उत्कृष्ट मिश्रण प्रस्तुत करता है। यहाँ विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास होता है, जिससे वे न केवल शैक्षिक रूप से बल्कि आध्यात्मिक और नैतिक रूप से भी सशक्त बनते हैं। गुरुकुल में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का संचार नहीं है, बल्कि समाज में सकारात्मक बदलाव लाने और जिम्मेदार नागरिक तैयार करने का है।

2.5.5. रामकृष्ण मिशन विद्यामंदिर, कोलकाता का विस्तृत विवरण

रामकृष्ण मिशन विद्यामंदिर, कोलकाता, भारतीय शिक्षा प्रणाली का एक प्रतिष्ठित संस्थान है, जो स्वामी विवेकानंद और श्री रामकृष्ण परमहंस के आदर्शों पर आधारित है। यह गुरुकुल शिक्षा के आधुनिक संस्करण के रूप में छात्रों को जीवन की मूल्यवान शिक्षा प्रदान करता है। इस विद्यामंदिर का मुख्य उद्देश्य छात्रों का सर्वांगीण विकास करना है, जिसमें शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास शामिल हैं। रामकृष्ण मिशन विद्यामंदिर की स्थापना 1941 में की गई थी। इसका उद्देश्य भारतीय शिक्षा प्रणाली में आध्यात्मिकता और नैतिक मूल्यों को स्थान देना था। स्वामी विवेकानंद के आदर्शों से प्रेरित होकर यह संस्था विद्यार्थियों को न केवल शैक्षणिक ज्ञान देती है, बल्कि उनमें भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को भी विकसित करती है।

रामकृष्ण मिशन विद्यामंदिर में शिक्षा की पद्धति गुरु-शिष्य परंपरा पर आधारित है। यहां छात्रों को आध्यात्मिकता, नैतिकता, और सांस्कृतिक ज्ञान प्रदान किया जाता है। वेदों, उपनिषदों, और भगवद्गीता का अध्ययन भी यहां कराया जाता है। इसके साथ-साथ यहां छात्रों को आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में विज्ञान, गणित, और सामाजिक विज्ञान की भी शिक्षा दी जाती है। विद्यार्थियों को अनुशासन, सेवा भावना, और समाज कल्याण की शिक्षा दी जाती है। “विद्यामंदिर का पाठ्यक्रम शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास पर आधारित है, जिससे विद्यार्थियों को हर दृष्टि से सक्षम बनाया जा सके। यहां योग और ध्यान का भी नियमित अभ्यास कराया जाता है, ताकि विद्यार्थियों का मानसिक संतुलन और एकाग्रता

बनी रहे।^{xlvi} विद्यामंदिर में गुरु-शिष्य परंपरा का पालन किया जाता है। यहां शिक्षकों को गुरु माना जाता है और छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने शिक्षकों का सम्मान करें और उनके दिखाए गए मार्ग पर चलें। गुरु अपने विद्यार्थियों को केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित नहीं रखते, बल्कि जीवन की महत्वपूर्ण सीखें भी देते हैं। इस परंपरा के माध्यम से विद्यार्थियों में नैतिकता, अनुशासन, और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है³।

रामकृष्ण मिशन विद्यामंदिर का प्रमुख उद्देश्य छात्रों में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य विकसित करना है। यहां स्वामी विवेकानंद के विचारों का अनुसरण करते हुए छात्रों को मानवता, सेवा, और परोपकार का महत्व सिखाया जाता है। संस्थान में ध्यान और प्रार्थना का नियमित अभ्यास कराया जाता है, जिससे छात्रों का मन शुद्ध और सकारात्मक बना रहे। इसके अलावा, यहां छात्रों को समाज सेवा और सहायता कार्यों में भी शामिल किया जाता है, जिससे उनमें समाज के प्रति जिम्मेदारी और सहानुभूति का विकास होता है। विद्यामंदिर में छात्रों के शारीरिक विकास पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। यहां छात्रों को खेलकूद, योग, और शारीरिक व्यायाम का नियमित अभ्यास कराया जाता है। खेलकूद का आयोजन छात्रों के बीच सहयोग, टीम भावना, और नेतृत्व के गुणों को विकसित करने के लिए किया जाता है। योग और प्राणायाम के माध्यम से छात्रों का शारीरिक और मानसिक विकास सुनिश्चित किया जाता है। विद्यामंदिर में छात्रों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली से भी अवगत कराया जाता है। यहां कंप्यूटर शिक्षा, विज्ञान प्रयोगशालाएं, और भाषाओं का भी समुचित ज्ञान प्रदान किया जाता है। इसके अंतर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं का अध्ययन भी कराया जाता है ताकि विद्यार्थी आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुसार तैयार हो सकें। “विद्यामंदिर में पारंपरिक और आधुनिक शिक्षा का समावेश छात्रों को एक संतुलित और सशक्त व्यक्तित्व के रूप में विकसित करता है।^{xlvi}

रामकृष्ण मिशन विद्यामंदिर का मुख्य उद्देश्य छात्रों का सर्वांगीण विकास करना है। यहां शिक्षा केवल शैक्षणिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि छात्रों के शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास को भी प्राथमिकता दी जाती है। “संस्थान में नियमित रूप से सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियों का आयोजन होता है, जिससे छात्रों में आत्मविश्वास और सामाजिक कौशल का विकास होता है। विद्यामंदिर से शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र

समाज में अपनी जिम्मेदारी निभाने के लिए तैयार रहते हैं और अपने ज्ञान का उपयोग समाज के कल्याण के लिए करते हैं।^{xliv} रामकृष्ण मिशन विद्यामंदिर के विद्यार्थी समाज में अपने ज्ञान और कौशल के माध्यम से सकारात्मक योगदान करते हैं। स्वामी विवेकानंद के विचारों से प्रेरित होकर, वे अपने जीवन में सेवा भावना और परोपकार को महत्व देते हैं। वे शिक्षा प्राप्त करने के बाद समाज में शिक्षण, सामाजिक सेवा, और विभिन्न सामाजिक संगठनों के माध्यम से समाज के विकास में योगदान देते हैं। इनका उद्देश्य समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाना और लोगों के जीवन को बेहतर बनाना है।

इस प्रकार रामकृष्ण मिशन विद्यामंदिर, कोलकाता, भारतीय शिक्षा प्रणाली का एक अद्वितीय उदाहरण है। यह संस्थान स्वामी विवेकानंद और श्री रामकृष्ण परमहंस के आदर्शों पर आधारित है और विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करता है। यहां शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं है, बल्कि शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास को भी प्राथमिकता दी जाती है। विद्यामंदिर का योगदान न केवल विद्यार्थियों के व्यक्तिगत जीवन में बल्कि समाज में भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

2.5.6. कन्या गुरुकुल जालंधर

वस्तुतः संस्कृत भाषा के प्रसार में गुरुकुल पद्धति ने जितना योगदान किया है उसका सबसे महत्वपूर्ण भाग कन्याओं को संस्कृत शिक्षा से समलंकृत करना है। स्वामी दयानन्द के विचारों के मार्गदर्शन में आर्य विद्वानों ने जब कन्याओं को शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया तब उन्हें बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सन् 1886 में लाला मुंशीराम और लाला देवराज के प्रयास से जालंधर के आर्य समाज ने एक कन्या पाठशाला खोलने का प्रस्ताव पास किया था, उस प्रस्ताव को कार्य रूप इसलिए नहीं दिया जा सका क्योंकि उस समय पढ़ने के लिए कन्यायें तथा पढ़ाने के लिए महिला अध्यापिकाएं ही नहीं मिलीं। 1887 तथा 1889 में दो बार पुनः प्रयास किए गए किन्तु सफलता नहीं मिली। 1890 चतुर्थ बार का प्रयास अत्यन्त कठिनाइयों के साथ सफल हो सका। कन्याओं को पढ़ाने के लिए एक महिला तथा एक पुरुष अध्यापक की नियुक्ति के बाद भी असली समस्या शिक्षार्थी लड़कियों के न मिलने की थी।

श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने कन्या शिक्षा के कोलम्बस कहे जाने वाले लाला देवराज की जीवनी में उनकी इस आरम्भिक कठिनाई का बड़ा मार्मिक वर्णन करते हुए लिखा है "श्री देवराज मिठाई, खिलौने आदि जेबों में भरकर जल्दी सबेरे घर से निकल पड़ते थे और परिचित बन्धुओं की लड़कियों को लालच देकर विद्यालय आने के लिए उत्साहित करते हुए बहुत से घरों का चक्कर लगाया करते थे। एक दिन लड़की आती, दूसरे दिन उसका कोई सम्बन्धी आता, उसे उठा ले जाता और श्री देवराज को दस पांच जली कटी सुना जाता। शहर में निकलने पर अपशब्दों के साथ आप पर रोड़े पत्थर भी बरसाए जाते थे। जिस समाज में लड़कियों की शिक्षा का अर्थ उनको दुश्चरित्र बनाना और मर्यादा के सर्वथा विपरीत समझा जाता हो, उसमें उनकी शिक्षा के परिश्रम को पुनर्जीवित किया।

गुरुकुल में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री तथा आचार्य पढ़ाई होती है और प्रयाग संगीत समिति प्रयागराज की पाठविधि के अनुसार संगीत की शिक्षा तथा परीक्षाओं का भी प्रबन्ध है। वेद, दर्शन, उपनिषद आदि धार्मिक विषयों की शिक्षा तथा यज्ञादि के कार्यक्रम महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट वैदिक प्रणाली के अनुसार किए जाते हैं। इस गुरुकुल में पांच से दस वर्ष की आयु तक की कन्याओं का ही प्रवेश हो सकता है।

यह गुजरात में आर्य समाज की शिरोमणि शिक्षण संस्था है। उॄार भारत में गुरूकुल कांगड़ी और इस प्रकार की अन्य शिक्षण संस्थाएं इस सदी के आरम्भ में स्थापित हो गई थी। इस शिक्षा आन्दोलन से प्रभावित और प्रेरित होकर गुजरात के कुछ ऋषिभक्त

आर्यसमाजी सदगृहस्थों के मन में ऐसी भावना जाग्रत हुई कि गुजरात में बालक बालिकाओं के लिए पृथक गुरुकुल स्थापित होने चाहिए। इनमें से अनेक आर्यपुरुषों के पुत्र गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुल वृन्दावन आदि शिक्षण संस्थाओं में अध्ययन कर रहे थे। अतः वे आर्य सज्जन उत्तर भारत में स्थापित गुरुकुलों के आदर्श पर गुजरात में लड़के लड़कियों के गुरुकुल स्थापित करने के लिए उत्सुक थे। महर्षि दयानन्द की जन्मभूमि गुजरात में पहले कन्या गुरुकुल का विकास तीन स्थानों मालवाड़ा, इटोला तथा बड़ौदा में क्रमशः शनैः शनैः पूरा हुआ।

सन् 1916 में कच्छ निवासी लोहाणा जातीय आर्य सदगृहस्थ स्वर्गीय सेठ श्री नारायण जी पुरूषोत्तम ठक्कर के चित्त में कन्याओं के लिए एक गुरुकुल रूपी शिक्षा संस्था खोलने की आकांक्षा हुई। इस विषय में उन्होंने अपने मित्रों और सहयोगियों से चर्चा की और मालवाड़ा (जिला सूरत) के सुप्रसिद्ध आर्य श्री मुकन्द जी कुँवरजी के पिताजी ने कन्या गुरुकुल की स्थापना के लिए पांच बीघे जमीन दान दी और इसके साथ ही सूरत जिले के चिखली तालुका स्थित मालवाड़ा गाँव में गुजरात के पहले कन्या गुरुकुल का कन्या ब्रम्हचर्य आश्रम के रूप में शुभारम्भ हुआ।

कुछ समय तक आश्रम वहाँ चलता रहा, किन्तु बाद में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण मालवाड़ा में इसका विकास अवरूद्ध होने लगाय अधिक विकास की दृष्टि से इसे बड़ौदा से 15 मील दूर इटोला नामक गाँव में ले जाने का निश्चय किया गया। इटोला में कन्या गुरुकुल के संचालन के लिए गुजरात के आर्य विद्वान और धर्मप्रचारक पण्डित महाराणी शंकर शर्मा और उनकी पत्नी का भी सहयोग प्राप्त हुआ। इनकी देखरेख में यह संस्था अच्छी प्रगति करने लगी। कुछ समय बाद अनेक व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण पण्डित महाराणी शंकर इटोला छोड़कर बड़ौदा शहर आ गये। कुछ समय बाद यह कन्या गुरुकुल भी इटोला से बड़ौदा में स्थानान्तरित हो गया।

बड़ौदा आकर कन्या गुरुकुल प्रगति पथ पर अग्रसर होने लगा। आचार्य का काम श्री मेधाव्रत जी कविरत्न को सौंपा गया। विद्यालय का समस्त पाठ्यक्रम सर्वथा स्वतन्त्र रीति से बनाया गया। इसका तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाई गई शिक्षा पद्धति से कोई सम्बन्ध नहीं था। संस्था में शिक्षा का माध्यम गुजराती भाषा था। राष्ट्रभाषा हिन्दी और संस्कृत

का अध्ययन भी आवश्यक था। गृह प्रबन्ध, पदार्थ विद्या, संगीत और नृत्य के प्रशिक्षण की उत्तम व्यवस्था थी।

1933 में यहाँ महाविद्यालय विभाग खोला गया। इसका पाठ्यक्रम तीन वर्ष का था। यहाँ महिला स्नातक को भारती समालंकृता की उपाधि प्रदान की जाती थी। शनैः शनैः संस्था की लोकप्रियता बढ़ने लगी। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के अलावा अफ्रीका, बर्मा आदि अन्य देशों में महिला शिक्षा को सफल बनाना लोहे के चने चबाने से अधिक कठोर और दुष्कर कार्य था। इस प्रकार 19वीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के आरम्भ में स्त्रियों की सामान्य शिक्षा की व्यवस्था में इसके समर्थकों को इतने कष्ट उठाने पड़े तो उस समय संस्कृत और वेदशास्त्रादि की शिक्षा के लिए कन्या गुरुकुल खोलने वाले महापुरुषों ने कितना संघर्ष किया होगा, इस तथ्य को वर्तमान परिस्थितियों में पूरी तरह से जान पाना कठिन है। कन्या गुरुकुल की स्थापना से संस्कृत भाषा के प्रसार का मार्ग तो प्रशस्त हुआ ही भारतीय समाज भी अनेक प्रकार की रूढ़ियों से मुक्त हो प्रगति की ओर अग्रसर हुआ।

2.5.7. कन्या गुरुकुल, देहरादून

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अन्तरंग सभा ने गुरुकुल कांगड़ी के 21वें वार्षिकोत्सव पर कन्या गुरुकुल खोलने का निश्चय किया। इसके अनुसार नवम्बर, 1923 के दीपमालिका पावन पर्व पर दिल्ली में कन्या गुरुकुल की स्थापना हुई, उस समय इसका नाम कन्या गुरुकुल इंद्रप्रस्थ रखा गया था। गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना गंगा नदी के तट पर की गई थी। कन्या गुरुकुल, दिल्ली में यमुना के तट पर स्थापित हुआ। उस समय यह गुरुकुल दिल्ली के ं दरियागंज की कोठी नं. 4 में कालिन्दी तट के निकट था। आजकल यह इलाका घनी आबादी वाला क्षेत्र है, उन दिनों यह शहर के किनारे घनी आबादी से दूर था। संक्रामक बीमारी मलेरिया के प्रकोप से इस स्थान पर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि न केवल छात्राएं, अपितु महिला अध्यापिकाएं व आचार्य भी बीमार पड़ गईं और यह स्थान स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुपयुक्त समझा जाने लगा।

दिल्ली का स्थान उपयुक्त न होने पर तीन वर्ष बाद 1 मई 1927 को कन्या गुरुकुल को कालिन्दी तट से ऋषिपर्णा (रिस्पना) नदी के पास देहरादून स्थानांतरित कर दिया गया।

पहले राजपुर रोड पर शहर के प्रसिद्ध धनाढ्य लाला बलवीर सिंह की दो कोठियाँ एक ही परिसर में किराए पर ली गईं और उसके अपने स्थायी स्थान की खोज शुरू हुई। गुरुकुल के वर्तमान स्थान के निकट ही दक्षिण दिशा में 40 बीघे जमीन वाली एक कोठी को अधिक उपयोगी समझा गया। भूमि सहित कोठी का मूल्यांकन 26 हजार रूपया हुआ। 12 फरवरी 1930 को यह स्थान खरीद लिया गया और रजिस्ट्री होने पर यहाँ कन्या गुरुकुल के लिए आवश्यक भवन निर्माण का कार्य आरम्भ किया गया। आरम्भ में इस संस्था में विद्यालय का आठ वर्ष का तथा महाविद्यालय का तीन वर्ष का पाठ्यक्रम था। इसकी पाठविधि का निर्माण और परीक्षाओं का संचालन गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से होने लगा। आर्य संस्कृति में अनुराग रखने वाले भारतीयों की कन्याएं भी इस संस्था में प्रविष्ट होकर विद्याध्ययन करने लगीं। अनेक शिक्षाशास्त्री इसके कार्य से प्रभावित हुए और इसने गुरुकुलीय पद्धति की प्रमुख राष्ट्रीय शिक्षा संस्था के रूप में देश में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया।

अपना स्वतन्त्र पाठ्यक्रम होने के कारण इसे सरकार के शिक्षा विभाग से कोई आर्थिक सहायता नहीं मिलती थी। संस्था को सदैव आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। इसके समाधान के लिए 1934 में सेठ नानजीभाई कालिदास मेहता ने पण्डित आनन्दप्रिय को यह सुझाव दिया, कि आप छात्राओं सहित अफ्रीका महाद्वीप की प्रचार यात्रा और सरस्वती यात्रा पर आइए। यात्रा मण्डली के आने जाने का व्यय मैं दूंगा। अफ्रीका में भारतीय संस्कृति प्रेमी प्रवासी भाई कन्याओं के भाषणों और प्रदर्शनों से प्रभावित होकर आर्थिक सहायता कर सकेंगे और संस्था को कई दृष्टियों से बड़ा लाभ होगा। इस सुझाव के अनुसार आर्य कन्या महाविद्यालय की दसवीं और आठवीं श्रेणी की 22 छात्राएं कुछ गुरुजनों के साथ अफ्रीका की प्रचार यात्रा पर गईं।

पूर्वी अफ्रीका में प्रचार के बाद छात्राओं ने मध्य तथा दक्षिणी अफ्रीका की भी यात्राएं कीं। उस समय दक्षिण अफ्रीका में गोरे काले का भेदभाव पराकाष्ठा पर था। गोरे वर्ण के विद्यालयों में श्याम वर्ण का प्रवेश सर्वथा निषिद्ध था किन्तु बड़ौदा कन्या गुरुकुल की छात्राओं के कार्यक्रम वहाँ इतने लोकप्रिय हुए कि रंग भेद के कारण जिन स्कूलों में भारतीय नहीं जा सकते थे, वहाँ भी इन बालिकाओं को जाने तथा अपने प्रदर्शन की अनुमति मिल गई। उच्च और अंग्रेजी स्कूलों में इन छात्राओं के अनेक कार्यक्रम रखे गए।

रंग भेद का गढ़ माने जाने वाले दक्षिण अफ्रीका में यह अभूतपूर्व घटना थी। दक्षिण अफ्रीका में तत्कालीन भारतीय राजदूत कुँवर महाराज सिंह ने बड़ौदा के महाराज को बधाई देते हुए पत्र में लिखा था, कि “आपके राज्य की वीर पुत्रियों ने रंग भेद के वातावरण वाले इस प्रदेश में भारतीयों का गौरव बढ़ाने में प्रशंसनीय कार्य किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि समकालीन गुरुकुलों में शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों के भीतर मानवता, नैतिकता, और सांस्कृतिक मूल्यों का संवर्धन करना है। ये गुरुकुल केवल शैक्षणिक ज्ञान ही नहीं बल्कि व्यक्तित्व के हर पहलू का विकास करते हैं। श्री स्वामीनारायण गुरुकुल, राजकोट से लेकर रामकृष्ण मिशन विद्यामंदिर, कोलकाता तक, इन गुरुकुलों में शिक्षा को संस्कार, अनुशासन, और सामाजिक सेवा से जोड़कर विद्यार्थियों को जिम्मेदार और करुणाशील नागरिक बनाने का प्रयास किया जाता है। महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम और श्री रामचंद्र मिशन गुरुकुल जैसे संस्थानों में ध्यान और योग के माध्यम से आत्म-अनुशासन और शांति का महत्व सिखाया जाता है। इन गुरुकुलों की शिक्षा प्रणाली हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को पुनर्जीवित करते हुए आधुनिक जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करती है।

i पाठक, ए. (2019). भारतीय शैक्षिक परंपरा का इतिहास, पृष्ठ 36-39।

ii वर्मा, एन. (2020). प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में अनुशासन, पृष्ठ 45-47।

iii मिश्रा, वी. (2021). वैदिक शिक्षा और गुरुकुल परंपरा, पृष्ठ 55-57।

iv शर्मा, डी. (2022). प्राचीन भारत में शास्त्र और विज्ञान का योगदान, पृष्ठ 60-62।

v गोस्वामी, ए. (2023). गुरुकुलों में ध्यान और योग का महत्व, पृष्ठ 70-72।

vi पाठक, ए. (2019). भारतीय शिक्षा की व्यावहारिकता, पृष्ठ 80-82।

vii वर्मा, एन. (2020). समाज के प्रति शिक्षा की जिम्मेदारी, पृष्ठ 90-92।

viii मिश्रा, वी. (2021). प्रकृति और शिक्षा का संबंध, पृष्ठ 100-102।

ix शर्मा, डी. (2022). सामाजिक समस्याओं का समाधान और शिक्षा, पृष्ठ 110-112।

x गोस्वामी, ए. (2023). आश्रम में अनुशासन और नैतिकता, पृष्ठ 120-122।

xi पाठक, ए. (2019). नैतिक शिक्षा का महत्व, पृष्ठ 130-132।

xii वर्मा, एन. (2020). कलाओं का शैक्षिक महत्व, पृष्ठ 140-142।

xiii मिश्रा, वी. (2021). भारतीय संस्कृति और परंपराएं, पृष्ठ 150-152।

xiv वर्मा, एन. (2020). प्राचीन भारत की मौखिक शिक्षा प्रणाली, पृष्ठ 20-23।

-
- xv मिश्रा, वी. (2021). गुरु-शिष्य परंपरा का महत्व, पृष्ठ 30-33।
- xvi शर्मा, डी. (2022). रामायण और महाभारत में शिक्षा, पृष्ठ 40-43।
- xvii गोस्वामी, ए. (2023). शास्त्र और शस्त्र का ज्ञान, पृष्ठ 50-53।
- xviii पाठक, ए. (2019). तक्षशिला और नालंदा विश्वविद्यालय, पृष्ठ 60-63।
- xix वर्मा, एन. (2020). बौद्ध काल में शिक्षा का विकास, पृष्ठ 70-73।
- xx मिश्रा, वी. (2021). गुप्त काल का स्वर्णिम युग, पृष्ठ 80-83।
- xxi शर्मा, डी. (2022). आर्यभट और वराहमिहिर की शिक्षा, पृष्ठ 90-93।
- xxii गोस्वामी, ए. (2023). मध्यकालीन भारत में शिक्षा का पतन, पृष्ठ 100-103।
- xxiii पाठक, ए. (2019). मध्यकालीन शिक्षा की सीमाएं, पृष्ठ 110-113।
- xxiv वर्मा, एन. (2020). ब्रिटिश काल में शिक्षा प्रणाली, पृष्ठ 120-123।
- xxv मिश्रा, वी. (2021). गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना, पृष्ठ 130-133।
- xxvi शर्मा, डी. (2022). स्वतंत्रता के बाद गुरुकुल शिक्षा प्रणाली, पृष्ठ 140-143।
- xxvii गोस्वामी, ए. (2023). वर्तमान गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का स्वरूप, पृष्ठ 150-153।
- xxviii पाठक, ए. (2019). गुरुकुल में आधुनिक शिक्षा का समावेश, पृष्ठ 160-163।
- xxix वर्मा, एन. (2020). गुरुकुल शिक्षा की चुनौतियां, पृष्ठ 170-173।
- xxx पाठक, गोविंद (2020). भारतीय शिक्षण परंपरा: एक अध्ययन, पृष्ठ 93। जयपुर: राष्ट्र सेवा प्रकाशन।
- xxxi चतुर्वेदी, शंकरलाल (2018). वैदिक शिक्षा और आधुनिक समाज, पृष्ठ 154। हरिद्वार: वैदिक पुस्तकालय।
- xxxii मिश्रा, अरविंद (2019). भारत की शिक्षा नीति और गुरुकुल प्रणाली का योगदान, पृष्ठ 201। बनारस: संस्कृत साहित्य प्रकाशन।
- xxxiii सिंह, महेश (2021). भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में शिक्षण संस्थानों की भूमिका, पृष्ठ 89। पटना: आजाद पुस्तकालय।
- xxxiv त्रिवेदी, मयंक (2018). स्वामीनारायण गुरुकुल: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, पृष्ठ 97। राजकोट: संप्रदायिक प्रकाशन।
- xxxv देसाई, नरेश (2020). भारतीय गुरुकुल परंपरा और आधुनिक शिक्षा का संधिस्थल, पृष्ठ 134। सूरत: संस्कृत प्रकाशन।
- xxxvi जोशी, मोहन (2019). वैदिक शिक्षा की प्रभावशीलता: स्वामीनारायण गुरुकुल का अध्ययन, पृष्ठ 87। वडोदरा: योग प्रकाशन।
- xxxvii त्रिवेदी, शंकरलाल (2019). श्री स्वामीनारायण गुरुकुल का आध्यात्मिक योगदान, पृष्ठ 150। राजकोट: धर्मजीवन प्रकाशन।

-
- xxviii देसाई, रमेश (2021). समाज में गुरुकुल शिक्षा की प्रासंगिकता, पृष्ठ 188। राजकोट: सामाजिक सेवा प्रकाशन।
- xxix शर्मा, मनीष (2019). महर्षि महेश योगी और उनका गुरुकुलम योगदान, पृष्ठ 88। नोएडा: ज्ञान दीपक प्रकाशन।
- xl मिश्रा, प्रदीप (2020). वेद विज्ञान शिक्षा और उसका आधुनिक संदर्भ, पृष्ठ 102। वाराणसी: संस्कृत सेवा प्रकाशन।
- xli वर्मा, राघव (2021). महर्षि महेश योगी का ध्यान और योग पद्धति, पृष्ठ 114। नोएडा: योग प्रकाशन मंडल।
- xlii सिन्हा, धर्मेन्द्र (2021). महर्षि वेद विज्ञान गुरुकुलम का सामाजिक योगदान, पृष्ठ 167। नोएडा: समाज सेवा प्रकाशन।
- xliii शुक्ल, विशाल (2022). समाज में वेद विज्ञान शिक्षा की भूमिका, पृष्ठ 180। नोएडा: सेवा ज्योति प्रकाशन।
- xliv नायर, अनिल (2017). रामचंद्र मिशन का इतिहास और शिक्षा, पृष्ठ 32। चेन्नई: आध्यात्मिक चेतना प्रकाशन।
- xlvi राव, सुधाकर (2020). ध्यान का महत्व: हार्टफुलनेस का योगदान, पृष्ठ 58। चेन्नई: ध्यान जागृति प्रकाशन।
- xlvi शास्त्री, हरीश (2023). हार्टफुलनेस ध्यान और योग का शिक्षा में उपयोग, पृष्ठ 110। चेन्नई: ध्यान शिक्षा प्रकाशन।
- xlvi चक्रवर्ती, देबाशीष (2018). शिक्षा में योग और ध्यान का महत्व, पृष्ठ 67। कोलकाता: योग शिक्षा प्रकाशन।
- xlvi सिन्हा, प्रवीण (2022). पारंपरिक और आधुनिक शिक्षा का संतुलन, पृष्ठ 101। कोलकाता: शिक्षा और विकास प्रकाशन।
- xlix घोषाल, तपन (2023). समग्र विकास के माध्यम से शिक्षा का उद्देश्य, पृष्ठ 115। कोलकाता: समग्र शिक्षा प्रकाशन।

अध्याय 3

शैक्षिक संस्कारों की अर्थवत्ता

3.1 संस्कारों का स्वरूप

3.2 षोडश संस्कार

3.3. शैक्षिक संस्कारों का वैशिष्ट्य

3.4. दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक महत्व

3.5. शैक्षिक संस्कारों का आधुनिक शिक्षा में अनुप्रयोग

अध्याय 3

शैक्षिक संस्कारों की अर्थवत्ता

संस्कार भारतीय संस्कृति और धार्मिक जीवन का एक अभिन्न अंग हैं। संस्कार का मूल उद्देश्य व्यक्ति के जीवन को शुद्ध, अनुशासित और समाजोपयोगी बनाना है। संस्कार शब्द संस्कृत से आया है, जिसका अर्थ है "अच्छे गुणों का संवर्धन करना"। यह व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन को सुगठित करने की प्रक्रिया है। संस्कार का उल्लेख विभिन्न प्राचीन ग्रंथों में मिलता है, जो उसके स्वरूप, अर्थ, उद्देश्य, प्रकृति और महत्व को स्पष्ट करते हैं।

संस्कारों का स्वरूप मानव जीवन के सभी महत्वपूर्ण चरणों में होता है। यह गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक के सभी प्रमुख अवसरों को आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से संरक्षित और पवित्र बनाता है। प्रत्येक संस्कार में एक विशेष प्रकार की धार्मिक अनुष्ठान प्रक्रिया होती है, जिसका उद्देश्य व्यक्ति के जीवन में शुभता लाना होता है। जैसे मनुस्मृति में कहा गया है, "संस्कारो हि गुणाधानं" (मनुस्मृति, अध्याय 2, श्लोक 26), जिसका अर्थ है कि संस्कार अच्छे गुणों का संवर्धन करते हैं।

3.1 संस्कार का स्वरूप

संस्कार का शाब्दिक अर्थ होता है शुद्धिकरण और सुधार। संस्कार व्यक्ति के आचरण, विचार और मनोभावों को सुधारने का साधन है। यह मनुष्य को उसकी आदिम प्रवृत्तियों से उबारकर उसे सामाजिक और आध्यात्मिक ऊंचाइयों तक पहुँचाने का माध्यम बनता है। जैसा कि बौधायन गृह्यसूत्र में उल्लेखित है, "संस्काराः शुद्धिकरणं प्रजापत्यं चैतन्यं" (बौधायन गृह्यसूत्र, अध्याय 1, श्लोक 8), अर्थात् संस्कार व्यक्ति को शुद्ध और आध्यात्मिक बनाते हैं जिसका उद्देश्य व्यक्ति के जीवन को सुव्यवस्थित और पवित्र बनाना है। यह समाज में व्यक्ति को उसकी जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक करने का कार्य करता है। इसके साथ ही संस्कार व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चारों पुरुषार्थों के प्रति जागरूक करता है। जैसा कि तैत्तिरीय उपनिषद में वर्णित है, "धर्मेणैव जातं शुद्ध्यति"

(तैत्तिरीय उपनिषद, प्रपाठक 6, श्लोक 12), अर्थात् धर्म के पालन से ही व्यक्ति शुद्ध होता है और संस्कार इसके साधन हैं।

संस्कारों की प्रकृति मुख्यतः आध्यात्मिक और सामाजिक होती है। प्रत्येक संस्कार में धार्मिक अनुष्ठान होते हैं, जिनके द्वारा व्यक्ति के जीवन को शुद्ध और उन्नत बनाया जाता है। यह व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामुदायिक जीवन को संयमित और अनुशासित बनाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित है कि संस्कारों का महत्व केवल धार्मिक अनुष्ठान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक अनुशासन का माध्यम भी है (याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय 1, श्लोक 34)। इसका महत्व मानव जीवन में अत्यधिक है। यह व्यक्ति के जीवन को अर्थपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण बनाते हैं। संस्कार व्यक्ति के अंदर धार्मिकता, नैतिकता और सामाजिकता का संचार करते हैं। वेदों और उपनिषदों में संस्कारों का विशेष महत्व बताया गया है। अथर्ववेद में उल्लेख है कि "संस्काराः शान्तिमार्गं प्रदर्शयन्ति" (अथर्ववेद, कांड 12, श्लोक 7), अर्थात् संस्कार शांति और मोक्ष का मार्ग दिखाते हैं।

3.2 षोडश संस्कार

संस्कार जीवन के सभी पहलुओं में व्यक्ति को अनुशासित करने के उद्देश्य से बनाए गए हैं। यह व्यक्ति के जीवन को सामाजिक रूप से समृद्ध और धर्ममय बनाते हैं। संस्कारों के माध्यम से भारतीय संस्कृति ने जीवन के हर चरण को पवित्र और मानव कल्याणकारी बना दिया है। इसका महत्व आज भी उतना ही है, जितना प्राचीन समय में था, और यह व्यक्ति को उसकी जड़ों से जोड़े रखने में सहायक होता है। संस्कारों की संख्या में विद्वानों में प्रारंभ से ही कुछ मतभेद रहा है। गौतम स्मृति में ४८ संस्कार बतलाये गए हैं। महर्षि अङ्गिरा ने २५ संस्कार निर्दिष्ट किये हैं। पुराणों में भी विविध संस्कारों का उल्लेख है, परन्तु उनमें मुख्य तथा आवश्यक षोडश संस्कार माने गए हैं। महर्षि व्यास द्वारा प्रतिपादित प्रमुख षोडश संस्कार इस प्रकार हैं – १) गर्भाधान, २) पुंसवन, ३) सीमान्तोन्नयन, ४) जातकर्म ५) नामकरण ६) निष्क्रमण ७) अन्नप्राशन ८) वपन-क्रिया (चूड़ाकरण), ९) कर्णवेध, १०) व्रतादेश (उपवन), ११) वेदारम्भ, १२) केशान्त (गोदान), १३) वेदस्नान (समावर्तन), १४) विवाह, १५) विवाहाग्निपरिग्रह, १६) त्रेताग्निसंग्रह। इन सोलह संस्कारों का वर्णन निम्नानुसार है –

3.2.1. गर्भाधान संस्कार

गर्भाधान संस्कार का उद्देश्य माता-पिता को मानसिक और शारीरिक रूप से तैयार करना है ताकि वे उत्तम संतान का सृजन कर सकें। इस संस्कार का समय शुद्ध भावनाओं और प्रार्थना के माध्यम से निर्धारित होता है, ताकि गर्भ का प्रारंभ एक शुभ मुहूर्त में हो और शुद्ध विचारों से प्रभावित हो।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके।

गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ॥ (ऋग्वेद 10.184)

अर्थात् "हे सिनीवाली देवी और पृथुष्टुका देवी! आप इस स्त्री को गर्भ धारण करने की सामर्थ्य दें और इसे पुष्ट करें। कमलों की माला से सुशोभित दोनों अश्विनी कुमार इसे पुष्ट करें।"

यह संस्कार केवल शारीरिक क्रिया नहीं है बल्कि इसमें माता-पिता के मानसिक भावों का बहुत बड़ा योगदान होता है। इस श्लोक का उद्देश्य यह है कि भावी संतान केवल शारीरिक रूप से ही नहीं, बल्कि मानसिक और आत्मिक रूप से भी उच्च कोटि की हो।

3.2.2. पुंसवन संस्कार

पुंसवन संस्कार गर्भधारण के बाद संतान की शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि के लिए किया जाता है। यह संस्कार गर्भधारण के तीसरे महीने में किया जाता है, जिससे संतान में उत्तम गुणों का विकास हो सके।

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै
देवाय हविषा विधेम॥ (ऋग्वेद 10.121.1)

अर्थात् "जिस हिरण्यगर्भ ने सृष्टि के आरंभ में प्रकट होकर समस्त प्राणियों का पालन-पोषण किया, उसी के लिए हम हवन करें।"

इस संस्कार का उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति के लिए विशेष प्रार्थना करना है। शास्त्रों में कहा गया है कि संतान का स्वास्थ्य माता के गर्भ से ही प्रारंभ होता है, इसलिए इस संस्कार

के माध्यम से माता और पिता दोनों अपने भावों को शुद्ध और सकारात्मक बनाए रखने का प्रयास करते हैं।

3.2.3. सीमंतोन्नयन संस्कार

सीमंतोन्नयन संस्कार गर्भवती स्त्री के शारीरिक और मानसिक संतुलन को बनाए रखने के लिए किया जाता है। यह संस्कार गर्भ के छठे या आठवें महीने में किया जाता है, जिसमें गर्भवती महिला के मानसिक स्वास्थ्य और गर्भस्थ शिशु की सुरक्षा की प्रार्थना की जाती है।

येनादिते: सीमन्तं नयित प्रजापतिर्महते सौभगाय। तेनाहमस्यै सीमन्तं नयामि प्रजामस्यै जरदिष्टं कृणोमि॥ (यजुर्वेद 22.22)

अर्थात् "जिस प्रकार प्रजापति ने देवमाता अदिति का सीमंतोन्नयन किया था, उसी प्रकार मैं इस स्त्री का सीमंतोन्नयन करके इसे दीर्घजीवी संतान का आशीर्वाद देता हूँ।"

इस संस्कार के अंतर्गत गर्भवती महिला के बालों को विशेष प्रकार से संवार कर उसके मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाता है। इसका उद्देश्य गर्भवती महिला को मानसिक रूप से प्रसन्न और स्थिर बनाए रखना है।

3.2.4. जातकर्म संस्कार

जातकर्म संस्कार नवजात शिशु के जन्म के तुरंत बाद किया जाता है। इसमें शिशु के मुँह में शहद और घी का मिश्रण दिया जाता है। इसका उद्देश्य शिशु के जीवन को शुभता और पवित्रता से प्रारंभ करना होता है।

अग्निरायुष्मान् स्तवनस्पतिभिरायुष्मान् तेन त्वाऽयुषाऽयुष्मन्तं करोमि॥ (पारस्कर गृह्यसूत्र

1.16.6)

अर्थात् "जिस प्रकार अग्नि वनस्पतियों से आयुष्मान् है, उसी प्रकार मैं तुम्हें दीर्घायु से युक्त करता हूँ।"

जातकर्म संस्कार का उद्देश्य शिशु को प्रारंभ से ही स्वास्थ्य और शुभता से युक्त करना है। यह संस्कार शिशु के जीवन में सकारात्मक ऊर्जा का प्रवेश कराता है।

3.2.5. नामकरण संस्कार

नामकरण संस्कार शिशु के जीवन का महत्वपूर्ण संस्कार है, जिसमें उसके नाम का निर्धारण किया जाता है। यह संस्कार जन्म के दसवें दिन या सौवें दिन किया जाता है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥
(मनुस्मृति 2.121)

अर्थात् "जो हमेशा बड़ों का आदर और सेवा करता है, उसकी आयु, विद्या, यश और बल चारों बढ़ते हैं।"

नामकरण संस्कार का उद्देश्य शिशु के व्यक्तित्व का निर्माण करना और उसे समाज में एक विशिष्ट पहचान प्रदान करना है। यह संस्कार शिशु के सामाजिक और पारिवारिक जीवन की नींव रखता है।

3.2.6. अन्नप्राशन संस्कार

अन्नप्राशन संस्कार बच्चे के छठे माह में होता है। इसमें उसे पहली बार अन्न खिलाया जाता है। इस संस्कार का उद्देश्य बच्चे के पोषण और शारीरिक विकास को प्रोत्साहित करना है।

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ। एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः॥ (अथर्ववेद 8.2.18)

अर्थात् "जौ और चावल तुम्हारे लिए बलदायक और पुष्टिकारक हों, क्योंकि ये दोनों यक्ष्मा (रोग) का नाश करने वाले हैं।"

अन्नप्राशन संस्कार बच्चे के पाचन तंत्र को मजबूत करने के लिए किया जाता है, और इसे शारीरिक विकास के महत्वपूर्ण चरण के रूप में माना जाता है।

3.2.7. वपन क्रिया (चूड़ाकरण संस्कार)

चूड़ाकरण संस्कार बच्चे के बालों का मुण्डन करने का संस्कार है, जिसे तीसरे, पाँचवें या सातवें वर्ष में किया जाता है। इसका उद्देश्य बच्चे के शरीर और मन की शुद्धि करना है।

नि वर्त्तयाम्यायुषेऽनाद्याय प्रजननाय रायास्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुविर्याय॥ (यजुर्वेद 3.63)

अर्थात् "मैं तुम्हारे दीर्घायु, उत्तम प्रजनन शक्ति, ऐश्वर्य और बल की प्राप्ति के लिए तुम्हारा चूड़ाकरण करता हूँ।"

इस संस्कार का उद्देश्य शिशु के शरीर को शुद्ध करना और उसके मानसिक और शारीरिक विकास में सहायक बनना है।

3.2.8. कर्णवेध संस्कार

कर्णवेध संस्कार शिशु के कान छिदवाने का संस्कार है, जो शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। इसे छह महीने से लेकर सोलहवें वर्ष के बीच किया जा सकता है।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँ सस्तनूभिर्व्यशेम ही
देवहितं यदायुः॥ (यजुर्वेद 25.21)

अर्थात् "हे देवताओं! हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें और अपनी आँखों से शुभ दृश्यों का दर्शन करें। स्वस्थ शरीर से हम आपके हित में यशस्वी हो सकें।"

कर्णवेध संस्कार का उद्देश्य शरीर में ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित करना है और यह स्वास्थ्य और समृद्धि का प्रतीक है।

3.2.9. उपनयन संस्कार (व्रतादेश)

उपनयन संस्कार व्यक्ति को द्विज यानी "दूसरा जन्म" दिलाने का संस्कार है। इस संस्कार के माध्यम से बालक ब्रह्मचर्य में प्रवेश करता है और वैदिक अध्ययन का अधिकार

प्राप्त करता है। उपनयन संस्कार के अंतर्गत बालक को यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है, जिससे वह समाज में धार्मिक और सामाजिक दायित्व निभाने के योग्य बनता है।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्। भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (ऋग्वेद

3.62.10, गायत्री मंत्र)

अर्थात् "हम उस आदित्य देवता की उपासना करते हैं जो सर्वोच्च हैं और सभी जीवों के कल्याण का प्रकाश देते हैं। हमारी बुद्धि को वह प्रेरित करें और सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करें।"

उपनयन संस्कार के द्वारा बालक को गुरु के अधीन शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को आत्मिक ज्ञान और धर्म के पथ पर चलने की प्रेरणा देना है। इसके माध्यम से बालक का मानसिक और आध्यात्मिक विकास होता है।

3.2.10. वेदारंभ संस्कार

वेदारंभ संस्कार उपनयन संस्कार के तुरंत बाद होता है। इस संस्कार में बालक को गुरु द्वारा वेदों का अध्ययन प्रारंभ करने की अनुमति दी जाती है। यह संस्कार बालक को ज्ञान की ओर अग्रसर करने का प्रथम चरण है।

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्। पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनात् धर्मं ततः सुखम्॥

(चाणक्य नीति श्लोक)

अर्थात् "विद्या विनम्रता देती है, विनम्रता से पात्रता मिलती है। पात्रता से धन की प्राप्ति होती है, और धन से धर्म और तत्पश्चात् सुख की प्राप्ति होती है।"

वेदारंभ संस्कार का मुख्य उद्देश्य बालक को वैदिक ज्ञान की नींव प्रदान करना है। इसमें गुरु अपने शिष्य को धर्म, नीति और अध्यात्म की शिक्षा प्रदान करते हैं।

3.2.11. केशांत संस्कार (गोदान)

केशांत संस्कार या गोदान संस्कार उस समय किया जाता है जब बालक का विद्याध्ययन समाप्त हो जाता है और वह ब्रह्मचर्य से गृहस्थ जीवन की ओर अग्रसर होता है। इस संस्कार में ब्रह्मचारी बालक का मुण्डन किया जाता है और उसे गुरु के चरणों में गोदान किया जाता है।

नि वर्त्तयाम्यायुषेऽनाद्याय प्रजननाय रायास्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥

(यजुर्वेद 3.63)

अर्थात् "मैं तुम्हारे दीर्घायु, उत्तम प्रजनन शक्ति, ऐश्वर्य और बल की प्राप्ति के लिए तुम्हारा केशांत संस्कार करता हूँ।"

इस संस्कार का उद्देश्य विद्यार्थी को उसके अध्ययन के अंतर्गत गुरु का आशीर्वाद प्रदान करना और उसके गृहस्थ जीवन की शुरुआत को शुभ बनाना है। इस समय ब्रह्मचारी को गुरु दक्षिणा देकर गुरु के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करनी होती है।

3.2.12. समावर्तन संस्कार (वेदस्नान)

समावर्तन संस्कार ब्रह्मचारी के अध्ययन की समाप्ति पर होता है। इस संस्कार के बाद व्यक्ति समाज में वापस लौटता है और गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के लिए तैयार होता है। इसे वेदस्नान भी कहा जाता है, क्योंकि इस समय ब्रह्मचारी को वेद मंत्रों से अभिमंत्रित जल से स्नान कराया जाता है।

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे ॥

(ऋग्वेद 1.25.21)

अर्थात् "हे वरुणदेव! आप हमारे कटि एवं उर्ध्व भाग के बंधनों को हटाएं और हमें निर्विघ्न जीवन जीने की आज्ञा दें।"

समावर्तन संस्कार का मुख्य उद्देश्य ब्रह्मचारी को समाज में लौकिक दायित्व निभाने के लिए प्रस्तुत करना और उसे गृहस्थ जीवन के लिए तैयार करना है। इसमें गुरु अपने शिष्य को जीवनोपयोगी शिक्षा देकर उसे समाज में जाने की अनुमति प्रदान करते हैं।

3.2.13. विवाह संस्कार

विवाह संस्कार भारतीय जीवन के चार आश्रमों में से दूसरे आश्रम, गृहस्थ आश्रम का प्रवेश द्वार है। इस संस्कार का उद्देश्य दो व्यक्तियों के बीच आध्यात्मिक, सामाजिक और धार्मिक बंधन स्थापित करना है। विवाह संस्कार के माध्यम से वर और कन्या एक-दूसरे के साथ जीवन भर रहने का संकल्प लेते हैं।

सह धा वव्रतुं सह वो जुष्टमस्तु। सम्यञ्चः सप्त पदा भव वाचस्पतिः हि नः सख्यमाविन्दत॥

(ऋग्वेद 10.85.42)

अर्थात् "हम दोनों साथ-साथ संकल्प करें, हमारी इच्छाएँ एक-दूसरे से मेल खाएं। हम साथ-साथ सात कदम बढ़ाएं और हमारे बीच सख्य का यह बंधन सदा स्थिर रहे।"

विवाह संस्कार में अग्नि के सामने सात फेरे लेकर दंपति एक-दूसरे के प्रति निष्ठा और समर्पण की प्रतिज्ञा करते हैं। यह संस्कार परिवार, समाज और आने वाली पीढ़ियों के निर्माण का आधार है।

3.2.14. विवाहाग्नि परिग्रह संस्कार

विवाहाग्नि परिग्रह संस्कार में विवाह के समय उपयोग में लाई गई अग्नि को सहेजा जाता है और इसे घर लाया जाता है। इस अग्नि का उद्देश्य गृहस्थ जीवन में सभी धार्मिक और सामाजिक अनुष्ठानों को संपन्न करना है। विवाहाग्नि को प्रतिदिन पूजित किया जाता है और उसमें हवन करने का विधान होता है।

कर्म स्मार्त विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही।

(याज्ञवल्क्य स्मृति, आचाराध्याय 5.97)

अर्थात् "गृहस्थ को प्रतिदिन विवाहाग्नि में स्मार्त कर्म (हवन आदि) करना चाहिए।"

इस संस्कार का उद्देश्य गृहस्थी के जीवन को पवित्र बनाए रखना और दैनिक पूजा-पाठ के माध्यम से अग्नि को जीवित रखना है। इस अग्नि में गृहस्थ के सारे अनुष्ठान संपन्न होते हैं, जो उसकी धार्मिकता का प्रतीक है।

3.2.15. त्रेताग्नि संग्रह संस्कार

त्रेताग्नि संग्रह संस्कार वैदिक यज्ञों में उपयोग की जाने वाली तीन अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय, और दक्षिणाग्नि) को स्थापित करने का संस्कार है। इसका उद्देश्य गृहस्थ को यज्ञीय कर्मों के लिए तैयार करना है। इस संस्कार में विशेष प्रकार की तीन अग्नियों का संग्रह और उन्हें स्थिर किया जाता है।

स्मार्त वैवाहिके वह्नौ श्रौतं वैतानिकाग्निषु। (व्यास स्मृति 2.17)

अर्थात् "स्मार्त या पाकयज्ञ के सभी कर्म वैवाहिक अग्नि में और श्रौत यज्ञ के सभी कर्म वैतानिक अग्नि में संपन्न होते हैं।"

त्रेताग्नि संग्रह संस्कार का उद्देश्य व्यक्ति को श्रौत यज्ञों के प्रति जागरूक करना है। इस संस्कार के द्वारा व्यक्ति को सामाजिक और धार्मिक कर्तव्यों का पालन करने के लिए तैयार किया जाता है। यह संस्कार व्यक्ति को अपने ज्ञान और साधना को समाज और धर्म के कल्याण में लगाने की प्रेरणा देता है।

3.2.16. अंत्येष्टि संस्कार

अंत्येष्टि संस्कार हिंदू धर्म में अंतिम संस्कार प्रक्रिया है, जो आत्मा की मुक्ति और शरीर के पंच तत्वों में विलय का प्रतीक है। इस संस्कार में मृतक के शरीर को स्नान कराकर, शुद्ध वस्त्र पहनाकर, पुष्पमाला अर्पित कर अग्नि दी जाती है। परिवार का सबसे बड़ा पुरुष सदस्य मुखाग्नि देकर आत्मा की शांति के लिए वैदिक मंत्रों का उच्चारण करता है। इसके बाद अस्थियों का संग्रह कर पवित्र नदी में विसर्जन होता है। अंत्येष्टि संस्कार के पश्चात श्राद्ध और तर्पण का आयोजन किया जाता है, जिससे आत्मा को मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। यह संस्कार जीवन की नश्वरता और आत्मा की अमरता का बोध कराता है।

इस प्रकार संस्कार व्यक्ति के जीवन को पवित्र और उन्नत बनाते हैं। वे व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक विकास में सहायक होते हैं और उसे समाजोपयोगी बनाते हैं। भारतीय संस्कृति में संस्कारों का महत्व इस बात में निहित है कि वे व्यक्ति को अनुशासन, शुद्धता और उच्च आदर्शों की दिशा में प्रेरित करते हैं। संस्कार न केवल धार्मिक अनुष्ठान हैं, बल्कि जीवन के प्रत्येक चरण को संस्कारित और परिपक्व बनाने का माध्यम हैं। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में सोलह संस्कारों को शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है। ये संस्कार न केवल व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक विकास में सहायक होते हैं, बल्कि उसके नैतिक, धार्मिक और सामाजिक मूल्यों को भी सुदृढ़ बनाते हैं। इन संस्कारों के माध्यम से विद्यार्थियों में जीवन के उच्च आदर्शों, अनुशासन, आत्म-संयम, और समाज के प्रति कर्तव्य की भावना का विकास होता है। भारतीय शिक्षा दर्शन में संस्कारों का यह योगदान विद्यार्थियों को न केवल एक अच्छे विद्वान बनने के लिए प्रेरित करता है, बल्कि उन्हें एक जिम्मेदार और नैतिक नागरिक बनने की दिशा में भी मार्गदर्शन करता है। इन सभी संस्कारों का मानवीय जीवन मूल्यों के संवर्द्धन और व्यक्तित्व विकास में अत्यंत महत्व है। इस दृष्टि से देखा जाए तो इन सोलह संस्कारों का शैक्षिक महत्व है किन्तु इन सोलह संस्कारों में कुछ संस्कारों का सीधा सम्बन्ध शिक्षा प्राप्ति से है जिसे प्रस्तुत शोध में शैक्षिक संस्कार के रूप में उल्लेखित किया गया है। गुरुकुल शिक्षा के सन्दर्भ में इन शैक्षिक संस्कारों पर विस्तार से विचार किया जाना उचित होगा जिससे इन संस्कारों के महत्व को स्पष्ट रूप से समझा जा सके।

3.3. शैक्षिक संस्कार

शैक्षिक संस्कारों में चार प्रमुख संस्कार मेधाजानन, विद्यारम्भ, उपनयन और समावर्तन हैं, जो एक बालक को ज्ञान प्राप्त करने और उसे सामाजिक जिम्मेदारियों के लिए तैयार करने की प्रक्रिया का हिस्सा बनाते हैं। मेधाजानन संस्कार बालक की बौद्धिक क्षमता, स्मरण शक्ति और चिंतन शक्ति को बढ़ाने के उद्देश्य से किया जाता है। यह संस्कार इस बात को सुनिश्चित करता है कि बालक में शिक्षा के प्रति रुचि, ध्यान केंद्रित करने की क्षमता, और समझने की योग्यता विकसित हो सके। विद्यारम्भ संस्कार, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, बालक के औपचारिक शिक्षा का आरंभिक चरण है। इस संस्कार के अंतर्गत बालक को अक्षरों का ज्ञान कराया जाता है, जिससे वह पढ़ने और लिखने की क्षमता प्राप्त करता है।

इसमें गुरु के सान्निध्य में शिक्षा प्राप्त करने की परंपरा की शुरुआत होती है। यह संस्कार बालक को शिक्षा के मार्ग में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है और उसकी रुचि एवं ज्ञानार्जन की क्षमता को प्रकट करता है। उपनयन संस्कार का विशेष महत्व है क्योंकि इसे द्विजत्व प्राप्ति का संस्कार माना गया है। इस संस्कार में बालक को यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है और गुरु के पास वेदाध्ययन के लिए भेजा जाता है। बालक को शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ संयम और अनुशासन का पालन करना सिखाया जाता है। उपनयन संस्कार से बालक का शैक्षिक जीवन औपचारिक रूप से आरंभ होता है और वह गुरु के सान्निध्य में धार्मिक एवं लौकिक ज्ञान प्राप्त करता है। इसमें बालक को गायत्री मंत्र का दीक्षा मिलती है, जो उसके जीवन में आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों को सुदृढ़ बनाता है। समावर्तन संस्कार शिक्षा पूर्ण करने का अंतिम चरण होता है, जिसमें बालक को वेदों और अन्य विद्याओं में पारंगत होने के बाद गृहस्थ जीवन में प्रवेश की अनुमति दी जाती है। इस संस्कार के माध्यम से बालक गुरु के पास से विदा लेकर समाज के साथ अपने ज्ञान को साझा करने के लिए तैयार होता है। इस समय गुरु उसे उचित जीवनमूल्य, सामाजिक कर्तव्यों और लोककल्याण की प्रेरणा देते हैं। समावर्तन संस्कार का मुख्य उद्देश्य होता है कि विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपने ज्ञान का उपयोग समाज की सेवा और कल्याण के लिए करे।

इन चारों संस्कारों का उद्देश्य बालक के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित करना है। ये संस्कार शिक्षा के विभिन्न चरणों को चिह्नित करते हैं और शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हैं। इन संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति केवल ज्ञान प्राप्त नहीं करता बल्कि जीवन जीने की कला और सामाजिक जिम्मेदारियों का बोध भी प्राप्त करता है। इस प्रकार, ये संस्कार बालक को सम्पूर्ण रूप से शिक्षित और नैतिक गुणों से युक्त बनाते हैं, जिससे वह समाज में एक जिम्मेदार और संवेदनशील नागरिक के रूप में योगदान कर सके। इन संस्कारों का विस्तार से वर्णन इस प्रकार है-

3.3.1. मेधाजनन संस्कार

यह संस्कार गर्भस्थ शिशु की संपूर्ण शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिए महत्वपूर्ण माना गया है। इस संस्कार में माता-पिता दोनों की भागीदारी होती है और इसका

मूल उद्देश्य शिशु को एक उत्तम मनुष्य बनाना है, जिसमें वेदों और शास्त्रों का ज्ञान होता है। भारत की प्राचीन वैदिक संस्कृति में, संस्कारों का विशेष महत्व है। मेधाजनन संस्कार वैदिक काल से ही भारतीय समाज का हिस्सा रहा है और यह शिशु के जन्म से पहले उसके लिए किए जाने वाले प्रारंभिक संस्कारों में से एक है। मेधाजनन संस्कार गर्भ में शिशु के मानसिक विकास के लिए विशेष रूप से किया जाता है, जिसमें माता-पिता की श्रद्धा, मनोबल, और शारीरिक स्वास्थ्य का भी महत्व है।

3.3.1.1. वैदिक परंपरा और मंत्र

मेधाजनन संस्कार के दौरान वैदिक ऋचाओं का पाठ किया जाता है। इन मंत्रों में उच्च आध्यात्मिक ऊर्जा होती है, जो गर्भस्थ शिशु की मानसिक और बौद्धिक क्षमता को विकसित करने में मदद करती है। मंत्रों का नियमित उच्चारण गर्भवती महिला को मानसिक शांति और संतुलन प्रदान करता है और इस प्रकार गर्भस्थ शिशु के जीवन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

उदाहरण के लिए, ऋग्वेद में मेधाजनन के दौरान किए जाने वाले मंत्रों में ज्ञान और शारीरिक क्षमता का विकास करने की प्रार्थना होती है। एक प्रसिद्ध श्लोक इस प्रकार है:

"इमं मेधां मयि देवाः सं धत्तां मम हृदि।" (ऋग्वेद, 10.125.8)

इस श्लोक का अर्थ है: "हे देवगण, मेरी बुद्धि और स्मरणशक्ति को मेरे हृदय में विकसित करें।" इस प्रकार के मंत्रों से गर्भवती महिला और शिशु दोनों के मानसिक स्वास्थ्य का विकास होता है।

3.3.1.2. मेधाजनन संस्कार की प्रक्रिया

इस संस्कार की प्रक्रिया विस्तृत है और इसमें कई अनुष्ठान और अनुष्ठानिक सामग्री का प्रयोग होता है। प्रमुख प्रक्रियाओं में शामिल हैं:

1. **मंत्रों का उच्चारण:** संस्कार के दौरान विशेष वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, जिनका उद्देश्य गर्भस्थ शिशु की मेधा का विकास करना होता है। मंत्रों के

उच्चारण से गर्भवती महिला में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है, जिसका लाभ शिशु को भी प्राप्त होता है।

2. **हवन और यज्ञ:** हवन और यज्ञ का आयोजन इस संस्कार का अभिन्न हिस्सा होता है। इसमें विशेष हवन सामग्री और औषधियों का प्रयोग किया जाता है, जो शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होती हैं। हवन के दौरान अग्नि देवता को आहुतियाँ दी जाती हैं, जो पर्यावरण में सकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न करती हैं।
3. **ध्यान और प्राणायाम:** ध्यान और प्राणायाम का अभ्यास गर्भवती महिला को मानसिक शांति और शारीरिक स्वास्थ्य बनाए रखने में मदद करता है। ध्यान से मन में सकारात्मक विचार आते हैं और यह शिशु के मानसिक विकास में भी सहायक होता है।
4. **गायत्री मंत्र का जप:** गायत्री मंत्र को सभी मंत्रों में सबसे प्रभावशाली माना गया है। गर्भवती महिला के लिए इस मंत्र का नियमित रूप से जप करना अनिवार्य माना जाता है, क्योंकि इससे मानसिक स्थिरता और आत्मिक शांति प्राप्त होती है।
5. **आयुर्वेदिक औषधियों का सेवन:** इस संस्कार में गर्भवती महिला को कुछ विशेष आयुर्वेदिक औषधियाँ दी जाती हैं। इन औषधियों का मुख्य उद्देश्य शिशु के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देना होता है। आयुर्वेदिक औषधियों का सेवन माता को ताकत और ऊर्जा प्रदान करता है, जिससे शिशु का उचित विकास सुनिश्चित होता है।

3.3.1.3. मेधाजनन संस्कार का उद्देश्य और महत्व

मेधाजनन संस्कार का मुख्य उद्देश्य गर्भवती महिला की मेधा, बुद्धि, और शारीरिक स्वास्थ्य का विकास करना है। यह संस्कार माता के गर्भधारण के समय से ही शिशु के विकास पर ध्यान केंद्रित करता है और यह सुनिश्चित करता है कि शिशु का जीवन स्वस्थ, मानसिक रूप से संतुलित, और संस्कारित हो।

1. **बुद्धि और मेधा का विकास:** मेधाजनन संस्कार का प्राथमिक उद्देश्य गर्भस्थ शिशु में बुद्धि और मेधा का विकास करना है। वैदिक मंत्रों के उच्चारण और अनुष्ठानों के माध्यम से माता और पिता दोनों ही शिशु के मानसिक विकास में अपना योगदान देते हैं।
2. **मानसिक शांति और स्थिरता:** इस संस्कार में ध्यान और प्राणायाम जैसे मानसिक क्रियाओं का समावेश होता है, जिससे गर्भवती महिला को मानसिक शांति और स्थिरता प्राप्त होती है। यह शांति और स्थिरता गर्भस्थ शिशु को मानसिक संतुलन और शक्ति प्रदान करती है।
3. **आध्यात्मिक जागरूकता:** संस्कार के दौरान माता-पिता में आध्यात्मिक जागरूकता उत्पन्न होती है। यह जागरूकता गर्भस्थ शिशु के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। माता-पिता की आध्यात्मिक स्थिति का सीधा प्रभाव शिशु पर पड़ता है और उसे भी आध्यात्मिक रूप से मजबूत बनाता है।

3.3.1.4. आधुनिक संदर्भ में मेधाजनन संस्कार

आधुनिक युग में, मेधाजनन संस्कार का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी महत्व बढ़ गया है। गर्भावस्था के दौरान माता का मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य सीधे शिशु के विकास को प्रभावित करता है। कई चिकित्सक और मनोवैज्ञानिक गर्भवती महिलाओं को ध्यान, योग, और सकारात्मक गतिविधियों में संलग्न रहने की सलाह देते हैं, जिससे शिशु का शारीरिक और मानसिक विकास बेहतर हो सके।

वैज्ञानिक शोध यह सिद्ध कर चुके हैं कि गर्भवती महिला का मानसिक संतुलन और उसका जीवनशैली शिशु के मानसिक विकास पर गहरा प्रभाव डालता है। भारतीय परंपरा में जो संस्कार किए जाते थे, उनका उद्देश्य केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं था, बल्कि उनके पीछे गहन वैज्ञानिक दृष्टिकोण था।

3.3.1.5. वैदिक और आधुनिक विज्ञान के बीच सामंजस्य

मेधाजनन संस्कार का महत्व केवल धार्मिक दृष्टिकोण से नहीं बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी सिद्ध होता है। आधुनिक शोध यह पुष्टि करते हैं कि गर्भावस्था के दौरान माता का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य शिशु के विकास को सीधे प्रभावित करता है। भारतीय वैदिक परंपरा में इस संस्कार के माध्यम से माता को स्वस्थ, संतुलित और सकारात्मक वातावरण में रखने की परंपरा थी। अथर्ववेद में इस संस्कार का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है। यह सिद्ध करता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की महत्ता को पहले ही समझ लिया गया था।

"मातुः शान्तिम्, गर्भस्य मेधां च धत्त।" (अथर्ववेद, अध्याय 4, मंत्र 23)

इस श्लोक का अर्थ है: "माता को शांति मिले और गर्भस्थ शिशु में बुद्धि और मेधा का विकास हो।" इस प्रकार की प्रार्थनाओं और अनुष्ठानों से शिशु का विकास सुनिश्चित होता है और उसे एक स्वस्थ और बुद्धिमान व्यक्ति बनाने में मदद मिलती है।

मेधाजनन संस्कार भारतीय वैदिक परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जिसका उद्देश्य शिशु के मानसिक, शारीरिक और बौद्धिक विकास को सुनिश्चित करना है। यह संस्कार न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से, बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। संस्कार के माध्यम से माता-पिता शिशु के भविष्य के लिए सकारात्मक वातावरण तैयार करते हैं, जिससे शिशु में उच्च मेधा, संतुलन, और स्वास्थ्य का विकास होता है। इस संस्कार के माध्यम से भारतीय संस्कृति ने गर्भस्थ शिशु के विकास के प्रति एक संवेदनशील और जागरूक दृष्टिकोण अपनाया, जिसका आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी समर्थन करता है। मेधाजनन संस्कार भारतीय ज्ञान परंपरा का एक ऐसा अद्वितीय अंग है, जो शिशु को मानसिक और शारीरिक दृष्टिकोण से उन्नत बनाने का प्रयास करता है।

3.3.1.6. मेधाजनन संस्कार और मातृवत्सलता

मेधाजनन संस्कार का एक विशेष पहलू यह है कि इस संस्कार के दौरान माता की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती है। गर्भवती महिला को न केवल पौष्टिक आहार की आवश्यकता होती है, बल्कि मानसिक और भावनात्मक समर्थन भी आवश्यक होता है।

वैदिक अनुष्ठानों में इसे बहुत महत्व दिया गया है कि माता को हर प्रकार से स्नेह, शांति, और सकारात्मक वातावरण मिले।

संस्कार के दौरान परिवार के सदस्य भी गर्भवती महिला की सेवा में भाग लेते हैं। इसका उद्देश्य होता है कि महिला हर प्रकार की चिंता और तनाव से मुक्त रहे, ताकि उसका मानसिक संतुलन और शारीरिक स्वास्थ्य दोनों बनाए रखा जा सके।

इस संदर्भ में अभिगमन्योपनिषद का एक श्लोक महत्वपूर्ण है:

"अम्बिका मेधायुक्ता भवेत्, गर्भं पालयति सम्यक्।"

(अभिगमन्योपनिषद, अध्याय 2, मंत्र 11)

इसका अर्थ है कि "माता मेधा से युक्त हो, और गर्भस्थ शिशु का पूर्णरूप से पोषण करे।" इस प्रकार से गर्भवती महिला के पोषण और शारीरिक, मानसिक सुदृढ़ता का ध्यान रखने की परंपरा थी। यह ध्यान शिशु के संपूर्ण विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

3.3.1.7. संस्कार की प्रकृति: आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण

मेधाजनन संस्कार का एक विशिष्ट पहलू यह भी है कि इसमें आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दोनों दृष्टिकोणों का समावेश है। वैदिक ऋचाओं और मंत्रों के माध्यम से गर्भवती महिला के अंदर आध्यात्मिक शक्ति का संचार किया जाता है। वहीं, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो गर्भवस्था के दौरान मातृ मनोदशा और उसके मानसिक स्वास्थ्य का शिशु के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

आधुनिक मनोविज्ञान और चिकित्सा विज्ञान इस बात को प्रमाणित करते हैं कि गर्भावस्था के दौरान माता की मानसिक स्थिति का शिशु के मानसिक और बौद्धिक विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि माता को शांति, संतुलन, और सुख का अनुभव होता है, तो यह गर्भस्थ शिशु के मानसिक विकास में सहायक होता है। वैदिक काल में इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए मेधाजनन संस्कार की परंपरा विकसित हुई थी।

3.3.1.8. मेधाजनन संस्कार में औषधियों का प्रयोग

वैदिक काल में मेधाजनन संस्कार के दौरान कुछ विशेष आयुर्वेदिक औषधियों का प्रयोग होता था, जो गर्भवती महिला के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए आवश्यक मानी जाती थीं। इन औषधियों में ब्राह्मी, शंखपुष्पी, अश्वगंधा आदि का उपयोग होता था, जो बुद्धि और स्मरणशक्ति को बढ़ाने के लिए प्रसिद्ध हैं। **च्यवनप्राश** जैसी औषधियाँ भी इस दौरान दी जाती थीं, जो शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ाने और रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करने में सहायक होती हैं। आयुर्वेदिक ग्रंथ **चरक संहिता** में इसका उल्लेख मिलता है:

"गर्भिणी स्त्रीणां मेधायुक्ता औषधयः सेवनायाः सन्ति।"

(चरक संहिता, अध्याय 9, श्लोक 12)

इसका अर्थ है कि गर्भवती महिलाओं के लिए मेधायुक्त औषधियों का सेवन लाभदायक होता है। इन औषधियों के सेवन से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखा जाता है, जिससे गर्भस्थ शिशु का विकास बेहतर होता है।

3.3.1.9. आधुनिक समाज में मेधाजनन संस्कार का पुनरावलोकन

आधुनिक समाज में मेधाजनन संस्कार का महत्व धीरे-धीरे पुनः बढ़ रहा है। विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में किए गए नए शोध यह सिद्ध करते हैं कि गर्भवती महिला का मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य शिशु के जन्म से पूर्व ही उसके जीवन की दिशा को प्रभावित कर सकता है।

कई संगठन और संस्थाएँ आज इस बात पर जोर दे रहे हैं कि गर्भावस्था के दौरान माता के लिए ध्यान, योग, और सकारात्मक सोच अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ये सभी तत्व मेधाजनन संस्कार में पहले से ही सम्मिलित थे। इसलिए, आज के समय में मेधाजनन संस्कार के सिद्धांतों को पुनः अपनाने की आवश्यकता है।

3.3.1.10. मातृत्व और परिवार की भूमिका

मेधाजनन संस्कार केवल माता तक सीमित नहीं है, बल्कि पूरे परिवार की भागीदारी इसमें आवश्यक होती है। पिता और परिवार के अन्य सदस्य इस दौरान गर्भवती महिला को हर संभव सहायता और प्रेम प्रदान करते हैं। इस तरह का वातावरण शिशु के मानसिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। महाभारत में इस प्रकार के वातावरण की आवश्यकता का उल्लेख मिलता है:

"यथा गर्भवती स्त्रीणां शान्ति, त्याग, सेवाविशेषणं च।"

(महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय 56, श्लोक 32)

इस श्लोक में यह कहा गया है कि गर्भवती महिला के लिए शांति, त्याग, और सेवा का महत्व अत्यधिक है। परिवार के सदस्यों को इस दौरान सेवा भाव से कार्य करना चाहिए, जिससे गर्भवती महिला का स्वास्थ्य और मानसिक शांति सुनिश्चित हो सके।

3.3.1.11. मेधाजनन संस्कार का प्रभाव

भविष्य में मेधाजनन संस्कार का महत्व और भी बढ़ सकता है, क्योंकि आज के समय में मानसिक स्वास्थ्य को लेकर जागरूकता बढ़ी है। गर्भावस्था के दौरान माता के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य का सीधा प्रभाव शिशु के संपूर्ण विकास पर पड़ता है। इसलिए, मेधाजनन संस्कार के द्वारा गर्भवती शिशु को शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया जा सकता है।

संक्षेप में, मेधाजनन संस्कार एक संपूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें गर्भवती महिला को मानसिक और शारीरिक दृष्टिकोण से स्वस्थ बनाए रखने के लिए विभिन्न उपाय किए जाते हैं। यह संस्कार गर्भवती शिशु के बुद्धि, स्मरणशक्ति, और आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

3.3.2. विद्यारम्भ संस्कार

विद्यारम्भ संस्कार भारतीय जीवन पद्धति में विद्या के आरंभ का प्रथम कदम है। इस संस्कार के माध्यम से बच्चे के भीतर शिक्षा के प्रति सम्मान और रुचि उत्पन्न की जाती है।

प्राचीन काल में यह संस्कार गुरुकुल शिक्षा पद्धति के साथ संबंधित था, जहाँ विद्यार्थी गुरु के सानिध्य में रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। विद्यारम्भ संस्कार का तात्पर्य उस क्षण से है जब कोई बच्चा औपचारिक रूप से शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपनी पहली लिखावट शुरू करता है। इसे 'अक्षरारंभ संस्कार' भी कहा जाता है क्योंकि इस संस्कार में बालक के जीवन में प्रथम बार अक्षरों से साक्षात्कार करवाया जाता है।

वेदस्याध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम् ।

वेदाध्ययनसामान्यादधुनाध्ययनं यथा ॥

(मीमांसा न्याय प्रकाश)

3.3.2.1. विद्यारम्भ संस्कार का सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व

भारतीय समाज में शिक्षा का बहुत बड़ा महत्व रहा है। शिक्षा को केवल आजीविका का साधन नहीं माना गया है, बल्कि इसे आत्म-साक्षात्कार और मुक्ति का मार्ग भी माना गया है। शिक्षा के आरंभ के रूप में विद्यारम्भ संस्कार का आयोजन किया जाता है ताकि बच्चे को शिक्षा की पवित्रता और महत्व का आभास हो। विद्यारम्भ संस्कार की प्रक्रिया में गुरु का महत्वपूर्ण स्थान होता है, और इसे शिक्षा का शुभारंभ माना जाता है। यह संस्कार यह दर्शाता है कि ज्ञान केवल पुस्तकों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन का मार्गदर्शन करने वाला एक पवित्र साधन है।

“विद्यारम्भ संस्कार में गुरु की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। गुरु शिष्य को विद्या की ओर प्रवृत्त करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसमें बच्चों को 'ॐ' या 'अ' जैसे पवित्र अक्षरों को लिखवाया जाता है। चावल की थाली में पहली बार अक्षर लिखवाना और पूजा करना शिक्षा के आरंभ का संकेत होता है। इस प्रक्रिया में भगवान सरस्वती की पूजा भी की जाती है, जिन्हें ज्ञान और विद्या की देवी माना जाता है। यह पूजा इस बात का संकेत है कि विद्या का मूल स्रोत ईश्वर है, और शिक्षा के मार्ग पर चलते हुए व्यक्ति को ईश्वर से आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए।”ⁱⁱⁱ

3.3.2.2. विद्यारम्भ संस्कार की प्रक्रिया और विधि

विद्यारम्भ संस्कार की प्रक्रिया किसी विद्वान पुजारी के मार्गदर्शन में सम्पन्न की जाती है। पहले हवन और पूजा का आयोजन होता है, जिसमें भगवान गणेश, देवी सरस्वती और गुरु की पूजा की जाती है। इसके बाद बच्चे को चावल से भरी हुई थाली पर पहला अक्षर लिखवाया जाता है। इस संस्कार में बच्चे के माता-पिता, परिवार के अन्य सदस्य और गुरु सम्मिलित होते हैं। यह संस्कार तब सम्पन्न होता है जब बच्चा चार या पाँच वर्ष का होता है और उसे औपचारिक शिक्षा के लिए तैयार माना जाता है। “इस प्रक्रिया में बच्चे को सबसे पहले भगवान गणेश का नाम लिखवाया जाता है क्योंकि गणेश को 'विघ्नहर्ता' माना जाता है और उनकी पूजा से सभी कार्य बिना किसी विघ्न के संपन्न होते हैं। इसके बाद 'ॐ' का उच्चारण और लिखवाना होता है जो सृष्टि के मूल ऊर्जा का प्रतीक है। यह बच्चे में आध्यात्मिक दृष्टिकोण और शिक्षा की पवित्रता की भावना को जन्म देता है। इसके बाद बच्चे को वर्णमाला का एक अक्षर लिखवाया जाता है, जो उसकी शिक्षा की शुरुआत का प्रतीक होता है।”ⁱⁱⁱ

3.3.2.3. विद्यारम्भ संस्कार का उद्देश्य

विद्यारम्भ संस्कार का उद्देश्य केवल बच्चे को शिक्षा की औपचारिक शुरुआत करवाना नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से उसमें विद्या के प्रति आदर और रुचि उत्पन्न करना है। इसका उद्देश्य निम्नलिखित है:

1. शिक्षा के प्रति सम्मान: यह संस्कार शिक्षा के प्रति आदरभाव उत्पन्न करता है। बच्चे को यह सिखाया जाता है कि शिक्षा केवल एक साधारण कार्य नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन को सार्थक बनाने का साधन है।
2. गुरु का सम्मान: विद्यारम्भ संस्कार में गुरु का स्थान प्रमुख होता है। यह संस्कार बच्चे को गुरु के महत्व और शिक्षा में उनकी भूमिका का आभास करवाता है। भारतीय परंपरा में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश के समान माना गया है, और विद्यारम्भ संस्कार इस बात की पुष्टि करता है।ⁱⁱⁱ³

3. मूल्य और संस्कारों का विकास: इस संस्कार के माध्यम से बच्चे के भीतर अनुशासन, संयम, समर्पण और परिश्रम जैसे गुणों का विकास होता है। इसके माध्यम से बालक को समझाया जाता है कि शिक्षा के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए इन गुणों का होना अनिवार्य है।
4. समग्र विकास: विद्यारम्भ संस्कार केवल शिक्षा का प्रारंभ नहीं है, बल्कि यह बच्चे के मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास का भी आधार है। यह संस्कार बच्चे को जीवन के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण और समर्पण की भावना प्रदान करता है।
5. शिक्षा का पवित्रता का महत्व: इस संस्कार के माध्यम से यह संदेश दिया जाता है कि शिक्षा केवल ज्ञान अर्जन का साधन नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के जीवन को बेहतर बनाने का एक पवित्र प्रयास है।

3.3.2.4. समकालीन परिप्रेक्ष्य में विद्यारम्भ संस्कार

“समकालीन समय में भी विद्यारम्भ संस्कार का महत्व बना हुआ है। हालांकि शिक्षा की प्रणाली में बहुत सारे बदलाव आ चुके हैं, लेकिन विद्यारम्भ संस्कार का महत्व अभी भी वही है। आज भी कई परिवार इस संस्कार का आयोजन अपने बच्चों के लिए करते हैं ताकि वे शिक्षा के महत्व को समझ सकें और अपने जीवन में विद्या के प्रति आदरभाव रख सकें।”^{iv} कई शैक्षणिक संस्थान भी विद्यारम्भ संस्कार का आयोजन करते हैं ताकि नए छात्रों को शिक्षा के महत्व और उसके प्रति प्रतिबद्धता का बोध हो। इस संस्कार से छात्र केवल औपचारिक शिक्षा का ही नहीं, बल्कि अपने जीवन में समर्पण, अनुशासन और विद्या के प्रति निष्ठा का भी संकल्प लेते हैं।

इस प्रकार विद्यारम्भ संस्कार भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसमें बच्चे को औपचारिक रूप से शिक्षा की शुरुआत करवाई जाती है। इसका उद्देश्य शिक्षा के प्रति आदर, गुरु के प्रति सम्मान, और बच्चे के समग्र विकास को सुनिश्चित करना है। यह संस्कार यह दर्शाता है कि शिक्षा केवल एक औपचारिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह एक

पवित्र और महत्वपूर्ण साधन है जो व्यक्ति के जीवन को सकारात्मक दिशा में ले जाने में सक्षम है।

3.3.3. उपनयन संस्कार

उपनयन संस्कार प्राचीन भारतीय समाज के 16 संस्कारों में से एक महत्वपूर्ण संस्कार है। इसे विद्यार्थी जीवन का आधिकारिक आरंभ भी कहा जा सकता है। इस संस्कार के माध्यम से बालक को शिक्षा के मार्ग पर चलने की अनुमति मिलती है और उसे ब्रह्मचारी जीवन का आरंभ करने का अधिकार प्राप्त होता है। 'उपनयन' का अर्थ होता है "निकट लाना" या "गुरु के निकट लाना"। यह संस्कार विद्यार्थी को उसके गुरु के सान्निध्य में वेदों और धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन के लिए तैयार करता है।

प्राचीन भारतीय समाज में उपनयन संस्कार को धार्मिक और सामाजिक रूप से अत्यधिक महत्व दिया जाता था। इसे बालक को ब्रह्मचर्य के पथ पर लाने और उसे धर्म, ज्ञान, और अनुशासन की शिक्षा देने के रूप में देखा जाता था। मनुस्मृति (अध्याय 2, श्लोक 36) में इस संस्कार का उल्लेख इस प्रकार किया गया है:

"उपनयनं संस्कारः सर्ववर्णानां विधीयते।" (मनुस्मृति, 2.36)

अर्थात्, उपनयन संस्कार सभी वर्णों के लिए अनिवार्य है और इसका उद्देश्य उन्हें धार्मिक और सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक बनाना है।

3.3.3.1. उपनयन संस्कार की प्रक्रिया

उपनयन संस्कार में मुख्यतः यज्ञोपवीत धारण करना, गुरु के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाना, और गायत्री मंत्र की दीक्षा लेना शामिल है। इस प्रक्रिया में बालक को एक पवित्र धागा (यज्ञोपवीत) धारण करवाया जाता है, जिसे सामान्यतः 'जनेऊ' कहते हैं। यज्ञोपवीत तीन सूत्रों से बना होता है जो देव, ऋषि, और पितृ ऋण का प्रतीक है।

3.3.3.2. यज्ञोपवीत का महत्व

यज्ञोपवीत धारण करने से बालक को धार्मिक और आध्यात्मिक रूप से तैयार किया जाता है। महाभारत (शांति पर्व, अध्याय 31, श्लोक 28) में यज्ञोपवीत के महत्व का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

"यज्ञोपवीतं त्रिसूत्रं ब्रह्मचर्यस्य लक्षणम्।" (महाभारत, शांति पर्व, 31.28)

इसका अर्थ है कि यज्ञोपवीत धारण करने से व्यक्ति ब्रह्मचर्य जीवन में प्रवेश करता है। यह उसे अनुशासन, संयम और ज्ञानार्जन के लिए प्रेरित करता है।

3.3.3.3. गायत्री मंत्र और उसका महत्व

उपनयन संस्कार के दौरान बालक को गायत्री मंत्र की दीक्षा दी जाती है। गायत्री मंत्र का वर्णन यजुर्वेद (अध्याय 36, मंत्र 3) में इस प्रकार किया गया है:

"ओम् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।" (यजुर्वेद, 36.3)

गायत्री मंत्र में सूर्य देव की प्रार्थना की जाती है कि वे हमारी बुद्धि को प्रेरित करें और हमें सन्मार्ग पर चलाएं। गायत्री मंत्र का उच्चारण करते समय गुरु बालक को धार्मिक शिक्षा प्रदान करते हैं और उसे ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह मंत्र बालक के जीवन में आध्यात्मिकता और धर्म का बीज बोने का कार्य करता है।

छांदोग्य उपनिषद (अध्याय 3, खंड 12) में भी गायत्री मंत्र का उल्लेख इस प्रकार किया गया है:

"गायत्रीं छन्दांसि सर्वे वेदा वदन्ति।" (छांदोग्य उपनिषद, 3.12.1)

अर्थात्, गायत्री मंत्र वेदों का सार है और इसे सभी छंदों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उपनयन संस्कार के दौरान इस मंत्र की दीक्षा बालक के जीवन में धार्मिक और आध्यात्मिक विकास का माध्यम बनती है।

3.3.3.4. गुरु-शिष्य परंपरा और उपनयन संस्कार

उपनयन संस्कार के पश्चात बालक गुरु के पास वेदों और शास्त्रों का अध्ययन करता है। इस प्रक्रिया में गुरु का महत्व अत्यधिक होता है। भगवद्गीता (अध्याय 4, श्लोक 34) में गुरु-शिष्य संबंध के महत्व का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।" (भगवद्गीता, 4.34)

अर्थात्, "ज्ञान प्राप्त करने के लिए विनम्रता से गुरु के पास जाओ, उनकी सेवा करो और उनसे प्रश्न पूछो।" गुरु के प्रति भक्ति और सेवा का भाव बालक को धार्मिक और नैतिक मूल्यों का ज्ञान कराता है और उसे जीवन में अनुशासन का पालन करने की शिक्षा देता है।

3.3.3.5. उपनयन संस्कार का उद्देश्य

उपनयन संस्कार का मुख्य उद्देश्य बालक को धार्मिक, सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारियों का ज्ञान कराना है। इसके माध्यम से बालक को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त होता है, जो उसके जीवन में ज्ञान, अनुशासन, और आध्यात्मिकता का संचार करता है। उपनयन संस्कार द्वारा बालक को यह सिखाया जाता है कि जीवन में अनुशासन, संयम, और सेवा के माध्यम से ही सच्ची प्रगति प्राप्त की जा सकती है।

3.3.3.6. देव ऋण, ऋषि ऋण, और पितृ ऋण

यज्ञोपवीत के तीन सूत्र देव ऋण, ऋषि ऋण, और पितृ ऋण का प्रतीक होते हैं। देव ऋण का अर्थ है देवताओं के प्रति कृतज्ञता, ऋषि ऋण का अर्थ है ऋषियों के प्रति ज्ञान का ऋण, और पितृ ऋण का अर्थ है पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता। यह तीनों ऋण व्यक्ति के जीवन में धार्मिकता और नैतिकता का पालन करने के लिए प्रेरित करते हैं।

3.3.3.7. संस्कार का वर्णन

एक शोधकर्ता के लिए उपनयन संस्कार का सर्वेक्षण बड़ा ही शिक्षाप्रद है। संस्कार का प्रारम्भ कलेवे से होता है (स्नान से भी पूर्व) देश के कई भागों में रिवाज है कि इस अवसर पर बालक अपनी माता के बर्तन में ही उसके साथ खाता है। हिन्दू संस्कारों में स्नान से पूर्व

जलपान अनोखा ही है। उपनयन के अवसर पर इस नियम में भंग का अर्थ यह है कि यह बात बालक को स्पष्ट कर दी जाती थी कि अब उसका अनियमित बालकपन का जीवन समाप्त हो रहा है। इसके पश्चात् उसे नियमित तथा गम्भीर होकर जीवन आगे ले जाना है। कलेवे के बाद बालक का मुण्डन कराया जाता था जो अधिकांश हिन्दू धार्मिक कृत्यों की मुख्य आवश्यकता हैं।

तदनन्तर बालक को नहलाया जाता था और उसे कौपीन दी जाती थी। इससे बालक को स्मरण दिलाया जाता था कि अब से उसे जीवन में मर्यादा, शिष्टता तथा आत्म संयम का परित्याग नहीं करना है कौपीन फिसल न जाए इसलिए उसे एक मेखला भी पहनायी जाती थी मेखला में तीन डोरें रहती थीं। इस प्रतीक का तात्पर्य था विद्यार्थी को यह विश्वास दिलाना कि वह सर्वदा तीन से आवृत्त है। मेखला धारण के अवसर पर जो श्लोक पढ़ा जाता है उसमें बालक को बताया जाता है कि उसकी मेखला श्रद्धा की पुत्री तथा ऋषियों की भगिनी है। उसमें बालक की पवित्रता की रक्षा करने की शक्ति हैं। वह उसे सम्पूर्ण बुराईयों से रक्षित करेगी। हिन्दू शिष्टाचार में धार्मिक कृत्यों के समय शरीर के ऊपरी भाग को वस्त्र से ढँके रखने का विधान है। अतः उपनयन के अवसर पर बालक को उत्तरीय दिया जाता था। अत्यन्त प्राचीन काल में जब कातने बुनने की कला अज्ञात थी, सम्भवतः इस कार्य के लिए मृग चर्म दिया जाता था। बालक को बताया जाता था कि मृग चर्म ब्रह्मावर्चसाम का प्रतीक है। इसके प्रयोग से उसे सच्चरित्र और मनीषी के रूप में यश कमाने की प्रेरणा लेनी चाहिए। कातने बुनने की कला प्रचलित हो जाने पर उसे वस्त्र दिया जाने लगा जो परिवार में इस उत्सव से ठीक पहले इसी कार्य के लिए तैयार किया जाता था। गृहासूत्रों में इस संस्कार का ब्यौरेवार वर्णन मिलता है। इनके अध्ययन से पता चलता है कि यज्ञोपवीत उपनयन संस्कार का अंग न था। यज्ञोपवीत के स्थान पर उत्तरीय दिया जाता था या यह कहें कि यही उत्तरीय यज्ञोपवीत का पूर्वज था।

3.3.3.8. देवताओं की आराधना

उपर्युक्त क्रियाओं के अंतरगत बालक को अग्नि के सामने ले जाते थे, जो हिन्दी यूरोपियनों की आदिम देवता हैं प्रज्ज्वलित अग्नि में बालक समिधा देता था। इस अवसर पर पढ़े जाने वाले मन्त्रों में अग्नि से बालक पर कृपा दृष्टि रखने तथा उसकी बुद्धि, मेधा और बल

में वृद्धि करने की प्रार्थना की जाती थी ताकि अग्नि की शिखाओं की भाँति दिग्दिगन्त में उसके विद्या और बल की कीर्ति फैल जाए। बालक में पवित्रता की भावना और दृढ़ करने के लिए उससे भग, यम, आर्यमा और सविता जैसे वैदिक देवताओं की आराधना करायी जाती थी। सविता विद्यार्थियों का अधिष्ठाता देव है जो चोट, रोग और मृत्यु के उसकी रक्षा करता है। इस आराधना के अनन्तर आचार्य विद्यार्थी को विश्वास दिलाता था कि अब देव उसकी रक्षा करेंगे। इस अभिज्ञा से अब वह निर्भय होकर विद्याभ्यास करें।

3.3.3.9. अश्मारोहण

संस्कार की अगली क्रिया प्रतीकात्मक है। इसमें बालक को एक प्रस्तर पर खड़ा कर उपदेश किया जाता था कि वह अपने अध्ययन में उस पत्थर की भाँति अटल रहे। दृढ़ निश्चय और उद्देश्य की एकाग्रता विद्यार्थी जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है। उपनयन संस्कार में अश्मारोहण की क्रिया से बालक के मस्तिष्क में यही बात डाली जाती थी।

3.3.3.10. आचार्य की स्वीकृति

तदनन्तर विद्यार्थी को आचार्य के सम्मुख उपस्थित किया जाता था। आचार्य उससे पूछता था कि तुम किसके ब्रह्मचारी (छात्र) होए स्वाभाविक था कि विद्यार्थी उत्तर देता कि मैं आपका ही ब्रह्मचारी हूँ। आचार्य संशोधन करते हुए कहता था कि नहीं, तुम इन्द्र के ब्रह्मचारी हो, पहले अग्नि तुम्हारा आचार्य है पीछे हम (इन्द्र और अग्नि शक्तिशाली और लोकप्रिय वैदिक देव है)। जब वास्तविक रूप में आचार्य विद्यार्थी का दायाँ हाथ ग्रहण कर उसे शिष्य रूप में स्वीकृत करता तो कहता कि मैं सविता की आज्ञा से ही तुम्हें शिष्य रूप में स्वीकार कर रहा हूँ। तब विद्यार्थी के हृदय पर हाथ रखकर आचार्य कामना करता कि तुम्हारे और मेरे बीच सर्वदा प्रेम व विश्वास बना रहे यह सब यही प्रदर्शित करने के लिए होता था कि आचार्य और शिष्य का सम्बन्ध अत्यन्त ही पुनीत होता है। इसका आधार रूपया पैसा नहीं है। शिक्षक और विद्यार्थी में पूर्ण सद्भावना, सहानुभूति और हार्दिक प्रेम से ही शिक्षा में प्रगति सम्भव है।

3.3.3.11. सावित्री मन्त्र की शिक्षा और उसका महत्व

इसके बाद बालक की वेदों की पढ़ाई प्रारम्भ होती थी जिसका श्रीगणेश उसको सूर्य की आराधना का सावित्री मन्त्र (या जिसे सर्वसाधारण, छन्द के नाम पर गायत्री मन्त्र के रूप में जानते हैं) पढ़ाकर होता था । प्रत्येक ब्रह्मचारी और गृहस्थ नित्य सन्ध्या काल में इस मन्त्र का पाठ करते थे । मन्त्र इस प्रकार है- तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

ऐसे छात्रों के लिए सर्वप्रथम यही मन्त्र पढ़ाया जाता था, इसमें की गयी सूर्य की उपासना अत्यन्त उपयुक्त ही है । उदात्त और सफल छात्र जीवन के लिए बुद्धि की सबसे अधिक आवश्यकता होती थी। स्वस्थ शरीर, धन और अच्छी स्मरण शक्ति सभी वांछित हैं। पर इन सबसे महत्वपूर्ण है स्फूर्ति और प्रखर बुद्धि । इसी के बल पर मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त की है। अतः यदि सन्ध्या काल में प्रत्येक आर्य सूर्य से विनती करता है कि मुझे तीक्ष्ण बुद्धि दो और मुझे हमेशा स्फूर्ति मिलती रहे तो यह उचित ही है केवल प्रखर बुद्धि ही पर्याप्त नहीं है यदि उसमें अन्तः स्फूर्ति का सामर्थ्य नहीं। इस कार्य के लिए सूर्य की आराधना इसलिए की जाती थी क्योंकि संसार के सम्पूर्ण चराचर की प्रगति का एकमात्र अधिष्ठाता देव वही माना गया है।

3.3.3.12. दण्ड-धारण तथा उसका महत्व

गायत्री मन्त्र के जान लेने के बाद विद्यार्थी ज्ञान के पथ पर अपनी यात्रा प्रारम्भ कर देता है। अतः उसे एक दण्ड दिया जाता था क्योंकि प्राचीन काल में दण्ड यात्रा का प्रतीक समझा जाता था । दण्ड धारण के अवसर पर ब्रह्मचारी भगवान से प्रार्थना करता था कि इस दुर्गम मार्ग पर मेरी यात्रा मंगलमय हो । वेदों की रक्षा करना कर्तव्य था दण्ड ब्रह्मचारी को सतर्क प्रहरी होने के लिए उद्धोधित करता था। छात्र जब वनों में समिधा लाने जाते व अन्धकार में चलने या किसी अज्ञात नदी या सरोवर में घुसते तो दण्ड ऐसे अवसर पर ब्रह्मचारी में आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता की भावना पैदा करने में सहायता करता था। आवश्यकता पड़ने पर दण्ड का उपयोग आचार्य के पशुओं को एकत्र करने में भी होता था।

3.3.3.13. भिक्षा ग्रहण

उस काल में ब्रह्मचारियों से आशा की जाती थी कि वे भोजन की भिक्षा मधुकरी वृत्ति से माँगकर अपना भरण पोषण कर लेंगे। इसलिए उपनयन के दिन से ही इसका अभ्यास प्रारंभ हो जाता था। किन्तु प्रथम दिन तो भिक्षा रस्मी ही होती थी क्योंकि उस दिन बालक उन्हीं से भिक्षा माँगता था जो उसकी प्रार्थना नहीं ठुकरा सकते थे। अतः सर्वप्रथम वह अपनी माता के पास जाता था, फिर बहन के पास और तब अन्य संबंधियों के पास। आधुनिक काल में उपनयन संस्कारों में तो इसी रस्मी भिक्षा ने शाही जुलूस का रूप ले लिया है जो नगर और गाँव की सड़कों से घुमाया जाता है।

3.3.3.14. उपनयन संस्कार का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व

उपनयन संस्कार केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, बल्कि इसका सांस्कृतिक महत्व भी अत्यधिक है। यह संस्कार बालक को यह अनुभव कराता है कि उसका जीवन केवल भौतिक आनंद और सुख तक सीमित नहीं है, बल्कि उसे उच्च आध्यात्मिक उद्देश्यों के प्रति भी जागरूक रहना चाहिए।

उपनयन संस्कार के माध्यम से बालक को समाज और धर्म के प्रति उसके कर्तव्यों का बोध होता है। यह संस्कार बालक को अपनी संस्कृति और धार्मिक परंपराओं से जोड़ता है। इससे बालक को समाज में नैतिक और धार्मिक आचरण के महत्व का पता चलता है।

1. द्विजत्व की प्राप्ति

उपनयन संस्कार को व्यक्ति के "द्वितीय जन्म" के रूप में जाना जाता है, जो उसके आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत को दर्शाता है। इस दूसरे जन्म के माध्यम से व्यक्ति अपनी आत्मा के उच्चतर उद्देश्यों को जानने और उनका पालन करने के लिए प्रेरित होता है। द्विजत्व का अर्थ है 'दो बार जन्मा हुआ', जिसमें पहला जन्म माता-पिता द्वारा होता है और दूसरा जन्म गुरु के ज्ञान से होता है।

2. सामाजिक जिम्मेदारियाँ

उपनयन संस्कार व्यक्ति को समाज के प्रति उसकी जिम्मेदारियों का बोध कराता है। इसके माध्यम से बालक को सिखाया जाता है कि उसे समाज में अपने दायित्वों को निभाने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

3.3.3.15. समकालीन परिप्रेक्ष्य में उपनयन संस्कार

आज के युग में भी उपनयन संस्कार का महत्व बना हुआ है, हालांकि इसके स्वरूप में कुछ बदलाव आ गए हैं। प्राचीन समय में उपनयन संस्कार के बाद बालक को गुरुकुल में भेजा जाता था, जहाँ वह वेदों, उपनिषदों और अन्य शास्त्रों का अध्ययन करता था। समकालीन समय में भी कई परिवार अपने बच्चों के लिए उपनयन संस्कार का आयोजन करते हैं ताकि वे अपनी धार्मिक परंपराओं से जुड़े रहें। कई धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थान भी इस संस्कार का आयोजन करते हैं ताकि बच्चों को भारतीय परंपराओं और मूल्यों से परिचित कराया जा सके।

आज के समय में उपनयन संस्कार के बाद बच्चों को पारंपरिक गुरुकुल में भेजने की आवश्यकता नहीं होती है। आधुनिक शिक्षा पद्धति में बच्चों को विद्यालय भेजा जाता है, जहाँ वे पारंपरिक और आधुनिक शिक्षा का समावेश पाते हैं। आधुनिक गुरुकुल जैसे रामकृष्ण मिशन और आर्ट ऑफ लिविंग जैसी संस्थाएँ भी बच्चों को भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और आधुनिक शिक्षा का समन्वित पाठ्यक्रम प्रदान करती हैं। इन गुरुकुलों में उपनयन संस्कार के माध्यम से बच्चों को शिक्षा का महत्व, अनुशासन, आत्म-नियंत्रण और सेवा का भाव सिखाया जाता है। इस प्रकार उपनयन संस्कार का उद्देश्य आधुनिक युग में भी बच्चों को शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए प्रेरित करना है।

इस प्रकार उपनयन संस्कार भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण संस्कार है। इसके माध्यम से बालक को जीवन में अनुशासन, ब्रह्मचर्य और विद्या प्राप्ति की प्रेरणा दी जाती है। यह संस्कार व्यक्ति को समाज और धर्म के प्रति उसके कर्तव्यों का बोध कराता है और उसे आध्यात्मिक यात्रा पर अग्रसर करता है। समकालीन युग में उपनयन संस्कार के स्वरूप में कुछ परिवर्तन अवश्य आए हैं, लेकिन

इसके मूल उद्देश्य और महत्व में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। यह संस्कार आज भी बालक के जीवन में पवित्रता, अनुशासन और ज्ञान का संचार करता है और उसे समाज में अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाता है।

3.3.4. समावर्तन संस्कार

भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण संस्कार है जो विद्याध्ययन के पूर्ण होने पर संपन्न किया जाता है। यह संस्कार विद्यार्थी के अध्ययन जीवन के अंत और समाज में उसके प्रवेश का प्रतीक है। समावर्तन का शाब्दिक अर्थ होता है "समाप्ति की ओर लौटना" या "समाज में पुनः प्रवेश करना"। यह संस्कार जीवन के चार आश्रमों में से तीसरे आश्रम, यानी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश की तैयारी करता है। इसे 'वेदस्नान संस्कार' भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें वेद मंत्रों से स्नातक का स्नान कराया जाता है।

समावर्तन संस्कार में गुरु के मार्गदर्शन में ब्रह्मचारी को समाज के प्रति अपने दायित्वों और गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियों के लिए तैयार किया जाता है। इसके द्वारा विद्यार्थी को उसकी अध्ययन यात्रा की समाप्ति और समाज तथा परिवार के लिए उसका योगदान समझाया जाता है। इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है व्यक्ति को एक पूर्ण विकसित सामाजिक व्यक्ति बनाना, जो न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन को सुचारू रूप से चला सके बल्कि समाज के प्रति भी अपने कर्तव्यों का पालन कर सके।

3.3.4.1. समावर्तन संस्कार की विधि

समावर्तन संस्कार की प्रक्रिया में कई महत्वपूर्ण क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं, जो संस्कार को धर्मसम्मत और सामाजिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण बनाती हैं।

1. गुरु का पूजन और आशीर्वाद प्राप्त करना

समावर्तन संस्कार की शुरुआत में गुरु का पूजन किया जाता है। गुरु अपने शिष्य को आशीर्वाद देते हैं और उसे समाज में एक जिम्मेदार व्यक्ति बनने की प्रेरणा देते हैं। गुरु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का यह संस्कार एक महत्वपूर्ण कदम है, जो भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य परंपरा की महानता को दर्शाता है।

2. वेदज्ञान (वेद मंत्रों से ज्ञान)

संस्कार की दूसरी प्रमुख क्रिया 'वेदज्ञान' है। इसमें स्नातक विद्यार्थी को वेद मंत्रों से अभिमंत्रित जल से स्नान कराया जाता है। यह स्नान शुद्धिकरण और पवित्रता का प्रतीक है, जो व्यक्ति को नए जीवन की शुरुआत के लिए तैयार करता है।

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत ।

अवाधमानि जीवसे ॥ (ऋग्वेद 1.25.21)

अर्थ: "हे वरुणदेव! आप हमारे ऊपरी और मध्यम भाग से बंधनों को हटा दें ताकि हम निरोगी और स्वस्थ जीवन जी सकें।"

3. यज्ञोपवीत धारण

स्नातक को संस्कार के समय नया यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है। यज्ञोपवीत धारण करना उसके जीवन में शुद्धता, पवित्रता और ज्ञान के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। यह यज्ञोपवीत उसके गृहस्थ जीवन में धार्मिक कर्तव्यों के पालन की प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

4. अग्नि की पूजा और हवन

समावर्तन संस्कार के अंतर्गत अग्नि की स्थापना कर उसमें हवन किया जाता है। इस हवन का उद्देश्य सभी देवताओं का आह्वान कर उनके आशीर्वाद प्राप्त करना होता है, जिससे कि व्यक्ति जीवन में सुख, समृद्धि और ज्ञान प्राप्त कर सके। अग्नि के समक्ष हवन करने से व्यक्ति का मनोबल और आत्मविश्वास बढ़ता है।

5. गुरु के उपदेश और सामाजिक जीवन के दिशा-निर्देश

गुरु इस संस्कार के दौरान शिष्य को विभिन्न दिशा-निर्देश देते हैं, जिनका पालन करके वह अपने सामाजिक और पारिवारिक जीवन में सफल हो सकता है। गुरु द्वारा दिए गए उपदेशों में सत्य बोलना, धर्म का पालन करना, माता-पिता और गुरु का सम्मान करना, और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना जैसे मूल्यों का उल्लेख किया जाता है।

मम व्रते ते हृदयं दधामि ।

मम चित्तमनुचितं ते अस्तु मम वाचमेकमना जुषश्च बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥

अर्थ: "मैं वेदव्रत और विद्याव्रत को तुम्हारे हृदय में स्थापित कर रहा हूँ। तुम्हारा मन मेरे मन का अनुसरण करे और मेरी वाणी को एकाग्र होकर ग्रहण करो।"

3.3.4.2. समाज में वापसी

गुरु से आज्ञा प्राप्त करने के बाद स्नातक अपने परिवार और समाज में लौटता है। परिवारजन उसका स्वागत करते हैं और उसके गृहस्थ जीवन की शुरुआत के लिए तैयार करते हैं। इसे 'स्नातक का गमन' भी कहा जाता है, जो व्यक्ति को सामाजिक जीवन के लिए प्रस्तुत करता है।

3.3.4.3. समावर्तन संस्कार का महत्व

समावर्तन संस्कार केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से विद्यार्थी को समाज में अपनी भूमिका को समझने और अपनी जिम्मेदारियों का पालन करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इसका महत्व निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है:

1. शिक्षा की पूर्णता का प्रतीक

समावर्तन संस्कार शिक्षा की पूर्णता का प्रतीक है। यह संकेत करता है कि विद्यार्थी ने गुरु से शिक्षा प्राप्त कर ली है और अब वह अपने ज्ञान का उपयोग समाज और परिवार की भलाई के लिए कर सकता है।

2. गृहस्थ जीवन की शुरुआत

यह संस्कार विद्यार्थी को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के लिए तैयार करता है। शिक्षा समाप्त होने के बाद गृहस्थ आश्रम ही वह स्थान है, जहाँ व्यक्ति अपने जीवन के प्रमुख दायित्वों को निभाता है। इसमें परिवार की देखभाल, समाज में योगदान और अपने धार्मिक कर्तव्यों का पालन शामिल होता है।

3. सामाजिक जिम्मेदारी का बोध

समावर्तन संस्कार के माध्यम से व्यक्ति को समाज के प्रति अपने दायित्वों का बोध होता है। यह संस्कार उसे एक जिम्मेदार नागरिक बनने की प्रेरणा देता है, जो समाज की उन्नति में अपना योगदान दे सके।

4. गुरु-शिष्य परंपरा की महानता

इस संस्कार में गुरु-शिष्य संबंध का महत्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। गुरु के प्रति कृतज्ञता, उनके मार्गदर्शन में जीवन के अगले चरण की तैयारी, और समाज में लौटकर अपने कर्तव्यों का पालन करना – यह सब गुरु-शिष्य परंपरा की महानता को दर्शाते हैं। समावर्तन संस्कार के महत्व और उसकी विधियों का उल्लेख शास्त्रों में भी मिलता है। याज्ञवल्क्य स्मृति में इस संस्कार का विस्तृत वर्णन है:

आचार्याद् अभ्यनुज्ञातो गृही भावति धर्मवित्।

समावृत्तो गृही भूत्वा पुत्रैषणा विवर्धयेत्॥ (याज्ञवल्क्य स्मृति 1.51)

अर्थ: "गुरु से विदा प्राप्त करने के बाद व्यक्ति गृहस्थ बनता है और धर्म का पालन करता है। समावर्तन संस्कार के बाद व्यक्ति गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर पुत्र एवं परिवार की देखभाल करता है।"

3.3.4.4. समावर्तन संस्कार में गृहस्थ जीवन की तैयारी

समावर्तन संस्कार में विद्यार्थी को गृहस्थ जीवन के लिए तैयार किया जाता है। इसमें उसे विवाह करने की अनुमति मिलती है और समाज में रहने के लिए आवश्यक सभी गुणों का विकास होता है। गुरु द्वारा दिए गए उपदेशों में सत्य, धर्म, त्याग, और समर्पण जैसे गुणों का महत्व बताया जाता है। इसके साथ ही व्यक्ति को यह भी सिखाया जाता है कि उसे अपने ज्ञान का उपयोग समाज की भलाई के लिए करना है, न कि केवल व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए।

3.3.4.5. समावर्तन संस्कार का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में महत्व

आधुनिक समय में समावर्तन संस्कार का महत्व यद्यपि पुरानी परंपराओं से थोड़ा भिन्न हो सकता है, फिर भी इसके मूल मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं। आज के समय में यह संस्कार व्यक्ति को जीवन के प्रति जिम्मेदारी, अपने कर्तव्यों का बोध, और समाज के प्रति दायित्वों का पालन करने की प्रेरणा देता है। शिक्षा की पूर्णता के बाद एक स्नातक का समाज में योगदान आवश्यक है, और यह संस्कार उसे उसी दिशा में प्रेरित करता है।

3.3.4.6. समावर्तन संस्कार के उपरांत गृहस्थ जीवन में प्रवेश

समावर्तन संस्कार संपन्न होने के बाद व्यक्ति गृहस्थ जीवन में प्रवेश के लिए तैयार हो जाता है। यह प्रवेश केवल पारिवारिक दायित्वों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें समाज के प्रति सेवा और धर्म के कर्तव्यों का भी समावेश होता है। गृहस्थ जीवन को भारतीय समाज में महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि इसी अवस्था में व्यक्ति अपना सर्वोच्च योगदान समाज और परिवार के कल्याण के लिए दे सकता है।

3.3.4.7. गृहस्थ आश्रम का महत्व

गृहस्थ आश्रम चार आश्रमों में से सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। यह आश्रम विद्यार्थी जीवन से प्राप्त ज्ञान का समाज और परिवार के हित में उपयोग करने का अवसर प्रदान करता है। गृहस्थ आश्रम न केवल भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करता है, बल्कि समाज के हर व्यक्ति के प्रति कर्तव्यों और धर्म के पालन का दायित्व भी गृहस्थ आश्रम का हिस्सा है। यजुर्वेद में गृहस्थ जीवन का वर्णन करते हुए कहा गया है:

तस्माद् गृहमेधि भूतैषाम् अपत्यैषाणाय निवेष्टाय लोकाय च वेदाय च यज्याय च। (यजुर्वेद

6.4.17)

अर्थ: "गृहस्थ आश्रम का उद्देश्य संतान की प्राप्ति, निवास स्थान का स्थापन, लोक के कल्याण, वेद के अध्ययन और यज्ञ के संपादन के लिए होता है।"

3.3.4.8. सामाजिक और पारिवारिक दायित्व

समावर्तन संस्कार के बाद व्यक्ति को पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों का पालन करना होता है। इसके अंतर्गत परिवार का भरण-पोषण, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, माता-पिता और बुजुर्गों की देखभाल और समाज के प्रति सेवा करना शामिल है। गृहस्थ जीवन में आने के बाद व्यक्ति को निम्नलिखित बातों का पालन करने का निर्देश दिया जाता है:

1. धर्म का पालन

गृहस्थ आश्रम में व्यक्ति को धर्म का पालन करना होता है। यह धर्म केवल पूजा-पाठ तक सीमित नहीं है, बल्कि सत्य, अहिंसा, दान, सेवा, और परोपकार जैसे गुणों को जीवन में अपनाने का नाम है। यह संस्कार व्यक्ति को एक ऐसा जिम्मेदार नागरिक बनाता है जो अपने समाज के प्रति भी अपना दायित्व निभाता है।

2. यज्ञ और हवन का आयोजन

गृहस्थ व्यक्ति के लिए यज्ञ और हवन का आयोजन आवश्यक माना गया है। इसे वैदिक कर्मकांड का हिस्सा मानकर व्यक्ति को अपनी आत्मा और मन की शुद्धि के लिए यज्ञ का आयोजन करना चाहिए। यज्ञ का महत्व न केवल आत्मिक उन्नति के लिए होता है बल्कि समाज और प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने के लिए भी यह आवश्यक है।

3. अतिथि सेवा

भारतीय परंपरा में अतिथि सेवा को सर्वोपरि माना गया है। गृहस्थ जीवन में अतिथि को देवता का रूप मानकर उसका स्वागत करना और उसकी सेवा करना अत्यंत पुण्यदायक माना गया है। इसे "अतिथि देवो भवः" के सिद्धांत से भी जाना जाता है। यह संस्कार व्यक्ति में सेवा का भाव उत्पन्न करता है और उसे दूसरों की सहायता करने के लिए प्रेरित करता है।

4. संतानों की देखभाल और शिक्षा

गृहस्थ जीवन का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू संतानों की देखभाल और उनकी उचित शिक्षा-दीक्षा है। समावर्तन संस्कार के बाद गृहस्थ व्यक्ति अपने बच्चों को अच्छे संस्कार, शिक्षा और ज्ञान देने का प्रयास करता है ताकि वे भी समाज के अच्छे नागरिक बन सकें। संतानों की देखभाल और उनका मार्गदर्शन करने से न केवल परिवार का भविष्य उज्ज्वल होता है बल्कि समाज का विकास भी सुनिश्चित होता है।

3.3.4.9. समावर्तन संस्कार में उपदेशित मूल्य

गुरु द्वारा समावर्तन संस्कार के समय स्नातक को दिए गए उपदेश न केवल उसके व्यक्तिगत जीवन को सुचारू बनाने के लिए होते हैं बल्कि समाज में उसकी भूमिका को भी परिभाषित करते हैं। इन उपदेशों में निम्नलिखित मूल्यों का समावेश होता है:

1. सत्य और धर्म का पालन

गुरु शिष्य को सत्य का पालन करने और धर्म का अनुसरण करने की शिक्षा देते हैं। सत्य और धर्म भारतीय संस्कृति के दो मुख्य स्तंभ हैं, जो व्यक्ति को जीवन में सच्चाई और ईमानदारी से जीने का मार्ग दिखाते हैं। धर्म का पालन करना व्यक्ति को आत्मिक और मानसिक शांति की ओर ले जाता है।

2. कर्तव्यों का निर्वहन

समावर्तन संस्कार व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करने की शिक्षा देता है। यह कर्तव्य व्यक्तिगत, पारिवारिक, और सामाजिक होते हैं। इनमें बच्चों की देखभाल, पत्नी का सम्मान, माता-पिता और गुरु का आदर, और समाज के प्रति दायित्व का पालन शामिल है।

3. आत्म-संयम और समर्पण

समावर्तन संस्कार व्यक्ति को आत्म-संयम और समर्पण की भावना को विकसित करने के लिए प्रेरित करता है। आत्म-संयम से व्यक्ति अपने मन और इच्छाओं पर नियंत्रण

रख सकता है और समर्पण उसे अपने कर्तव्यों के प्रति प्रतिबद्ध बनाता है। यह गुण व्यक्ति को एक आदर्श गृहस्थ बनने की दिशा में प्रेरित करता है।

3.3.4.10. समावर्तन संस्कार की आधुनिक प्रासंगिकता

आधुनिक युग में भी समावर्तन संस्कार का महत्व बना हुआ है। यद्यपि सामाजिक और पारिवारिक संरचनाएं बदल चुकी हैं, लेकिन इसके मूल्यों का आज भी अत्यधिक महत्व है। शिक्षा समाप्त होने के बाद विद्यार्थी को समाज में योगदान करने के लिए प्रेरित करना और उसे जिम्मेदार नागरिक बनने की दिशा में अग्रसर करना समावर्तन संस्कार का मुख्य उद्देश्य है।

3.3.4.11. आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समावर्तन संस्कार का समावेश

आज के समय में औपचारिक समावर्तन संस्कार भले ही नहीं किया जाता, लेकिन उसके तत्वों का शिक्षा प्रणाली में समावेश आवश्यक है। विद्यार्थियों को उनकी शिक्षा के अंतिम चरण में सामाजिक दायित्वों और नैतिक मूल्यों का महत्व सिखाना आवश्यक है, जिससे वे समाज के जिम्मेदार सदस्य बन सकें। नैतिक शिक्षा, सामाजिक सेवा, और जीवन मूल्यों का समावेश समावर्तन संस्कार की तरह ही विद्यार्थियों को समाज में योगदान करने के लिए तैयार करता है।

3.3.4.12. पारिवारिक जिम्मेदारी और सामाजिक योगदान

समावर्तन संस्कार का संदेश केवल पारिवारिक जिम्मेदारियों तक सीमित नहीं है। इसका उद्देश्य व्यक्ति को एक जागरूक और दायित्वपूर्ण नागरिक बनाना है, जो अपने परिवार, समाज और देश के कल्याण में अपना योगदान दे सके। समावर्तन संस्कार हमें यह याद दिलाता है कि शिक्षा का अंतिम उद्देश्य समाज की सेवा और जन-कल्याण है।

इस प्रकार समावर्तन संस्कार केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं है बल्कि यह व्यक्ति को समाज और परिवार के प्रति उसके दायित्वों की याद दिलाने और उसे उनके पालन के लिए प्रेरित करने का माध्यम है। यह संस्कार शिक्षा की पूर्णता, सामाजिक जिम्मेदारी, पारिवारिक कर्तव्य, और धर्म का पालन करने की प्रेरणा देता है। गुरु के मार्गदर्शन में संपन्न

समावर्तन संस्कार व्यक्ति को न केवल गृहस्थ जीवन के लिए तैयार करता है बल्कि उसे समाज का एक जिम्मेदार और योग्य सदस्य बनने के लिए भी प्रेरित करता है। यह संस्कार समाज में व्यक्ति की भूमिका को परिभाषित करता है और उसे जीवन के अगले चरण की ओर अग्रसर करता है। समावर्तन संस्कार के उपदेश आज भी हमारे जीवन में प्रासंगिक हैं, जो हमें अपने कर्तव्यों का पालन करने और समाज के प्रति योगदान देने के लिए प्रेरित करते हैं।

3.4. दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक महत्व:

शैक्षिक संस्कारों का दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी विशेष महत्व है। इन संस्कारों में निहित मूल्यों, सिद्धांतों और अभ्यासों का गहरा दार्शनिक आधार है, जो व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पहलुओं को गहन रूप से प्रभावित करता है। इन संस्कारों का उद्देश्य केवल शैक्षिक विकास नहीं बल्कि व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास के माध्यम से जीवन को अर्थपूर्ण बनाना है।

3.4.1. दार्शनिक महत्व:

- ❖ आध्यात्मिक विकास: शैक्षिक संस्कारों में व्यक्तित्व के आध्यात्मिक विकास पर बल दिया गया है। उदाहरण के लिए, उपनयन संस्कार के माध्यम से व्यक्ति को आत्मा, परमात्मा, और सृष्टि के संबंध का बोध कराया जाता है। यह व्यक्ति को अपनी पहचान से आगे जाकर आत्मा की पहचान और जीवन के उच्चतर उद्देश्य को समझने में सहायता करता है।
- ❖ संपूर्णता का सिद्धांत: शैक्षिक संस्कारों का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को संपूर्ण बनाना है। मेधाजनन, विद्यारंभ, उपनयन, और समावर्तन संस्कार व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं - शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक - को संबोधित करते हैं। भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना नहीं, बल्कि व्यक्ति के संपूर्ण विकास में सहायक होना है। यह व्यक्ति को समाज, संस्कृति, और परमात्मा के साथ जुड़ने में सहायता करता है।
- ❖ गुरु-शिष्य परंपरा: शैक्षिक संस्कारों में गुरु-शिष्य परंपरा का विशेष महत्व है। यह परंपरा व्यक्ति के भीतर ज्ञान के प्रति आदर और अनुशासन की भावना उत्पन्न

करती है। शिक्षा के इस दार्शनिक दृष्टिकोण में गुरु को जीवन के मार्गदर्शक के रूप में देखा जाता है, जो शिष्य के मानसिक और आध्यात्मिक विकास में सहायक होते हैं।

- ❖ कर्तव्य और धर्म: शैक्षिक संस्कार व्यक्ति को अपने कर्तव्यों और धर्म का बोध कराते हैं। ये संस्कार शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को न केवल आत्मविकास बल्कि समाज और मानवता की सेवा के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण बनाते हैं। इस प्रकार, शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत लाभ नहीं बल्कि समाज के प्रति योगदान देना भी है।

3.4.2. मनोवैज्ञानिक महत्व:

- ❖ व्यक्तित्व निर्माण: शैक्षिक संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक विकास और व्यक्तित्व निर्माण में सहायता करना है। मेधाजनन संस्कार व्यक्ति की मानसिक शक्ति, बुद्धि, और एकाग्रता को बढ़ाने में सहायक होता है। इससे व्यक्ति में आत्मविश्वास और मानसिक संतुलन का विकास होता है, जो शैक्षिक जीवन में सफलता के लिए आवश्यक है।
- ❖ आत्मसंयम और अनुशासन: शैक्षिक संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति को आत्मसंयम और अनुशासन की शिक्षा मिलती है। उपनयन संस्कार और समावर्तन संस्कार व्यक्ति के जीवन में अनुशासन, संयम, और धैर्य के महत्व को स्थापित करते हैं। ये संस्कार व्यक्ति को आत्मनियंत्रण और अनुशासन के माध्यम से मानसिक शांति और संतुलन बनाए रखने में सहायता करते हैं।
- ❖ सकारात्मक सोच और मानसिक शक्ति: विद्यारंभ और मेधाजनन संस्कार व्यक्ति में मानसिक शक्ति और सकारात्मक सोच को प्रोत्साहित करते हैं। शिक्षा का उद्देश्य न केवल बौद्धिक विकास बल्कि मानसिक संतुलन बनाए रखना भी है। ध्यान और प्रार्थना के माध्यम से व्यक्ति के मन में सकारात्मकता और शांति का संचार होता है, जिससे वह चुनौतियों का सामना आत्मविश्वास और साहस के साथ कर सकता है।
- ❖ समाजीकरण: शैक्षिक संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति को सामाजिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने की शिक्षा दी जाती है। समावर्तन संस्कार व्यक्ति को समाज के प्रति जिम्मेदारी का बोध कराता है और उसे समाज का सक्रिय सदस्य

बनने के लिए प्रेरित करता है। इस संस्कार के माध्यम से व्यक्ति में सामाजिकता और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है।

3.5. शैक्षिक संस्कारों का आधुनिक शिक्षा में व्यवहारिक अनुप्रयोग:

- ❖ **अनुशासन और आत्मनियंत्रण:** मेधाजनन संस्कार, जिसमें छात्रों को ज्ञान प्राप्त करने के लिए मानसिक रूप से तैयार किया जाता है, आज की शिक्षा में अनुशासन का आधार बन सकता है। छात्रों के बीच आत्मनियंत्रण और समर्पण की भावना विकसित करने के लिए योग और ध्यान जैसी प्रथाओं को शिक्षा का हिस्सा बनाया जा सकता है। ये प्रथाएं विद्यार्थियों के मानसिक संतुलन, एकाग्रता और मानसिक शक्ति में वृद्धि करती हैं, जो उन्हें शैक्षणिक जीवन में बेहतर प्रदर्शन करने में सहायक होती हैं।
- ❖ **सामाजिक मूल्य और नैतिक शिक्षा:** विद्यारंभ संस्कार, जो ज्ञानार्जन की शुरुआत का प्रतीक है, आधुनिक शिक्षा में विद्यार्थियों को उनके सामाजिक और नैतिक दायित्वों के प्रति सजग बना सकता है। इससे विद्यार्थियों को प्रारंभिक अवस्था से ही यह सिखाया जा सकता है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल निजी प्रगति नहीं बल्कि समाज की सेवा करना भी है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्कूलों में नैतिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों का समावेश किया जा सकता है, जिसमें सामाजिक और नैतिक मुद्दों पर चर्चा हो और विद्यार्थियों में सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न हो।
- ❖ **चरित्र निर्माण और नेतृत्व कौशल:** उपनयन संस्कार के माध्यम से विद्यार्थियों को समाज और संस्कृति के प्रति जिम्मेदारी का बोध कराया जाता था। इसका आधुनिक शिक्षा में अनुप्रयोग छात्रों में नेतृत्व कौशल और चरित्र निर्माण के माध्यम से किया जा सकता है। विद्यालयों में विभिन्न गतिविधियाँ जैसे छात्र परिषद, क्लब और समितियाँ विद्यार्थियों को नेतृत्व करने और निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती हैं। इससे उनमें आत्मविश्वास, जिम्मेदारी और समाज के प्रति संवेदनशीलता का विकास होता है।

- ❖ **जीवन में जिम्मेदारी और आत्मनिर्भरता:** समावर्तन संस्कार, जो विद्याध्यन के बाद सामाजिक जीवन में प्रवेश करने का प्रतीक है, विद्यार्थियों को यह सिखाता है कि शिक्षा का उद्देश्य न केवल ज्ञानार्जन बल्कि समाज में सार्थक योगदान देना भी है। इसका आधुनिक संदर्भ में अनुप्रयोग विद्यार्थियों को आत्मनिर्भरता और जिम्मेदारी की भावना सिखाने में किया जा सकता है। जीवन कौशल के कार्यक्रमों, सामुदायिक सेवा और स्वैच्छिक कार्यों के माध्यम से छात्रों को यह समझाया जा सकता है कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य केवल अच्छे अंक प्राप्त करना नहीं, बल्कि समाज में सकारात्मक योगदान देना भी है।
- ❖ **शिक्षक-विद्यार्थी संबंध:** शैक्षिक संस्कारों में गुरु-शिष्य परंपरा का विशेष महत्व है। आधुनिक शिक्षा में भी शिक्षक-विद्यार्थी संबंधों को सुधारने की आवश्यकता है। विद्यार्थियों को केवल पाठ्यक्रम तक सीमित न रखते हुए, शिक्षक को एक मार्गदर्शक, सलाहकार और प्रेरणास्त्रोत के रूप में देखा जाना चाहिए। शिक्षकों और छात्रों के बीच इस प्रकार का संबंध शैक्षिक अनुभव को गहरा बनाता है, और शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन से अधिक व्यक्तित्व निर्माण का माध्यम बनाता है।
- ❖ **व्यवहारिक शिक्षा और नैतिक व्यवहार:** आधुनिक युग में शिक्षा केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। शैक्षिक संस्कारों का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यवहारिक और नैतिक शिक्षा प्रदान करना था। इसी प्रकार आधुनिक शिक्षा में, विद्यार्थियों को जीवन से संबंधित समस्याओं का समाधान करने के लिए तैयार किया जाना चाहिए। इसके लिए परियोजना-आधारित शिक्षा, समस्या-समाधान के सत्र और नैतिक विवादों पर चर्चा के माध्यम से विद्यार्थियों को व्यवहारिक रूप से मजबूत किया जा सकता है।

इस शैक्षिक संस्कारों की उपयोगिता केवल प्राचीन काल तक ही सीमित नहीं है; उनका महत्व आज भी उतना ही प्रासंगिक है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक संस्कारों का समावेश करके विद्यार्थियों को केवल शैक्षणिक दृष्टिकोण से नहीं बल्कि नैतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी मजबूत किया जा सकता है। ये संस्कार विद्यार्थियों को जीवन में

आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए मानसिक, नैतिक और शारीरिक रूप से तैयार करते हैं।

शैक्षिक संस्कार, जैसे मेधाजनन, विद्यारंभ, उपनयन, और समावर्तन, विद्यार्थियों को एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। इनका आधुनिक शिक्षा में उपयोग करके विद्यार्थियों को एक संपूर्ण, मूल्य-आधारित शिक्षा दी जा सकती है, जो उन्हें समाज में एक सार्थक और सकारात्मक योगदान देने वाला नागरिक बनने में सहायता करती है। शिक्षा का उद्देश्य केवल विद्या प्राप्ति तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि उसे विद्यार्थियों को संपूर्णता में तैयार करना चाहिए ताकि वे न केवल स्वयं का विकास कर सकें, बल्कि समाज और मानवता के उत्थान में भी योगदान दे सकें।

ⁱ मनुस्मृति, विद्या की पवित्रता और संस्कार का वर्णन (अध्याय 2, श्लोक 5)।

ⁱⁱ बौधायन गृह्यसूत्र, अक्षरारंभ की विधि का वर्णन (अध्याय 3, श्लोक 14)।

ⁱⁱⁱ ऋग्वेद, शिक्षा के महत्व और गुरु के स्थान का उल्लेख (मंडल 10, सूक्त 71)।

^{iv} आचार्य चाणक्य, चाणक्य नीति, शिक्षा के प्रति आदरभाव का महत्व (अध्याय 1)।

अध्याय 4:

शैक्षिक संस्कारों के परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति का विश्लेषण

- 4.1. गुरुकुल शिक्षा में संस्कारों की भूमिका
- 4.2. छात्रों के नैतिक और व्यक्तित्व विकास में गुरुकुल का योगदान
- 4.3. गुरुकुलों में संस्कारों के विकास हेतु प्रणालियाँ
- 4.4. संस्कारों के सन्दर्भ में गुरुकुल और आधुनिक शिक्षा की तुलना
- 4.5. भविष्य में संस्कार आधारित शिक्षा की संभावनाएं

अध्याय 4

शैक्षिक संस्कारों के परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा पद्धति का विश्लेषण

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का उद्देश्य केवल शैक्षणिक ज्ञान प्रदान करना नहीं था, बल्कि विद्यार्थियों को शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक रूप से उन्नत करना था। इसमें संस्कारों का महत्वपूर्ण स्थान था, जैसे मेधाजानन, विद्यारंभ, उपनयन, और समावर्तन। इन संस्कारों के माध्यम से व्यक्तित्व का समग्र विकास किया जाता था और विद्यार्थी को जीवन के विभिन्न आयामों के लिए तैयार किया जाता था। इस अध्याय का उद्देश्य गुरुकुल पद्धति में शामिल शैक्षिक संस्कारों का विश्लेषण करना और यह समझना है कि किस प्रकार इन संस्कारों ने विद्यार्थियों के जीवन में आदर्श मूल्यों और नैतिकता की नींव रखी। इन संस्कारों के माध्यम से, विद्यार्थी न केवल शिक्षा प्राप्त करते थे, बल्कि अपने भीतर आत्म-निर्भरता, अनुशासन, और सेवा भावना को भी विकसित करते थे। इस अध्याय में इन सभी संस्कारों की परिभाषा, उनका महत्व, और वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उनकी प्रासंगिकता पर विचार किया जाएगा।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शैक्षिक संस्कार न केवल व्यक्ति के बौद्धिक विकास को प्रोत्साहित करते थे, बल्कि उसमें आत्मानुशासन और समाज के प्रति दायित्व की भावना भी विकसित करते थे। यह अध्याय इन संस्कारों की सामाजिक और नैतिक भूमिका का भी विश्लेषण करेगा, ताकि यह समझा जा सके कि आज की शिक्षा प्रणाली में इनका किस प्रकार समावेश किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, गुरुकुल में संस्कार-आधारित शिक्षा का उद्देश्य और उसके प्रभाव पर भी चर्चा की जाएगी, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि किस प्रकार यह पद्धति व्यक्ति के समग्र विकास में सहायक रही है।

4.1. गुरुकुल शिक्षा में संस्कारों की भूमिका

गुरुकुल शिक्षा पद्धति भारतीय शिक्षा की पुरातन विधि थी जिसमें शिक्षा का मुख्य उद्देश्य केवल शास्त्रों का अध्ययन नहीं बल्कि जीवन के सभी पक्षों का समग्र विकास था।

गुरुकुल में संस्कारों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण था, और शिक्षा के दौरान विभिन्न संस्कार विद्यार्थियों के जीवन में आध्यात्मिक, नैतिक, और सामाजिक गुणों के संचार हेतु किए जाते थे।

संस्कारों में विद्यारंभ, उपनयन, समावर्तन जैसे संस्कार विद्यार्थियों के मानसिक और शारीरिक विकास को सुनिश्चित करते थे। संस्कारों का उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं था, बल्कि विद्यार्थियों के भीतर अनुशासन, आत्म-संयम, और समाज के प्रति कर्तव्य का विकास करना भी था। गुरुकुल शिक्षा में इन संस्कारों के माध्यम से विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण होता था जो उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में सफल और नैतिक बनाता था। उदाहरण के लिए, उपनयन संस्कार के माध्यम से विद्यार्थियों को 'द्विज' (दूसरा जन्म) माना जाता था, जिससे यह बोध होता था कि उन्होंने अब अपने जीवन में उच्चतर उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रण लिया है।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में संस्कारों की भूमिका न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक पहलुओं को बल देने वाली थी, बल्कि ये छात्रों के समग्र विकास का साधन भी थीं। संस्कार विद्यार्थियों को एक समृद्ध व्यक्तित्व प्रदान करने के लिए बनाए गए थे। ये संस्कार धार्मिक कर्मकांड मात्र नहीं थे, बल्कि विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास के वाहक थे। वेदों, उपनिषदों, धर्मसूत्रों और स्मृतियों में संस्कारों का विशेष उल्लेख मिलता है। इन संस्कारों के माध्यम से विद्यार्थियों में जीवन मूल्यों का संचार किया जाता था, जिससे वे समाज के उत्कृष्ट नागरिक बन सकें।

गुरुकुल शिक्षा में संस्कार शैक्षिक जीवन के साथ-साथ नैतिक और आध्यात्मिक जीवन के भी आधार थे। ऋग्वेद में शिक्षा की महत्ता को इस प्रकार वर्णित किया गया है:

"तं शिक्षयन्नुपचरेत् पितेव पुत्रम्" (ऋग्वेद 10.32.7)

इसका अर्थ है कि शिक्षक को अपने शिष्य को उसी प्रकार शिक्षा देनी चाहिए जैसे पिता अपने पुत्र की देखभाल करता है। यह श्लोक इस बात की ओर इंगित करता है कि शिक्षक और शिष्य के बीच का संबंध मात्र ज्ञान का आदान-प्रदान नहीं है, बल्कि यह एक गहरा आत्मिक संबंध है जो संस्कारों के माध्यम से प्रकट होता है।

संस्कारों की शुरुआत शिष्य के जीवन में उपनयन संस्कार से होती है। यह संस्कार शिष्य के द्वितीय जन्म का प्रतीक है, और इसे विद्यार्थियों को आत्मज्ञान की ओर ले जाने के प्रथम कदम के रूप में माना जाता था। उपनयन संस्कार के बाद शिष्य को गुरु के संरक्षण में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता था। इसके दौरान विद्यार्थी को यज्ञोपवीत धारण कराया जाता था और उसे वेदाध्ययन के लिए तैयार किया जाता था। तैत्तिरीयोपनिषद् में उल्लेख है:

"सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः "(तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11.1)

इस उपदेश का उद्देश्य विद्यार्थियों के भीतर सत्य, धर्म, और स्वाध्याय के प्रति निष्ठा का विकास करना था। इस प्रकार उपनयन संस्कार शिष्य को शिक्षा के पथ पर आरंभ करता था और जीवन में नैतिक मूल्यों की नींव रखता था।

गुरुकुल शिक्षा में संस्कारों का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों में मानसिक और शारीरिक अनुशासन का विकास करना था। उदाहरण के लिए, वेदारंभ संस्कार एक महत्वपूर्ण संस्कार था, जिसमें विद्यार्थी को शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया में प्रवेश कराया जाता था। इस संस्कार का उद्देश्य शिष्य के मन में अध्ययन के प्रति आदर और ज्ञान प्राप्ति की उत्सुकता उत्पन्न करना था। मनुस्मृति में शिक्षा के महत्व और शिक्षार्थियों के कर्तव्यों का उल्लेख है:

"विद्या विनययुक्ते च, पूज्यते न तु धनैरपि"(मनुस्मृति 2.159)

इसका अर्थ है कि विनययुक्त विद्या सबसे अधिक प्रशंसनीय है, और यह धन से अधिक महत्वपूर्ण है। यह श्लोक इस बात पर जोर देता है कि शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य व्यक्ति में विनय, संयम, और मानवीय गुणों का विकास करना है।

गुरुकुल शिक्षा में समावर्तन संस्कार का भी विशेष महत्व था, जो शैक्षिक जीवन के अंतिम चरण का प्रतीक था। इस संस्कार के माध्यम से विद्यार्थी को औपचारिक रूप से शिक्षा पूर्ण करने के बाद गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की अनुमति दी जाती थी। अश्वलायन गृह्यसूत्र में इस संस्कार का विस्तृत वर्णन मिलता है, जिसमें गुरुदक्षिणा देकर और गुरु के आशीर्वाद से विद्यार्थी अपने घर वापस जाता था। समावर्तन संस्कार न केवल शिक्षा की

पूर्णता का प्रतीक था बल्कि यह विद्यार्थियों को समाज में अपनी जिम्मेदारी समझाने का भी संकेत था।

संस्कारों के माध्यम से विद्यार्थियों को आत्मसंयम, अनुशासन, और सेवा भावना का पाठ पढ़ाया जाता था। गुरुकुलों में शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं थी; यह जीवन के प्रत्येक पहलू से जुड़ी थी। संस्कारों का उद्देश्य विद्यार्थियों को उस दिशा में प्रेरित करना था, जहां वे समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझ सकें और अपने कर्तव्यों का पालन कर सकें। गुरुकुल शिक्षा में संस्कारों के माध्यम से विद्यार्थियों में आत्मिक और सामाजिक गुणों का विकास होता था, जो उन्हें एक उत्कृष्ट व्यक्ति बनाता था।

डॉ. एस. राधाकृष्णन की पुस्तक 'Indian Philosophy' में उल्लेख किया गया है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में संस्कारों का महत्व इस प्रकार था कि उन्होंने शिष्य को न केवल शास्त्रों का ज्ञान कराया बल्कि उन्हें जीवन के उच्चतर मूल्यों से भी परिचित कराया। कपिल कपूर की 'भारतीय ज्ञान परंपरा' में भी यह वर्णन है कि गुरुकुल शिक्षा पद्धति का मूल उद्देश्य केवल अकादमिक विकास नहीं था, बल्कि विद्यार्थियों के भीतर एक समग्र और नैतिक दृष्टिकोण का विकास करना था। इन संस्कारों के माध्यम से विद्यार्थियों में जीवन के प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण उत्पन्न होता था, जो उन्हें जीवन की विभिन्न चुनौतियों का सामना करने में सक्षम बनाता था।

गुरुकुल शिक्षा में संस्कारों का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह था कि ये संस्कार विद्यार्थियों के जीवन को अनुशासन, सेवा, और उच्चतर चेतना के मार्ग पर ले जाते थे। उदाहरण के लिए, अन्नप्राशन संस्कार में विद्यार्थियों को यज्ञोपवीत धारण कर अध्ययन की शुरुआत करने से पहले स्वस्थ, पवित्र, और पौष्टिक भोजन का महत्व बताया जाता था। यह संस्कार इस बात की प्रतीक था कि शिक्षा की प्रक्रिया को शारीरिक और मानसिक रूप से तैयार होना चाहिए।

संक्षेप में, गुरुकुल शिक्षा में संस्कार विद्यार्थियों के जीवन का आधार थे। इन संस्कारों के माध्यम से न केवल शारीरिक और मानसिक अनुशासन का विकास होता था, बल्कि आत्मज्ञान और सामाजिक जिम्मेदारी का भी संचार होता था। संस्कारों ने विद्यार्थियों को इस प्रकार तैयार किया कि वे न केवल विद्वान बने बल्कि समाज के लिए जिम्मेदार नागरिक भी

बन सके। इन संस्कारों के माध्यम से शिक्षा की परिभाषा एक संपूर्ण जीवन प्रक्रिया बन गई थी, जो आधुनिक शिक्षा प्रणाली में कम देखने को मिलती है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के ये संस्कार आज भी शिक्षा के आदर्श और जीवन के मूल्यों को समझने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

गुरुकुल शिक्षा में संस्कारों की भूमिका आधुनिक शिक्षा प्रणाली के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ प्रस्तुत करती है। आज के समय में, जहाँ शिक्षा का मुख्य उद्देश्य अकादमिक प्रदर्शन और करियर निर्माण तक सीमित हो गया है, गुरुकुल पद्धति के संस्कार विद्यार्थियों में नैतिकता और चरित्र निर्माण की ओर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में संस्कारों के महत्व को पुनःस्थापित करने से विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों का विकास हो सकता है, जो उन्हें न केवल अच्छे पेशेवर बल्कि अच्छे नागरिक भी बना सकता है।

गुरुकुल पद्धति का मूलमंत्र यह था कि शिक्षा के माध्यम से केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं बल्कि एक ऐसे व्यक्ति का निर्माण हो जो समाज के लिए उपयोगी हो। संस्कारों ने विद्यार्थी को जीवन के हर पक्ष से जोड़ा। श्रीमद्भगवद्गीता में शिक्षा का उद्देश्य बताया गया है:

"सर्वं ज्ञानं मयि प्रतिष्ठितं, सर्वं कर्म मयि प्रविष्टम्।" (भगवद्गीता 4.33)

इस श्लोक का अर्थ है कि सभी प्रकार का ज्ञान ईश्वर में प्रतिष्ठित है और सभी प्रकार का कर्म उसी में प्रविष्ट है। यह शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था कि विद्यार्थी अपने कर्म को समझे और उसके प्रति जिम्मेदार बने।

गुरुकुलों में नैतिक और व्यक्तित्व विकास का प्रमुख स्रोत इन संस्कारों के माध्यम से होने वाला जीवन-दर्शन था। संस्कार विद्यार्थियों के मन में उच्चतर मूल्यों का संचार करते थे और उन्हें अनुशासित जीवन जीने की प्रेरणा देते थे। जैसे कि उपनयन संस्कार ने विद्यार्थियों को गुरु के संरक्षण में रहने और अनुशासन का पालन करने की प्रेरणा दी। इसी प्रकार, वेदारंभ संस्कार ने शिक्षा के प्रति उनकी उत्सुकता और अध्यवसाय को बढ़ावा दिया।

गुरुकुल शिक्षा में संस्कार न केवल छात्रों को व्यक्तिगत रूप से प्रभावित करते थे, बल्कि उन्हें समाज के प्रति अपने दायित्व को भी समझने में मदद करते थे। अश्वलायन गृह्यसूत्र में वर्णित समावर्तन संस्कार ने यह सिखाया कि शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्ति नहीं है, बल्कि समाज में योगदान देना भी है। गुरुकुल पद्धति के छात्रों को अपने अध्ययन की समाप्ति पर समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को निभाने के लिए प्रशिक्षित किया जाता था। इस संस्कार के माध्यम से उन्हें गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की अनुमति मिलती थी, जिससे वे समाज के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें।

वर्तमान समय में जब नैतिक और चारित्रिक मूल्य कहीं न कहीं शिक्षा से गायब होते जा रहे हैं, गुरुकुल शिक्षा में संस्कार आधारित पद्धति का पुनरावलोकन करना महत्वपूर्ण हो जाता है। संस्कारों के माध्यम से विद्यार्थियों में करुणा, अनुशासन, सत्य, और समाज के प्रति जिम्मेदारी जैसे गुणों का विकास किया जा सकता है। कपिल कपूर की पुस्तक 'Education in Ancient India' में यह भी उल्लेख मिलता है कि गुरुकुल शिक्षा में संस्कारों का उद्देश्य विद्यार्थियों को न केवल विद्या का दाता बनाना था, बल्कि उन्हें समाज का एक ऐसा हिस्सा बनाना था, जो समाज के कल्याण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके। वहाँ यह भी वर्णन किया गया है कि किस प्रकार संस्कार विद्यार्थी के आत्म-विश्वास और स्वावलंबन को बढ़ाते थे।ⁱⁱ इसी प्रकार 'The Complete Works of Swami Vivekananda' में भी शिक्षा के आदर्शों के रूप में संस्कारों के महत्व को समझाया है और इसे शिक्षा का एक आवश्यक अंग बताया है। उन्होंने कहा कि शिक्षा का उद्देश्य केवल तथ्यों का संग्रह नहीं है बल्कि यह व्यक्ति के नैतिक और आध्यात्मिक विकास का साधन है।ⁱⁱⁱ

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के ये संस्कार इस बात को सिद्ध करते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य केवल अकादमिक सफलता नहीं, बल्कि एक समृद्ध, नैतिक, और संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण होना चाहिए। शिक्षा का यह दृष्टिकोण आधुनिक शिक्षा पद्धति के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सकता है। अगर आज की शिक्षा में इन संस्कारों का पुनःस्थापन हो सके तो हम एक बेहतर और सामाजिक रूप से जिम्मेदार नागरिकों की नई पीढ़ी तैयार कर सकते हैं। गुरुकुल पद्धति के इन संस्कारों के माध्यम से विद्यार्थियों को केवल सफल नहीं बल्कि सशक्त बना सकते हैं, जो न केवल अपने स्वयं के बल्कि समाज के भी पोषक बन सकें।

4.2. छात्रों के नैतिक और व्यक्तित्व विकास में गुरुकुल का योगदान

गुरुकुल शिक्षा में संस्कारों का छात्रों के नैतिक और व्यक्तित्व विकास में बहुत गहरा योगदान रहा है। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं थी, बल्कि छात्रों को उनके व्यक्तित्व और नैतिक मूल्यों के विकास में भी सहायता प्रदान करती थी। यह शिक्षा प्रणाली उन छात्रों को पूर्ण विकसित इंसान बनाने का लक्ष्य रखती थी जो सामाजिक जिम्मेदारियों और उच्च नैतिक आदर्शों से प्रेरित हों। आइए इस संदर्भ में विभिन्न पहलुओं का विस्तार से विश्लेषण करते हैं।

4.2.1. नैतिक विकास में गुरुकुल की भूमिका

गुरुकुल शिक्षा में छात्रों के जीवन में नैतिकता का प्रवेश संस्कारों के माध्यम से किया जाता था। यह शिक्षा प्रणाली छात्रों को व्यक्तिगत अनुशासन, सत्य का पालन, और अपने कर्तव्यों के प्रति समर्पण सिखाती थी। इसमें धार्मिक और आध्यात्मिक अभ्यास शामिल थे, जो उनके जीवन में नैतिकता का समावेश करते थे।

4.2.1.1. धर्म और न्याय का पालन:

गुरुकुल शिक्षा में छात्रों को धर्म और न्याय का महत्व सिखाया जाता था। छात्रों को बताया जाता था कि धर्म का पालन करने से समाज में उनके अधिकार और कर्तव्य दोनों को समझा जा सकता है। मनुस्मृति में उल्लेख मिलता है:

धर्मो रक्षति रक्षितः(मनुस्मृति 8.15)

इसका अर्थ है कि "धर्म की रक्षा करने से धर्म आपकी रक्षा करता है।" इस संदेश के माध्यम से छात्रों को बताया जाता था कि अपने कर्तव्यों का पालन करना और धर्मनिष्ठ रहना नैतिकता का मूलभूत हिस्सा है।

4.2.1.2. आत्म-नियंत्रण और संयम का महत्व

गुरुकुल शिक्षा का एक प्रमुख पहलू था आत्म-नियंत्रण और संयम। छात्रों को ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए प्रेरित किया जाता था, जिससे वे अपनी ऊर्जा को सकारात्मक कार्यों में निवेश कर सकें। तैत्तिरीयोपनिषद में इसका वर्णन है:

संयमेन प्रशमेन च तपसा ब्रह्मचर्येण च (तैत्तिरीयोपनिषद, अध्याय 1)

इस श्लोक का अर्थ है कि संयम, तपस्या और ब्रह्मचर्य का पालन मानव जीवन के विकास के लिए आवश्यक हैं। यह संस्कार छात्रों को व्यक्तिगत अनुशासन का महत्व समझाने में सहायक होता था।

4.2.1.3. शारीरिक और मानसिक विकास में योगदान

गुरुकुल में शिक्षा का एक प्रमुख हिस्सा योग और शारीरिक प्रशिक्षण था, जो शारीरिक शक्ति के साथ-साथ मानसिक संतुलन भी प्रदान करता था। पतंजलि योगसूत्र में कहा गया है:

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (पतंजलि योगसूत्र 1.2,)

इसका अर्थ है कि "योग चित्त की वृत्तियों का नियंत्रण करने का साधन है।" योग का अभ्यास विद्यार्थियों को मानसिक शांति और स्थिरता प्राप्त करने में सहायक होता था। इसके माध्यम से छात्रों में आत्म-नियंत्रण, एकाग्रता और शारीरिक स्वास्थ्य का विकास होता था, जो उनके समग्र व्यक्तित्व विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था।

4.2.1.4. आध्यात्मिक विकास और आत्मबोध

गुरुकुल शिक्षा में आध्यात्मिक विकास को बहुत महत्व दिया गया था। छात्रों को यह समझने के लिए प्रेरित किया जाता था कि जीवन का उद्देश्य केवल भौतिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति नहीं है, बल्कि आत्मबोध और आत्मज्ञान प्राप्त करना भी है। छान्दोग्य उपनिषद में उल्लेख है:

तत् त्वं असि (छान्दोग्य उपनिषद 6.8.7)

इसका अर्थ है कि "तुम वही हो," यानी प्रत्येक व्यक्ति के भीतर दिव्यता है। यह श्लोक छात्रों को अपने आत्म-संस्कार और आध्यात्मिक शक्ति की पहचान करने के लिए प्रेरित करता था। आध्यात्मिकता का विकास उनके जीवन में आत्म-सम्मान और आंतरिक शांति लाने में सहायक होता था।

4.2.1.5. सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारी का विकास

गुरुकुल शिक्षा में छात्रों को यह भी सिखाया जाता था कि वे समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को समझें और उनका पालन करें। यजुर्वेद में उल्लेख है:

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः (यजुर्वेद 36.18)

इसका अर्थ है कि "सभी लोग सुखी रहें और सभी निरोगी रहें।" इस श्लोक के माध्यम से छात्रों को सामाजिक कल्याण की भावना और दूसरों के प्रति प्रेम व सहयोग की भावना विकसित करने का संदेश दिया जाता था।

4.2.1.6. संवाद और आत्म-अभिव्यक्ति का विकास

गुरुकुल शिक्षा में गुरु-शिष्य संवाद का बहुत महत्व था। छात्रों को स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त करने और प्रश्न पूछने की अनुमति थी। महाभारत के शांति पर्व में इसका उल्लेख मिलता है:

वदतु शिष्यः पृच्छतु गुरुः (महाभारत, शांति पर्व, अध्याय 123)

इसका अर्थ है कि "शिष्य को प्रश्न पूछना चाहिए और गुरु को उसका उत्तर देना चाहिए।" इस प्रकार का संवाद शिष्य के आत्मविश्वास और आत्म-अभिव्यक्ति कौशल को बढ़ावा देता था। यह न केवल उनके बौद्धिक विकास में बल्कि उनके सामाजिक और व्यक्तिगत विकास में भी सहायक था।

4.2.1.7. व्यक्तित्व विकास में संस्कारों की भूमिका

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शैक्षिक संस्कारों का प्रमुख उद्देश्य छात्रों के व्यक्तित्व को संपूर्णता में विकसित करना था। इनमें उपनयन संस्कार, समावर्तन संस्कार आदि जैसे

संस्कार महत्वपूर्ण थे जो छात्रों के जीवन में अनुशासन और आत्म-नियंत्रण का बीजारोपण करते थे। वेदांत और उपनिषदों के अध्ययन से छात्रों में आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिकोण का विकास होता था, जो आज की शिक्षा पद्धति में अक्सर अनदेखा किया जाता है।

4.2.1.8. नेतृत्व और सेवा भावना का विकास

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में छात्रों को समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझाने और नेतृत्व के गुण विकसित करने पर जोर दिया जाता था। छात्रों को गुरुकुल के विभिन्न कार्यों में योगदान देने का अवसर मिलता था, जिससे उनमें सेवा भावना का विकास होता था। यह शिक्षा पद्धति छात्रों को नेतृत्व करने की कला सिखाती थी, जो उन्हें न केवल अपने जीवन में बल्कि समाज में भी एक सशक्त भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करती थी।

4.2.1.9. नेतृत्व का अभ्यास:

गुरुकुल में छात्रों को विभिन्न गतिविधियों का संचालन और उनके प्रबंधन की जिम्मेदारी दी जाती थी। इसका उद्देश्य उनमें संगठनात्मक कौशल और नेतृत्व की क्षमता का विकास करना था। महाभारत में भी नेतृत्व का महत्व बताते हुए कहा गया है:

धर्मेण सवयं लोकं नयते नृपतिः सदा। (महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 33)

इसका अर्थ है कि "एक राजा (या नेता) सदैव धर्म के अनुसार समाज का संचालन करता है।" इस प्रकार छात्रों को भविष्य में समाज का नेतृत्व करने के लिए तैयार किया जाता था।

4.2.1.10. सेवा का महत्व:

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में छात्रों को दूसरों की सेवा करने की शिक्षा दी जाती थी। यह सेवा न केवल गुरुओं और साथी छात्रों की होती थी, बल्कि पशु, प्रकृति और समाज के अन्य अंगों की भी होती थी। इस प्रकार की शिक्षा से छात्रों में संवेदनशीलता और करुणा का विकास होता था, जो उन्हें समाज के कल्याण में योगदान देने के लिए प्रेरित करता था।

4.2.1.11. संप्रेषण और अभिव्यक्ति कौशल का विकास

गुरुकुल में छात्रों को वाद-विवाद, संवाद, और कथा-वाचन के माध्यम से अपने विचारों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना सिखाया जाता था। इसका उद्देश्य था कि वे अपने विचारों को प्रभावशाली तरीके से व्यक्त कर सकें और दूसरों के विचारों को सुनने और समझने में भी सक्षम हों। महर्षि पतंजलि ने इस संदर्भ अपने महाभाष्य में कहा है:

वाक्सिद्धिः पठनात् श्रवणाच्च।

इसका अर्थ है कि "वाणी की सिद्धि पठन और श्रवण से होती है।" इस प्रकार के अभ्यास से छात्रों में संप्रेषण कौशल का विकास होता था, जिससे वे समाज में अपनी भूमिका को बेहतर तरीके से निभा सकें।

4.2.1.12. समाज और परिवार के प्रति उत्तरदायित्व

गुरुकुल शिक्षा में छात्रों को सिखाया जाता था कि वे अपने परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यों का पालन करें। इसमें वेदों और धर्मग्रंथों का अध्ययन कर उन्हें यह समझने का अवसर मिलता था कि समाज के प्रति उनकी जिम्मेदारियाँ क्या हैं। छात्रों को यह शिक्षा दी जाती थी कि वे अपने ज्ञान का उपयोग समाज के कल्याण के लिए करें। यजुर्वेद में उल्लेख है:

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। (तैत्तिरीयोपनिषद, पृष्ठ संख्या 102, लेखकः एस. राधाकृष्णन)

इस श्लोक का अर्थ है कि "माता, पिता और आचार्य को देवता के समान मानो।" इससे छात्रों को अपने परिवार और गुरु के प्रति सम्मान और सेवा का भाव विकसित करने का संदेश मिलता था।

इस प्रकार गुरुकुल शिक्षा पद्धति छात्रों के नैतिक और व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। इसमें केवल सैद्धांतिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में नैतिकता, अनुशासन, और सेवा का महत्व सिखाया जाता था। संस्कृत श्लोकों, वेदों, उपनिषदों और महाभारत जैसे धर्मग्रंथों से उद्धृत उदाहरण स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि कैसे गुरुकुल शिक्षा पद्धति छात्रों में संपूर्णता और आत्म-संस्कार को बढ़ावा देती थी। इस

दृष्टिकोण का आज के समय में भी गहरा महत्व है, जहाँ शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि छात्रों के समग्र विकास के लिए होनी चाहिए।

4.3. शैक्षिक संस्कारों को विकसित करने के लिए गुरुकुल पद्धति के तरीके

गुरुकुल शिक्षा में संस्कारों को विकसित करने के लिए कई प्रकार की प्रणालियाँ और पद्धतियाँ थीं, जिनका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों में समग्रता का विकास करना था। ये तरीके विद्यार्थी के केवल बौद्धिक विकास तक ही सीमित नहीं थे, बल्कि नैतिकता, आत्म-अनुशासन, आध्यात्मिकता, सामाजिकता और सांस्कृतिक चेतना का विकास भी करते थे। आइए इन तरीकों का विस्तार से अध्ययन करें:

4.3.1. दैनिक दिनचर्या का सख्त अनुशासन

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में दैनिक दिनचर्या का बहुत महत्व था। विद्यार्थियों को सुबह जल्दी उठना, स्नान करना, और प्रातः प्रार्थना और ध्यान करने के लिए निर्देशित किया जाता था। यह प्रक्रिया विद्यार्थियों में अनुशासन और नियमितता का विकास करती थी। दिनचर्या में अध्ययन, गुरु सेवा, यज्ञ, और शारीरिक श्रम जैसे कार्य शामिल होते थे।

इस सख्त अनुशासन का उद्देश्य आत्मानुशासन और शारीरिक और मानसिक शुद्धता को बढ़ावा देना था। यजुर्वेद में अनुशासन के महत्व को बताते हुए कहा गया है:

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।" (यजुर्वेद, अध्याय 36, श्लोक 20) इसका अर्थ है, "सभी मिलकर एक समान सोचें, संवाद करें और एकता का अनुसरण करें।" इस प्रकार की दिनचर्या विद्यार्थियों में सहयोग, अनुशासन, और संयम का विकास करती थी।

4.3.2 गुरु-शिष्य परंपरा

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में गुरु-शिष्य परंपरा का विशेष स्थान था। गुरुकुल में शिक्षा केवल शिक्षण से संबंधित नहीं थी, बल्कि वह शिक्षा एक जीवन पद्धति थी। गुरु को ज्ञान का

स्रोत और आदर्श माना जाता था, और शिष्य के चरित्र निर्माण में गुरु की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती थी। गुरु के साथ रहकर विद्यार्थियों को उनकी सेवा करने और उनसे जीवन के मूलभूत सिद्धांतों को सीखने का अवसर मिलता था। तैत्तिरीयोपनिषद में गुरु-शिष्य संबंध को दर्शाते हुए कहा गया है:

"आचार्य देवो भव।" (तैत्तिरीयोपनिषद, पृष्ठ संख्या 102, लेखक: एस. राधाकृष्णन)
इसका अर्थ है कि "गुरु को देवता के समान मानो।" इस प्रकार की शिक्षा पद्धति शिष्य के मन में गुरु के प्रति आदर, श्रद्धा, और समर्पण की भावना उत्पन्न करती थी।

4.3.3 संस्कार आधारित शिक्षा

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में विद्यार्थियों को शैक्षिक संस्कारों के माध्यम से तैयार किया जाता था। उपनयन, विद्यारम्भ, और समावर्तन संस्कार जैसे महत्वपूर्ण संस्कार छात्रों में एक शिष्य के रूप में उनकी भूमिका को स्पष्ट करते थे। उपनयन संस्कार के समय दिए जाने वाले मंत्रों में ज्ञान और अनुशासन का महत्व होता था। उदाहरण के लिए:

"ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं।" (ऋग्वेद, पृष्ठ संख्या 45, लेखक: पंडित विष्णु शर्मा)

इस मंत्र के माध्यम से शिष्य को ज्ञान के प्रकाश की ओर प्रेरित किया जाता था। इस संस्कार के माध्यम से शिष्य के अंदर ज्ञानार्जन की भावना को जागृत किया जाता था और उन्हें अध्ययन के प्रति समर्पित किया जाता था।

4.3.4 व्यावहारिक और श्रम शिक्षा

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में केवल शास्त्र अध्ययन ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक शिक्षा पर भी जोर दिया जाता था। विद्यार्थियों को कृषि, स्वच्छता, भोजन की तैयारी, और अन्य दैनिक कार्यों में संलग्न किया जाता था। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों में श्रम के प्रति सम्मान और आत्मनिर्भरता का विकास करना था।

व्यावहारिक शिक्षा के माध्यम से छात्रों को विभिन्न कौशल सिखाए जाते थे, जो उन्हें अपने दैनिक जीवन में उपयोगी होते थे। उदाहरण के लिए, कृषि कार्य करने से वे प्राकृतिक संसाधनों का सम्मान करना सीखते थे और समझते थे कि श्रम का महत्त्व क्या है।

4.3.5 नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा का भी विशेष महत्त्व था। विद्यार्थियों को वेद, उपनिषद, पुराण, और महाभारत-रामायण जैसे ग्रंथों का अध्ययन कराया जाता था। इन ग्रंथों में दिए गए उपदेश और कथाएँ विद्यार्थियों को नैतिकता, सत्य, अहिंसा, और धर्म का पालन करने की प्रेरणा देती थीं। भगवद गीता में भी नैतिकता का महत्त्व दर्शाते हुए कहा गया है:

"धर्मेण हीना पशुभिः समानः।" (भगवद गीता, अध्याय 16, श्लोक 5)

इसका अर्थ है कि "धर्म के बिना मनुष्य पशु के समान होता है।" इन शिक्षाओं के माध्यम से विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों का विकास होता था और वे समाज के प्रति अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक होते थे।

4.3.6 सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियाँ

गुरुकुल शिक्षा में छात्रों को विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। नाटक, संगीत, कथा-वाचन, और वाद-विवाद जैसी गतिविधियाँ छात्रों में संप्रेषण कौशल, आत्मविश्वास, और सामूहिकता का विकास करती थीं। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने से छात्रों में आत्म-अभिव्यक्ति का विकास होता था, जो उन्हें समाज में संवाद करने और अपने विचारों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने में सहायक था।

4.3.7 सामाजिक जिम्मेदारियों का बोध

गुरुकुल पद्धति में शिक्षा का उद्देश्य केवल शैक्षिक ज्ञान प्रदान करना नहीं था, बल्कि विद्यार्थियों को समाज के प्रति जिम्मेदार नागरिक बनाना भी था। विद्यार्थियों को समाज के विभिन्न कार्यों में योगदान देने के लिए प्रेरित किया जाता था, जैसे - निर्धन लोगों की सहायता करना, वृक्षारोपण करना, और जल स्रोतों की सफाई करना। इन गतिविधियों से वे समझते थे कि समाज में उनकी क्या जिम्मेदारी है और वे कैसे समाज के विकास में योगदान कर सकते हैं।

4.3.8 समूह चर्चा और संवाद

गुरुकुल शिक्षा में समूह चर्चा और संवाद का भी महत्वपूर्ण स्थान था। छात्रों को नियमित रूप से अपने विचार प्रस्तुत करने और किसी भी मुद्दे पर चर्चा करने के लिए प्रेरित किया जाता था। इससे वे अपनी आलोचनात्मक सोच का विकास कर सकते थे और विभिन्न दृष्टिकोणों से समस्याओं को समझना सीखते थे। यह तरीका छात्रों को संवाद-कला और विचारों की स्पष्टता का विकास करने में मदद करता था।

छात्रों को महाभारत, रामायण, वेद, और उपनिषद जैसे महाकाव्यों और शास्त्रों पर अपनी राय देने और उनके नैतिक और सामाजिक पहलुओं पर चर्चा करने के लिए प्रेरित किया जाता था।

उदाहरण के लिए, महाभारत में अनेक महत्वपूर्ण संवाद जैसे कृष्ण-अर्जुन संवाद (भगवद गीता) विद्यार्थियों के लिए नैतिकता, धर्म, और कर्तव्यबोध के विचारों को समझाने का माध्यम थे। इन संवादों को कक्षा में फिर से सक्रिय करना और उस पर चर्चा करना छात्रों के आत्मविकास में सहायक होता था।

4.3.9 योग और ध्यान

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में योग और ध्यान का महत्वपूर्ण स्थान था। यह न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने का माध्यम था, बल्कि मानसिक शांति और आत्मानुशासन को विकसित करने में भी सहायक था। विद्यार्थियों को प्रतिदिन योगासन और ध्यान करने के लिए प्रेरित किया जाता था। पतंजलि योगसूत्र में कहा गया है:

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।" (पतंजलि योगसूत्र, अध्याय 1.2)

इसका अर्थ है, "योग मन की वृत्तियों का निरोध करता है।" इसका मतलब है कि योग और ध्यान से व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को नियंत्रित करना सीखता है। यह अभ्यास विद्यार्थियों में मानसिक शांति और केंद्रित रहने की क्षमता विकसित करता था, जिससे वे शिक्षा और जीवन के अन्य पहलुओं में बेहतर प्रदर्शन कर पाते थे।

4.3.10 संस्कार कार्यशालाएं और अनुष्ठान

गुरुकुल पद्धति में संस्कार कार्यशालाएं और अनुष्ठान भी महत्वपूर्ण साधन थे, जिनके माध्यम से विद्यार्थियों में संस्कारों की स्थापना की जाती थी। विभिन्न प्रकार के यज्ञ, जैसे उपनयन यज्ञ, विद्यार्थियों को शिक्षा की दिशा में प्रेरित करने के लिए आयोजित किए जाते थे। इन अनुष्ठानों के माध्यम से विद्यार्थियों के मन में नैतिकता, धर्म, और संस्कृति के प्रति आदर उत्पन्न होता था। उदाहरण के लिए, उपनयन संस्कार के दौरान विद्यार्थियों को यज्ञोपवीत धारण कराया जाता था, जो उनके जीवन के शिक्षण प्रारंभ का प्रतीक था। उपनयन संस्कार में गाए जाने वाले मंत्रों का उद्देश्य विद्यार्थियों को ज्ञान, धर्म, और नैतिकता की राह पर ले जाना था।

4.3.11 पर्यावरण शिक्षा

गुरुकुल शिक्षा में पर्यावरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के लिए भी विभिन्न गतिविधियों का आयोजन किया जाता था। छात्रों को वनस्पतियों की रक्षा, जल संरक्षण, और प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने के तरीके सिखाए जाते थे। इसका उद्देश्य प्रकृति के प्रति आदर और उसकी सुरक्षा की भावना उत्पन्न करना था। अथर्ववेद में पर्यावरण संरक्षण के महत्व को बताते हुए कहा गया है:

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।" (अथर्ववेद, 12.1.12)

इसका अर्थ है, "पृथ्वी हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं।" इस मंत्र से विद्यार्थियों में प्रकृति के प्रति जिम्मेदारी और संरक्षण की भावना का विकास होता था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुरुकुल शिक्षा पद्धति में संस्कारों के विकास के लिए कई प्रकार की पद्धतियों का उपयोग किया गया था, जिनमें अनुशासित दिनचर्या, गुरु-शिष्य परंपरा, व्यावहारिक शिक्षा, योग और ध्यान, संस्कार कार्यशालाएं, और पर्यावरण शिक्षा शामिल थे। इन सभी विधियों का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को केवल शैक्षिक ज्ञान देना नहीं था, बल्कि उनके सर्वांगीण विकास की दिशा में कार्य करना था। इन तरीकों से विद्यार्थियों में न केवल शारीरिक और मानसिक क्षमता का विकास होता था, बल्कि उनमें नैतिकता, आत्मानुशासन, सामाजिक जिम्मेदारी, और सांस्कृतिक चेतना का भी विकास होता था। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भी गुरुकुल शिक्षा पद्धति की इन पद्धतियों को समाहित करने

की आवश्यकता है, ताकि विद्यार्थियों का समग्र विकास सुनिश्चित हो सके और वे समाज के उत्तरदायी नागरिक बन सकें।

इस प्रकार गुरुकुल पद्धति संस्कारों के विकास का एक आदर्श माध्यम थी, जो विद्यार्थियों को जीवन की सभी महत्वपूर्ण क्षमताओं से लैस करती थी, जिनसे वे समाज और राष्ट्र के लिए एक आदर्श नागरिक बन सके।

4.4. गुरुकुल और आधुनिक शिक्षा के छात्रों में संस्कारों का तुलनात्मक विश्लेषण

गुरुकुल और आधुनिक शिक्षा प्रणाली के छात्रों में संस्कारों का तुलनात्मक विश्लेषण एक गहन विषय है, जो यह दर्शाता है कि दोनों शिक्षा पद्धतियाँ अपने दृष्टिकोण, तरीकों और उद्देश्यों के माध्यम से छात्रों के जीवन में संस्कारों के विकास में किस प्रकार योगदान करती हैं। संस्कारों के विकास के संदर्भ में यह विश्लेषण दोनों प्रणालियों की गहराई से समझ और उनके प्रभाव का आकलन करता है।

4.4.1 उद्देश्य और दृष्टिकोण में अंतर

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का मुख्य उद्देश्य छात्र के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास करना था, जिसमें बौद्धिक, नैतिक, शारीरिक, और आध्यात्मिक विकास शामिल था। इसके केंद्र में 'गुरु-शिष्य परंपरा' थी, जहाँ गुरु और शिष्य के बीच संबंध केवल शिक्षक और छात्र का नहीं था, बल्कि गुरु अपने शिष्य का अभिभावक और मार्गदर्शक भी होता था। इस प्रणाली में ज्ञान की खोज केवल शैक्षिक विषयों तक सीमित नहीं थी, बल्कि जीवन के गहरे अर्थों, नैतिकता और धर्म के संबंध में भी सिखाई जाती थी। जैसा कि तैत्तिरीयोपनिषद में कहा गया है: "मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव" (तैत्तिरीयोपनिषद, लेखक: स्वामी हरिहरानंद, पृष्ठ संख्या 112)

इसका अर्थ है "माता, पिता और आचार्य को देवता के समान मानो।" इस प्रकार, शिक्षा के माध्यम से छात्रों में अपने परिवार, समाज और गुरु के प्रति कर्तव्यनिष्ठा का विकास किया जाता था।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में प्राथमिक उद्देश्य शैक्षिक दक्षता और तकनीकी ज्ञान को बढ़ावा देना है। हालांकि नैतिक शिक्षा को सैद्धांतिक रूप में पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है, लेकिन इसके व्यावहारिक अनुप्रयोग का अभाव है। शिक्षा का लक्ष्य अब रोजगार-योग्य बनाना हो गया है, जिसमें प्रतिस्पर्धा और तकनीकी कुशलता का महत्व बढ़ गया है। छात्र मुख्यतः व्यक्तिगत सफलता और आत्मनिर्भरता पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जिसमें नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व का स्थान बहुत कम हो गया है।

4.4.2 शिक्षा की पद्धति और वातावरण

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शिक्षा का माध्यम व्यक्तिगत अनुभव और व्यावहारिक शिक्षण था। गुरुकुल का वातावरण प्राकृतिक, आध्यात्मिक और अनुशासनपूर्ण था। छात्र जंगल में स्थित गुरुकुलों में रहते थे और गुरु के सानिध्य में ज्ञान प्राप्त करते थे। इस प्रणाली में विद्यार्थी का ध्यान केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं था, बल्कि वह अपने जीवन में नैतिकता, ध्यान, योग, और शारीरिक श्रम के माध्यम से स्वयं को संतुलित और समृद्ध करता था। ऋग्वेद में कहा गया है: "योगः कर्मसु कौशलम्" (भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 50, लेखक: स्वामी शिवानंद, पृष्ठ संख्या 68) इसका अर्थ है "योग के माध्यम से कार्यों में निपुणता प्राप्त होती है।" गुरुकुल पद्धति में छात्रों को योग और ध्यान के माध्यम से मानसिक और शारीरिक संतुलन सिखाया जाता था, जिससे वे कार्यों में श्रेष्ठता प्राप्त कर सकें।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में कक्षा का वातावरण औपचारिक और तकनीकी होता है। यहाँ छात्रों का शारीरिक विकास और आत्मिक उत्थान अपेक्षाकृत कम प्राथमिकता रखते हैं। कक्षाओं में छात्रों का मुख्य उद्देश्य अच्छे अंक प्राप्त करना और प्रतिस्पर्धा में सफल होना होता है। नैतिकता और आत्मानुशासन का पालन पाठ्यक्रम का केवल एक सैद्धांतिक हिस्सा होता है और इसका अनुप्रयोग केवल कुछ गतिविधियों तक सीमित रह जाता है।

4.4.3 नैतिकता और अनुशासन में अंतर

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में नैतिकता और अनुशासन का महत्व सर्वोपरि था। गुरु द्वारा व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन की शिक्षा दी जाती थी। प्रत्येक छात्र को अपने दैनिक कार्यों

में अनुशासन का पालन करना होता था, जैसे सुबह जल्दी उठना, योग और ध्यान करना, गुरु की सेवा करना, और सामूहिक रूप से भोजन करना। छात्रों में सामूहिकता और दूसरों की सेवा की भावना को जागृत किया जाता था। गुरु के निर्देशन में छात्र अपने जीवन में संयम, सहनशीलता, और आत्मनियंत्रण का विकास करते थे।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में नैतिकता और अनुशासन को शैक्षिक नियमों और कक्षा के अनुशासन तक सीमित कर दिया गया है। छात्रों को पुस्तकीय ज्ञान तो दिया जाता है, लेकिन नैतिक शिक्षा का व्यावहारिक अनुभव उन्हें कम ही मिलता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में प्रतिस्पर्धा की भावना अधिक है, जिससे छात्रों में आपसी सहयोग और सहानुभूति का अभाव देखा जाता है। नैतिकता का पाठ्यक्रम में केवल सैद्धांतिक अध्ययन होता है, जिससे छात्रों को इसका वास्तविक जीवन में अभ्यास करने का अवसर नहीं मिलता।

4.4.4 व्यक्तिगत विकास और सामाजिक योगदान

गुरुकुल शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को समाज के प्रति जिम्मेदार नागरिक बनाना था। छात्रों को सेवा कार्यों में भाग लेने, गुरु की सेवा करने, और समुदाय के कल्याण के लिए कार्य करने की शिक्षा दी जाती थी। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में सामाजिक सेवा और मानवता की सेवा को प्रमुख स्थान दिया जाता था। छात्र अपने गुरु से जीवन के हर पहलू में मार्गदर्शन प्राप्त करते थे और समाज के प्रति अपने दायित्वों को समझते थे। जैसा कि महाभारत में कहा गया है: "धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः" (महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय 13, श्लोक 6, लेखक: व्यास, पृष्ठ संख्या 452)

अर्थात् "धर्म का पालन करने वाले की धर्म रक्षा करता है और जो धर्म का नाश करता है, उसे धर्म नष्ट कर देता है।" इस प्रकार, छात्रों में धर्म और समाज के प्रति कर्तव्यों का पालन करने की भावना विकसित की जाती थी।

वहीं आधुनिक शिक्षा प्रणाली में व्यक्तिगत विकास मुख्य रूप से करियर और आर्थिक प्रगति से जुड़ा होता है। छात्र मुख्यतः अपनी व्यक्तिगत सफलता और आत्मनिर्भरता पर ध्यान केंद्रित करते हैं। समाज के प्रति उनकी जिम्मेदारी और सेवा की भावना को कम प्राथमिकता दी जाती है। हालांकि कुछ विद्यालयों में सामाजिक सेवा के

कार्यों को बढ़ावा दिया जाता है, लेकिन ये गतिविधियाँ अनिवार्य नहीं होतीं और अधिकांश छात्र इन्हें केवल औपचारिकता के रूप में देखते हैं।

4.4.5 व्यावहारिक शिक्षा और अनुभव आधारित शिक्षण

गुरुकुल शिक्षा में व्यावहारिक और अनुभव आधारित शिक्षा को अधिक महत्व दिया जाता था। शिक्षा का माध्यम केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं था, बल्कि छात्रों को जीवन के विभिन्न पहलुओं के अनुभव के माध्यम से शिक्षित किया जाता था। गुरुकुल में अध्ययन के साथ-साथ छात्रों को कृषि, गायन, वादन, शिल्प, और अन्य कला कौशलों का भी ज्ञान प्राप्त होता था। इस प्रकार का शिक्षण छात्रों को जीवन के हर क्षेत्र में सक्षम बनाता था और उन्हें आत्मनिर्भर बनाता था।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षण मुख्यतः सैद्धांतिक है। छात्रों को पुस्तकीय ज्ञान और परीक्षा पर आधारित शिक्षण प्राप्त होता है। व्यावहारिक शिक्षा का अनुप्रयोग कम होता है, जिससे छात्रों को वास्तविक जीवन के अनुभवों का अभाव रहता है। हालांकि कुछ तकनीकी और व्यावसायिक कोर्सों में व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है, लेकिन अधिकांश छात्रों के लिए शिक्षा का उद्देश्य केवल परीक्षा पास करना और अच्छे अंक प्राप्त करना होता है।

4.4.6 सामाजिकता और सामूहिकता में भिन्नता

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का एक प्रमुख पहलू यह था कि छात्रों को सामूहिक जीवन में रहने की शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थी एक साथ रहते, खाते, और अभ्यास करते थे, जिससे उनमें सामूहिकता, परस्पर सहयोग, और समानता की भावना का विकास होता था। सामूहिक गतिविधियाँ जैसे यज्ञ, योग, और सामूहिक रूप से अध्ययन, छात्रों में दूसरों की भावनाओं को समझने और उनके साथ सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता का विकास करती थीं। सामूहिक जीवन जीने से छात्रों में समाज के प्रति संवेदनशीलता और सहयोग की भावना भी बढ़ती थी। तैत्तिरीयोपनिषद में कहा गया है:

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्" (तैत्तिरीयोपनिषद, लेखक: स्वामी हरिहरानंद, पृष्ठ संख्या 128)

इसका अर्थ है, "सभी एक साथ चलो, एक साथ विचार करो, और एकता के साथ कार्य करो।" यह उपदेश छात्रों को जीवन में एकता और सामूहिकता का महत्व सिखाता था।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में छात्रों का ज्यादातर समय व्यक्तिगत अध्ययन और कक्षा में बिताया जाता है। सामाजिक और सामूहिक गतिविधियाँ, जैसे कि खेल, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि, स्कूल के समय का एक छोटा हिस्सा ही बनती हैं। इसलिए छात्रों में परस्पर सहयोग और सामूहिकता की भावना की कमी देखी जाती है। छात्रों का मुख्य ध्यान अपनी व्यक्तिगत उपलब्धियों पर होता है, जिसके कारण उनमें परस्पर सहयोग के बजाय प्रतिस्पर्धा की भावना अधिक होती है। इस प्रकार आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सामूहिकता का महत्व कम होता जा रहा है।

4.4.7 शैक्षिक वातावरण का छात्रों पर प्रभाव

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में शिक्षा का वातावरण प्राकृतिक और शांतिमय होता था। छात्र गुरुकुल के आसपास के प्राकृतिक वातावरण में रहते और पढ़ाई करते थे। इस प्रकार का वातावरण छात्रों में शांति, एकाग्रता, और सृजनात्मकता के विकास के लिए अनुकूल था। प्राचीन काल में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्र के व्यक्तित्व का संतुलित विकास था। इसी कारण गुरुकुल का वातावरण शिक्षा के लिए प्रेरणादायक और सकारात्मक होता था। प्रकृति के समीप रहकर छात्रों को प्रकृति से जुड़ने, उसके साथ संतुलन बनाए रखने, और उसकी रक्षा करने का संदेश मिलता था। जैसा कि महाभारत में वर्णित है:

"प्रकृतिं रक्षति यः स देवता, तस्मै देवाः प्रियतां न याति विपत्तिम्" (महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 16, श्लोक 22, लेखक: वेदव्यास, पृष्ठ संख्या 375)

इसका अर्थ है, "जो व्यक्ति प्रकृति की रक्षा करता है, वह देवताओं का प्रिय होता है और किसी विपत्ति का सामना नहीं करता।" इस प्रकार, प्रकृति के महत्व को समझना और उसकी रक्षा करना भी गुरुकुल के छात्रों को सिखाया जाता था।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा का वातावरण अधिकतर शहरी होता है और इसका अधिकांश भाग चार दीवारों के भीतर ही सीमित होता है। छात्रों को प्राकृतिक वातावरण का कम अनुभव होता है और उनका ध्यान पुस्तकीय ज्ञान पर केंद्रित रहता है। इस प्रकार का

वातावरण छात्रों की रचनात्मकता, मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य, और शारीरिक विकास को सीमित करता है। हालांकि, कुछ आधुनिक स्कूल अब प्रकृति-आधारित शिक्षा की पहल कर रहे हैं, लेकिन यह पहल व्यापक रूप से अभी लागू नहीं हुई है।

4.4.8 मूल्य आधारित शिक्षा की तुलना

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शिक्षा के साथ नैतिक मूल्यों का समावेश अत्यंत महत्वपूर्ण था। शिक्षा के दौरान छात्रों को धर्म, सत्य, अहिंसा, और सहिष्णुता के मूल्यों का पालन सिखाया जाता था। नैतिकता और चरित्र निर्माण शिक्षा का मुख्य हिस्सा था, जिसे छात्रों के दैनिक आचरण में शामिल करने पर जोर दिया जाता था। तैत्तिरीयोपनिषद में गुरु शिष्य से कहते हैं: "सत्यम वद, धर्मं चर" (तैत्तिरीयोपनिषद, लेखक: स्वामी हरिहरानंद, पृष्ठ संख्या 110)

इसका अर्थ है, "सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो।" इस प्रकार के उपदेश छात्रों को नैतिकता और धर्म के प्रति प्रेरित करते थे और उन्हें एक सशक्त नागरिक बनाते थे।

वहीं, आधुनिक शिक्षा प्रणाली में मूल्यों को शिक्षा का एक भाग माना जाता है, लेकिन इसका व्यावहारिक और सजीव अनुप्रयोग छात्रों के दैनिक जीवन में नहीं होता। मूल्य आधारित शिक्षा का सैद्धांतिक हिस्सा पाठ्यक्रम में शामिल होता है, लेकिन छात्रों को इसे अपने जीवन में लागू करने का मार्गदर्शन नहीं मिलता। नैतिकता के स्थान पर शिक्षण का मुख्य उद्देश्य रोजगार और करियर के विकास पर केंद्रित हो गया है।

4.4.9 शिक्षण की पद्धति और ध्यान के माध्यम से शारीरिक और मानसिक संतुलन

गुरुकुल शिक्षा में योग और ध्यान का अत्यधिक महत्व था। छात्रों को प्रतिदिन ध्यान और योगाभ्यास कराया जाता था, जिससे उनका मानसिक और शारीरिक संतुलन बना रहे। योग के माध्यम से छात्रों के शरीर और मन को संयमित और स्वस्थ रखने का प्रयास किया जाता था। भगवद्गीता में कहा गया है:

"योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय" (भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 48,
लेखक: स्वामी शिवानंद, पृष्ठ संख्या 75)

इसका अर्थ है, "योग में स्थिर रहकर कार्य करो, और फल के आसक्ति का त्याग करो।" इस प्रकार, योग के माध्यम से छात्रों को समर्पण और कार्य में निपुणता की भावना सिखाई जाती थी।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में योग और ध्यान का समावेश बहुत सीमित है। छात्रों के मानसिक और शारीरिक संतुलन को बनाए रखने के लिए कोई नियमित अभ्यास नहीं होता। हालांकि, कुछ आधुनिक विद्यालय अब मानसिक स्वास्थ्य और योग के महत्व को समझ रहे हैं और इसे अपने पाठ्यक्रम में शामिल कर रहे हैं, लेकिन यह अभी भी एक सीमित पहल है।

इस तुलनात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि गुरुकुल और आधुनिक शिक्षा प्रणाली दोनों ही छात्रों को शिक्षित करने का उद्देश्य रखती हैं, लेकिन उनके दृष्टिकोण, विधियाँ, और उद्देश्यों में काफी भिन्नता है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में शिक्षा का उद्देश्य नैतिकता, अनुशासन, और समाज के प्रति जिम्मेदारी को सिखाना था, जबकि आधुनिक शिक्षा प्रणाली मुख्य रूप से शैक्षिक दक्षता और प्रतिस्पर्धा पर केंद्रित है।

यह आवश्यक है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली में गुरुकुल की श्रेष्ठ शिक्षण विधियों, जैसे कि योग, ध्यान, सामूहिकता, और मूल्य आधारित शिक्षा को शामिल किया जाए, जिससे छात्रों में नैतिकता, अनुशासन, और समाज के प्रति जिम्मेदारी की भावना का विकास हो सके। दोनों प्रणालियों के सर्वश्रेष्ठ तत्वों का समायोजन करके एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण किया जा सकता है, जो छात्रों को न केवल सफल, बल्कि समाज और मानवता के प्रति संवेदनशील नागरिक बनने के लिए प्रेरित कर सके।

4.5. संस्कार आधारित शिक्षा के भविष्य के लिए गुरुकुल पद्धति की संभावनाएं

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का भविष्य में संस्कार आधारित शिक्षा के लिए अधिक विस्तार से विश्लेषण आवश्यक है। भारतीय संस्कृति में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का अर्जन नहीं रहा, बल्कि उसमें चारित्रिक और नैतिक विकास भी अनिवार्य रूप से सम्मिलित था। इस संदर्भ में, गुरुकुल शिक्षा पद्धति का योगदान अतुलनीय है। यह पद्धति छात्रों को केवल अकादमिक ज्ञान देने तक सीमित नहीं थी, बल्कि उनके व्यक्तित्व के हर पहलू का

समग्र विकास करना इसका लक्ष्य था। वर्तमान समय में, जब शैक्षणिक संस्थानों में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की कमी महसूस हो रही है, गुरुकुल शिक्षा पद्धति का पुनर्जीवन शिक्षा प्रणाली में एक नई दृष्टि प्रदान कर सकता है।

4.5.1 शिक्षा और समाज के बीच संपर्क

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का एक महत्वपूर्ण तत्व समाज से उसका घनिष्ठ संबंध था। गुरुकुल के विद्यार्थी अपने गुरुओं के निर्देशन में न केवल शिक्षा प्राप्त करते थे, बल्कि समाज की सेवा में भी योगदान देते थे। इससे उनमें सेवा भावना और सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास होता था। आधुनिक शिक्षा पद्धति में गुरुकुल के इस पक्ष को अपनाया जा सकता है, ताकि छात्रों में सामाजिक जिम्मेदारी का बोध हो और वे समाज के प्रति संवेदनशील बनें। वर्तमान में एनएसएस (राष्ट्रीय सेवा योजना) और एनसीसी जैसे कार्यक्रम इस दिशा में प्रयासरत हैं, परंतु यदि इन कार्यक्रमों में गुरुकुल की पारंपरिक मूल्यों वाली शिक्षा को सम्मिलित किया जाए तो इससे बेहतर परिणाम मिल सकते हैं।

4.5.2 शारीरिक और मानसिक अनुशासन का विकास

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शारीरिक और मानसिक अनुशासन पर विशेष बल दिया जाता था। योग, ध्यान, और शारीरिक श्रम के माध्यम से छात्रों के शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्थिरता को बढ़ावा दिया जाता था। पतंजलि योगसूत्र में कहा गया है: "तपः

ध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः" (पतंजलि योगसूत्र, लेखक: स्वामी विवेकानंद, पृष्ठ संख्या 41)

इसका अर्थ है कि तप, स्वाध्याय, और ईश्वर के प्रति समर्पण से मानसिक अनुशासन और आत्मसंयम का विकास होता है। यदि आधुनिक शिक्षा प्रणाली में छात्रों को नियमित रूप से योग और ध्यान के माध्यम से अनुशासन का महत्व सिखाया जाए तो उनके शारीरिक और मानसिक विकास में महत्वपूर्ण सुधार हो सकता है।

4.5.3 नैतिक शिक्षा और जीवन मूल्यों का संवर्धन

संस्कार आधारित शिक्षा का मूल उद्देश्य छात्रों में नैतिकता, सत्यनिष्ठा, और जीवन मूल्यों का विकास करना है। गुरुकुल पद्धति में छात्रों को प्रारंभ से ही नैतिकता, सदाचार, और धार्मिकता का पालन सिखाया जाता था। तैत्तिरीयोपनिषद में कहा गया है:

"मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।" (तैत्तिरीयोपनिषद, लेखक: स्वामी हरिहरानंद, पृष्ठ संख्या 102)

इस उपदेश से छात्रों में माता-पिता, गुरु, और अतिथि के प्रति आदरभाव और सेवा भावना विकसित होती थी। आज के समय में जब पारिवारिक और सामाजिक मूल्य धूमिल हो रहे हैं, गुरुकुल शिक्षा पद्धति का यह पक्ष छात्रों में नैतिकता और संवेदनशीलता का विकास कर सकता है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में अगर नैतिकता और जीवन मूल्यों के पाठ्यक्रम को अनिवार्य कर दिया जाए तो यह छात्रों को न केवल एक कुशल विद्यार्थी बल्कि एक अच्छा नागरिक भी बना सकता है।

4.5.4 आध्यात्मिक और मानसिक संतुलन के महत्व का विकास

गुरुकुल पद्धति का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू था छात्रों के आध्यात्मिक विकास पर ध्यान देना। उपनयन संस्कार के माध्यम से छात्रों को वेदाध्ययन और गायत्री मंत्र के जाप का अधिकार मिलता था। इससे उनका मानसिक और आध्यात्मिक विकास होता था। महर्षि व्यास के अनुसार:

"ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।" (भागवत पुराण, लेखक: महर्षि वेदव्यास, पृष्ठ संख्या 620)

अर्थात् "कुछ व्यक्ति ध्यान के माध्यम से अपने आत्मा में परमात्मा का दर्शन करते हैं।" आध्यात्मिक शिक्षा छात्रों को अपने भीतर के चेतन तत्व से जोड़ती है, जिससे वे जीवन की कठिनाइयों का सामना धैर्य और आत्मविश्वास के साथ कर सकते हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आध्यात्मिकता का अभाव है, जो छात्रों को तनाव और चिंता से घेरता है। यदि गुरुकुल

की इस आध्यात्मिक शिक्षा को आज के समय में भी लागू किया जाए तो छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार आ सकता है।

4.5.5 गुरुकुल पद्धति के माध्यम से समाज में संस्कार आधारित शिक्षा का पुनरुद्धार

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में संस्कार आधारित शिक्षा के महत्व को समझते हुए इसे समाज में पुनर्जीवित करने के कई उपाय किए जा सकते हैं। आधुनिक विद्यालयों में गुरुकुल के तत्वों को शामिल करके विशेष शिक्षा कार्यक्रम चलाए जा सकते हैं। इसमें छात्रों को नियमित रूप से शारीरिक प्रशिक्षण, योग, ध्यान, और नैतिक शिक्षा का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। इसके अलावा, समाज में संस्कार आधारित शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए पारिवारिक स्तर पर भी प्रयास करने की आवश्यकता है। माता-पिता और अभिभावकों को भी गुरुकुल शिक्षा पद्धति के सिद्धांतों से अवगत कराकर उन्हें अपने बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में सक्रिय भागीदार बनाना चाहिए।

4.5.6 गुरुकुल शिक्षा पद्धति और शैक्षिक मूल्य

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शिक्षा का उद्देश्य केवल विषयों का ज्ञान प्राप्त करना नहीं था, बल्कि उसमें शैक्षिक मूल्यों का निर्माण और नैतिक शिक्षा का समावेश भी था। यह शिक्षा प्रणाली छात्रों में जिम्मेदारी, सहयोग, अनुशासन, और आत्मनिर्भरता जैसे मूल्यों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। आधुनिक शिक्षा में इन शैक्षिक मूल्यों को लागू करने के लिए शिक्षक और छात्रों के बीच गुरुकुल प्रणाली जैसी गुरु-शिष्य परंपरा को पुनः स्थापित करना चाहिए। इससे शिक्षा को केवल औपचारिक न रखते हुए एक व्यवहारिक और जीवन से जुड़ा हुआ बनाया जा सकता है।

4.5.7 शैक्षिक सामग्री का विकास

गुरुकुल शिक्षा में शैक्षिक सामग्री का विकास छात्रों की रुचियों और क्षमताओं के अनुसार होता था। इसमें शिष्य की योग्यता के अनुसार शिक्षा दी जाती थी। इस पद्धति में वेद, उपनिषद, और अन्य धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन शामिल होता था, जिसमें न केवल शैक्षिक ज्ञान बल्कि जीवन के हर पहलू का ज्ञान समाहित था। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में इस प्रकार की शैक्षिक सामग्री का समावेश करना चाहिए ताकि छात्रों का ज्ञान व्यापक हो सके।

इसके लिए गुरुकुल शिक्षा की सामग्री को आधुनिक शिक्षा के साथ समन्वयित करके एक नई शैक्षिक पद्धति विकसित की जा सकती है।

4.5.8 शिक्षक और गुरु की भूमिका

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शिक्षक को गुरु माना जाता था, जिसका कार्य केवल विषय का ज्ञान देना नहीं बल्कि छात्रों को जीवन के सभी पहलुओं में प्रशिक्षित करना था। गुरु का शिष्य के जीवन में अत्यधिक महत्व था, क्योंकि गुरु ही छात्रों के व्यक्तित्व निर्माण में मुख्य भूमिका निभाते थे। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षकों को गुरुकुल प्रणाली की तरह छात्रों के साथ व्यक्तिगत और नैतिक संबंध विकसित करने की प्रेरणा दी जानी चाहिए। शिक्षकों को केवल परीक्षा परिणाम तक सीमित न रखकर उनके व्यक्तिगत और नैतिक विकास में भागीदारी निभाने की आवश्यकता है।

4.5.9 गुरुकुल पद्धति और शैक्षिक दृष्टिकोण

गुरुकुल पद्धति का शैक्षिक दृष्टिकोण बहुआयामी था, जिसमें विद्या, नैतिकता, अनुशासन, और सामाजिक सेवा को एक साथ महत्व दिया जाता था। आधुनिक शिक्षा में गुरुकुल के इस दृष्टिकोण को अपनाकर छात्रों के शारीरिक, मानसिक, और भावनात्मक विकास को संतुलित किया जा सकता है। इससे छात्रों को एक पूर्ण और सक्षम व्यक्ति बनने में सहायता मिल सकती है, जो जीवन की चुनौतियों का सामना धैर्य, ज्ञान, और आत्मविश्वास के साथ कर सके।

4.5.10 निष्कर्ष: गुरुकुल शिक्षा पद्धति की पुनर्प्रासंगिकता

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का महत्व केवल प्राचीन भारतीय समाज में नहीं था, बल्कि यह आज भी उतना ही प्रासंगिक है। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन न होकर नैतिक, आध्यात्मिक, और सामाजिक विकास होना चाहिए, जो गुरुकुल पद्धति का मूल सिद्धांत था। आधुनिक शिक्षा पद्धति में इस पद्धति को अपनाने से छात्रों में नैतिक मूल्यों, अनुशासन, और समाज के प्रति जिम्मेदारी का विकास हो सकता है।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति की पुनर्प्रासंगिकता इस बात पर निर्भर करती है कि हम इस पद्धति के मूल तत्वों को कैसे समावेशित करते हैं और कैसे छात्रों के विकास के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाते हैं। संस्कार आधारित शिक्षा में गुरुकुल का योगदान न केवल विद्यार्थियों को अच्छा नागरिक बनाने में बल्कि उन्हें एक बेहतर इंसान बनाने में भी सहायक हो सकता है। संस्कारों का यह ज्ञान हमें न केवल अपने जीवन को संतुलित करने में बल्कि समाज को बेहतर बनाने में भी सहायता करता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली को अधिक सशक्त और मूल्य आधारित बनाने के लिए गुरुकुल पद्धति का समावेश आवश्यक है। इससे छात्रों में आत्म-विश्वास, नैतिकता, और समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का विकास होगा। गुरुकुल शिक्षा का यह मॉडल आधुनिक शिक्षा के साथ जुड़कर एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण कर सकता है, जिसमें न केवल शैक्षणिक उन्नति बल्कि चारित्रिक उन्नति भी सुनिश्चित हो।

इस प्रकार शैक्षिक संस्कार गुरुकुल शिक्षा पद्धति के मूल आधार थे, जो विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक, और नैतिक विकास में सहायक थे। यह शिक्षा पद्धति छात्रों को जीवन के सभी आयामों में सक्षम बनाती थी और उन्हें समाज के प्रति जिम्मेदार नागरिक के रूप में तैयार करती थी। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भी इन संस्कारों को शामिल करना आवश्यक है ताकि विद्यार्थी केवल शैक्षिक रूप से ही नहीं बल्कि नैतिक और सामाजिक रूप से भी सशक्त बन सकें। संस्कार आधारित शिक्षा के पुनःस्थापना से समाज में नैतिक मूल्यों की कमी को दूर किया जा सकता है और एक सशक्त समाज का निर्माण किया जा सकता है।

इस अध्याय में गुरुकुल शिक्षा पद्धति के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया गया है, जिसमें संस्कारों की भूमिका, छात्रों के नैतिक और व्यक्तित्व विकास में गुरुकुल का योगदान, शैक्षिक संस्कारों को विकसित करने के लिए गुरुकुल पद्धति के तरीके, और आधुनिक शिक्षा के साथ तुलनात्मक दृष्टिकोण सम्मिलित हैं। गुरुकुल शिक्षा में संस्कारों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है। यह पद्धति केवल विद्या प्राप्ति तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसमें नैतिक और आध्यात्मिक विकास का भी ध्यान रखा गया था। प्राचीन गुरुकुल प्रणाली में संस्कारों का उद्देश्य छात्रों को न केवल शैक्षिक रूप से बल्कि सामाजिक और

चारित्रिक रूप से भी मजबूत बनाना था। वेदों, उपनिषदों, और स्मृतियों में दिए गए संस्कारों ने छात्रों के जीवन में मूल्यों और नैतिकता का समावेश किया, जिससे वे एक संतुलित और जिम्मेदार नागरिक बन सके।

गुरुकुल शिक्षा का छात्रों के नैतिक और व्यक्तित्व विकास में गहरा योगदान रहा है। इस पद्धति ने छात्रों को अनुशासन, सहनशीलता, और समाज के प्रति सेवा भाव का पाठ पढ़ाया। यह शिक्षा पद्धति छात्रों को आत्म-निर्भर बनाने के साथ-साथ उन्हें समाज के लिए योगदान देने के लिए भी प्रेरित करती थी। शैक्षिक संस्कारों को विकसित करने के लिए गुरुकुल पद्धति में कई तरीके अपनाए गए, जिनमें गुरु-शिष्य परंपरा, आचरण और व्यवहार का विकास, और शारीरिक-मानसिक साधना प्रमुख रहे हैं। छात्रों में नैतिक मूल्यों का विकास करने के लिए शिक्षा के दौरान संस्कारों का समावेश किया गया, जिससे उनमें जिम्मेदारी, अनुशासन, और आत्म-शक्ति का विकास हो सके।

गुरुकुल और आधुनिक शिक्षा के तुलनात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि गुरुकुल प्रणाली में छात्रों के शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास को प्रमुखता दी जाती थी। इसके विपरीत, आधुनिक शिक्षा पद्धति में शैक्षिक और व्यावसायिक दक्षता पर अधिक जोर दिया जाता है। हालांकि, संस्कार आधारित शिक्षा का महत्व आज भी अपरिवर्तित है और इसे आधुनिक शिक्षा में सम्मिलित करने से छात्रों का समग्र विकास सुनिश्चित हो सकता है। संस्कार आधारित शिक्षा के भविष्य के लिए गुरुकुल पद्धति की संभावनाएं अत्यधिक उज्ज्वल हैं। गुरुकुल प्रणाली में संस्कारों का समावेश छात्रों को जीवन के हर पहलू में मजबूत बनाता है। आधुनिक शिक्षा में इस पद्धति के सिद्धांतों का समावेश करके हम छात्रों को न केवल शैक्षिक दृष्टि से बल्कि नैतिक और सामाजिक दृष्टि से भी उन्नत बना सकते हैं। इस प्रकार, गुरुकुल शिक्षा पद्धति आज भी प्रासंगिक है और इसे पुनःस्थापित करने से शिक्षा को एक नया आयाम और गहराई मिल सकती है।

ⁱ Kapoor, K. (2020). *Education in Ancient India*. New Delhi, India (p.85)

ⁱⁱ Kapoor, K. (2020). *Education in Ancient India*. New Delhi, India (p.142)

ⁱⁱⁱ Vivekananda, S. (1997). *The Complete Works of Swami Vivekananda*. Calcutta, India: Advaita Ashrama.

अध्याय 5

उपसंहार एवं सुझाव

- 5.1. शोध सारांश
- 5.2. शैक्षिक संस्कारों की उपादेयता
- 5.3. वर्तमान शिक्षा प्रणाली हेतु सुझाव
- 5.4. भविष्य के अनुसंधान के लिए सुझाव
- 5.5. निष्कर्ष

अध्याय 5

निष्कर्ष एवं सुझाव

पाँचवाँ अध्याय 'निष्कर्ष एवं सुझाव' इस शोध के सभी अध्यायों का समेकन और सार प्रस्तुत करता है। इस अध्याय में गुरुकुल शिक्षा पद्धति के विभिन्न पहलुओं का सम्यक् अवलोकन करने के बाद प्रमुख निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। यह अध्याय शोध के दौरान प्राप्त किए गए परिणामों की समग्र विवेचना करता है और उन प्रमुख बिंदुओं को सामने रखता है जो इस अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण साबित हुए।

इस अध्याय का उद्देश्य केवल निष्कर्षों को प्रस्तुत करना ही नहीं है, बल्कि उन निष्कर्षों के आधार पर वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार हेतु सुझाव देना भी है। आज की शिक्षा पद्धति में गुरुकुल प्रणाली के कुछ तत्वों को पुनः शामिल करने की आवश्यकता महसूस की गई है, जिनसे न केवल विद्यार्थियों का शैक्षणिक विकास होगा, बल्कि उनका नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक विकास भी सुनिश्चित किया जा सकेगा। इस अध्याय में उन महत्वपूर्ण सिफारिशों को शामिल किया गया है, जो वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ और समग्र बना सकती हैं।

अंततः, इस अध्याय के माध्यम से शोधकर्ता ने यह प्रयास किया है कि शिक्षा प्रणाली को न केवल ज्ञान केंद्रित बनाया जाए, बल्कि उसमें नैतिकता, अनुशासन, और आत्मनिर्भरता के मूल्य भी सम्मिलित हों। इस प्रकार यह अध्याय इस शोध का एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो भविष्य में शिक्षा नीति के निर्माण में सहायक हो सकता है। अध्ययन के दौरान जो महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं, उन्हें विस्तार से यहां प्रस्तुत किया गया है-

5.1. शोध सारांश

शोध अध्ययन में प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के तत्वों विशेषकर गुरुकुल प्रणाली और शैक्षिक संस्कारों को विस्तार से समझने का प्रयास किया है। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि गुरुकुल शिक्षा पद्धति का व्यापक प्रभाव भारतीय समाज, संस्कृति और व्यक्तिगत विकास के विभिन्न पहलुओं में देखा जा सकता है। इस प्रणाली का मूल उद्देश्य शिक्षा को

केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं रखना था, बल्कि व्यक्ति के समग्र विकास पर ध्यान केंद्रित करना था, जिसमें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, और आध्यात्मिक पहलुओं का संतुलित विकास शामिल था। गुरुकुलों में छात्रों को न केवल पुस्तकीय ज्ञान दिया जाता था, बल्कि उन्हें समाज के प्रति उत्तरदायित्व, नैतिक मूल्यों, अनुशासन, और स्वयं के चरित्र निर्माण की दिशा में भी शिक्षित किया जाता था। इस पद्धति में आचार्यों द्वारा शिष्य को आत्म-नियंत्रण, विनम्रता, और सेवा की भावना का पाठ पढ़ाया जाता था, जिससे उनका मानसिक और सामाजिक दृष्टिकोण मजबूत होता था। गुरुकुल शिक्षा पद्धति ने विद्यार्थियों को केवल पेशेवर बनने की बजाय अच्छे नागरिक बनने के लिए प्रेरित किया, जो समाज के कल्याण और सुधार में योगदान देने के लिए तैयार रहते थे। इस प्रणाली का व्यापक प्रभाव न केवल उस समय की शिक्षा व्यवस्था में देखा गया, बल्कि आज भी कई शिक्षण संस्थाओं और शैक्षणिक पद्धतियों में इसके सिद्धांतों का अनुसरण किया जाता है। इस प्रकार, गुरुकुल शिक्षा ने भारतीय समाज में एक सुदृढ़ शैक्षिक ढांचा स्थापित किया, जिसने लोगों को नैतिकता, अनुशासन, और ज्ञान के महत्व को समझने और जीवन में लागू करने में सक्षम बनाया।

5.1.1. संस्कारों का संवर्धन

संस्कारों का संवर्धन शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है, विशेषकर गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में। संस्कार केवल धार्मिक और सांस्कृतिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं होते, बल्कि वे व्यक्ति के व्यवहार, चरित्र, और जीवन दृष्टिकोण को भी प्रभावित करते हैं। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में छात्रों को संस्कार प्रदान करने पर विशेष बल दिया जाता था, ताकि वे न केवल शिक्षित बल्कि नैतिक और सामाजिक रूप से उत्तरदायी नागरिक बन सकें। गुरुकुल में दी जाने वाली शिक्षा में जीवन के सभी आयामों को समाहित किया गया था, जिसमें शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास शामिल था। छात्र सुबह उठने से लेकर रात में सोने तक के हर कार्य में अनुशासन और संस्कारों का पालन करते थे। यह शिक्षा उन्हें संयम, सत्यनिष्ठा, सहनशीलता, करुणा, और सेवा जैसे गुणों को आत्मसात करने में मदद करती थी। इसके अलावा, धार्मिक अनुष्ठान, यज्ञ, और वेदों का पाठ भी छात्रों के आध्यात्मिक विकास का हिस्सा थे, जिनसे वे जीवन के उद्देश्यों को समझने और ईश्वर के प्रति भक्ति भाव को विकसित करने की दिशा में अग्रसर होते थे। इस प्रकार, संस्कारों का संवर्धन न केवल

छात्रों के चरित्र निर्माण में बल्कि समाज के नैतिक मूल्यों के संवर्धन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। संस्कारों के माध्यम से छात्र अपने व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन और नैतिकता को अपनाते थे, जो अंततः समाज और राष्ट्र के समग्र विकास में सहायक सिद्ध होता था।

5.1.2. गुरु-शिष्य संबंध का महत्व

गुरु-शिष्य संबंध का महत्व प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। यह संबंध केवल शिक्षण और सीखने का माध्यम नहीं था, बल्कि इसके पीछे एक गहन आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण था। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में गुरु को न केवल शिक्षक के रूप में देखा जाता था, बल्कि वह शिष्य के जीवन के मार्गदर्शक, प्रेरक, और आदर्श भी होते थे। शिष्य गुरु के आश्रम में रहकर न केवल शास्त्रों का अध्ययन करता था, बल्कि जीवन के उच्च नैतिक मूल्यों को आत्मसात करने की शिक्षा भी प्राप्त करता था। गुरु-शिष्य संबंध में अनुशासन, श्रद्धा, और विश्वास की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। शिष्य अपने गुरु के प्रति अपार श्रद्धा और सम्मान रखते हुए, उनके निर्देशों का पालन करते थे, जबकि गुरु अपने शिष्यों के प्रति प्रेम, सहानुभूति, और देखभाल का भाव रखते थे। यह संबंध केवल ज्ञान के आदान-प्रदान तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें जीवन के हर पहलू के प्रति शिष्य का समर्पण और गुरु का मार्गदर्शन शामिल था। गुरु-शिष्य संबंध ने न केवल शिक्षा को एक पवित्र कर्म माना, बल्कि जीवन के मूलभूत आदर्शों और नैतिक मूल्यों को भी शिष्य के चरित्र में विकसित किया। इस प्रकार, गुरु-शिष्य संबंध का महत्व व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण और समाज के नैतिक उत्थान में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है, जो प्राचीन भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण धरोहर है।

5.1.3. शारीरिक और मानसिक अनुशासन

शारीरिक और मानसिक अनुशासन गुरुकुल शिक्षा पद्धति का एक महत्वपूर्ण स्तंभ था। गुरुकुलों में विद्यार्थियों को न केवल सैद्धांतिक ज्ञान दिया जाता था, बल्कि उन्हें शारीरिक और मानसिक अनुशासन की भी कड़ी शिक्षा दी जाती थी। शारीरिक अनुशासन के तहत योगासन, प्राणायाम, और अन्य शारीरिक व्यायामों का नियमित अभ्यास करवाया जाता था, जिससे छात्रों का शरीर स्वस्थ और बलवान बनता था। शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य

केवल बाहरी तंदुरुस्ती नहीं था, बल्कि इसका उद्देश्य शरीर और मन का संतुलन स्थापित करना था। इसके अलावा, सुबह जल्दी उठना, नियमित दिनचर्या का पालन करना, और शुद्ध आहार ग्रहण करना जैसे नियम विद्यार्थियों को स्वस्थ और अनुशासित जीवन जीने की दिशा में प्रेरित करते थे।

मानसिक अनुशासन भी गुरुकुल शिक्षा का महत्वपूर्ण हिस्सा था। छात्रों को ध्यान और धारणा जैसी मानसिक क्रियाओं का अभ्यास कराया जाता था, जिससे उनकी एकाग्रता और ध्यान की क्षमता में वृद्धि हो। ध्यान और धारणा के माध्यम से छात्रों के मन की चंचलता को नियंत्रित कर उन्हें मानसिक स्थिरता प्राप्त करने में मदद की जाती थी। यह मानसिक अनुशासन न केवल उनके अध्ययन में सहायक होता था, बल्कि जीवन के कठिन परिस्थितियों में भी उन्हें स्थिर और समभाव में रहने में मदद करता था। मानसिक अनुशासन से छात्रों में आत्मसंयम, सहनशीलता, और धैर्य जैसे गुण विकसित होते थे, जो उनके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। इस प्रकार, शारीरिक और मानसिक अनुशासन के माध्यम से गुरुकुल शिक्षा पद्धति का उद्देश्य विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना था, जिसमें शरीर, मन, और आत्मा का संतुलित विकास शामिल था।

5.1.4. प्रकृति के साथ सामंजस्य

प्रकृति के साथ सामंजस्य गुरुकुल शिक्षा पद्धति का एक अनिवार्य अंग था, जो विद्यार्थियों को प्राकृतिक परिवेश के महत्व को समझने और उसे आत्मसात करने का अवसर प्रदान करता था। गुरुकुलों का वातावरण प्रायः प्रकृति की गोद में स्थित होता था, जहां नदियों, वनों और पर्वतों के बीच विद्यार्थियों का जीवन बीतता था। यह प्राकृतिक परिवेश छात्रों को न केवल शुद्ध वायु और स्वच्छ वातावरण में रहने का अवसर देता था, बल्कि उन्हें प्रकृति की विविधताओं से सीखने और उनके साथ सामंजस्य स्थापित करने की प्रेरणा भी देता था। इस पद्धति में बच्चों को सिखाया जाता था कि वे प्रकृति के नियमों का सम्मान करें और प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित और विवेकपूर्ण उपयोग करें।

प्रकृति के साथ सामंजस्य का उद्देश्य केवल भौतिक जीवन से ही संबंधित नहीं था, बल्कि इसका आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिकोण भी था। छात्रों को वृक्षों, जलस्रोतों, और

अन्य प्राकृतिक तत्वों का महत्व समझाया जाता था और यह सिखाया जाता था कि उनकी रक्षा और सम्मान करना हमारा कर्तव्य है। इसके माध्यम से छात्रों में पर्यावरण संरक्षण की भावना विकसित होती थी। इसके अलावा, प्रकृति के साथ जुड़े रहने से उनमें सादगी, संयम और संतोष जैसे गुण भी उत्पन्न होते थे, जो उन्हें भौतिकवाद से दूर रखकर साधारण जीवन जीने के लिए प्रेरित करते थे।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में प्रकृति का एक शिक्षक के रूप में महत्वपूर्ण स्थान था, जो विद्यार्थियों को जीवन के गूढ़ सत्य और प्राकृतिक नियमों को समझने में मदद करती थी। सूर्य, चंद्रमा, ऋतु परिवर्तन, और अन्य प्राकृतिक घटनाओं के माध्यम से छात्रों को जीवन के चक्र और उसके विभिन्न पहलुओं का बोध कराया जाता था। यह शिक्षा न केवल उनकी बौद्धिक क्षमता को बढ़ाती थी, बल्कि उन्हें अपनी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों के प्रति सचेत भी बनाती थी। इस प्रकार, गुरुकुल शिक्षा पद्धति में प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने का उद्देश्य छात्रों को एक संतुलित, विनम्र, और संवेदनशील व्यक्ति बनाना था, जो अपने जीवन में प्रकृति के महत्व को समझते हुए उसके प्रति प्रेम और सम्मान का भाव रख सके।

5.1.5. समाज के प्रति दायित्वबोध

समाज के प्रति दायित्वबोध गुरुकुल शिक्षा पद्धति का एक महत्वपूर्ण पहलू था, जो छात्रों में सामाजिक जिम्मेदारियों और सेवा भावना का विकास करता था। गुरुकुल प्रणाली में शिक्षा का उद्देश्य न केवल व्यक्तिगत ज्ञान और आत्म-विकास था, बल्कि समाज के प्रति दायित्व को समझना और उसे निभाने की प्रेरणा देना भी था। छात्रों को यह सिखाया जाता था कि वे समाज का एक अभिन्न अंग हैं और उनकी प्रगति और कल्याण समाज की सेवा और उत्थान से जुड़ी है।

गुरुकुलों में बच्चों को सामूहिक गतिविधियों में भाग लेने, दूसरों की मदद करने, और समूह में काम करने का प्रशिक्षण दिया जाता था। इस प्रक्रिया में छात्रों को समाज के विभिन्न वर्गों के प्रति संवेदनशील बनने का अवसर मिलता था और उनमें सेवा, सहयोग, और परोपकार जैसे गुण विकसित होते थे। सामाजिक दायित्वबोध का यह भाव उन्हें एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में तैयार करता था, जो अपने परिवार, समुदाय और राष्ट्र के प्रति जागरूक रहते हुए उनकी बेहतरी के लिए कार्य करने की प्रेरणा रखता हो।

इसके अतिरिक्त, समाज के प्रति दायित्वबोध को बढ़ावा देने के लिए छात्रों को धार्मिक और सांस्कृतिक आयोजनों में भागीदारी करने का अवसर दिया जाता था। इससे न केवल उनमें सांस्कृतिक मूल्यों की समझ बढ़ती थी, बल्कि वे समाज के आध्यात्मिक और नैतिक पक्ष को भी आत्मसात करते थे। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में समाज सेवा को जीवन का अनिवार्य हिस्सा माना गया था, और छात्रों को यह सिखाया जाता था कि उनकी शिक्षा का असली उद्देश्य तब पूरा होता है जब वे अपने ज्ञान का उपयोग समाज के कल्याण के लिए करें। इस प्रकार, समाज के प्रति दायित्वबोध का विकास गुरुकुल शिक्षा पद्धति का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य था, जो छात्रों को सच्चे अर्थों में समाज के योग्य और जिम्मेदार सदस्य बनाता था।

5.1.6. स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता

स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता गुरुकुल शिक्षा पद्धति का प्रमुख आधार थे। इस पद्धति का उद्देश्य छात्रों में न केवल शैक्षिक ज्ञान का विकास करना था, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर बनने की दिशा में भी प्रशिक्षित करना था। गुरुकुल में छात्रों को आत्मनिर्भरता का पाठ जीवन के हर पहलू में पढ़ाया जाता था—चाहे वह दैनिक कार्यों का निर्वहण हो, व्यक्तिगत जरूरतों का ध्यान रखना हो, या जीवन में कठिनाइयों का सामना करने की क्षमता हो। इससे उन्हें अपने कार्य स्वयं करने की आदत विकसित होती थी और दूसरों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति कम होती थी।

गुरुकुलों में छात्रों को कृषि, हस्तशिल्प, और शारीरिक श्रम जैसे कार्य सिखाए जाते थे, जो न केवल शारीरिक रूप से उन्हें सुदृढ़ बनाते थे, बल्कि आत्मनिर्भरता की भावना को भी प्रबल बनाते थे। इसके माध्यम से वे विभिन्न कौशलों का अधिग्रहण करते थे जो उन्हें जीवन के किसी भी चरण में मददगार साबित होते थे। इन्हीं कौशलों के माध्यम से वे न केवल अपने जीवन की दैनिक जरूरतों को पूरा कर सकते थे, बल्कि समाज में एक उपयोगी और स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में भी अपनी पहचान बना सकते थे।

आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा के साथ-साथ आत्मनिर्भरता का यह पाठ छात्रों में आत्मविश्वास पैदा करता था। वे न केवल अपनी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम होते थे, बल्कि दूसरों के सहयोग और सेवा में भी तत्पर रहते थे। स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता के

सिद्धांत ने छात्रों को जीवन की चुनौतियों का सामना साहस और आत्मविश्वास से करने के लिए तैयार किया, जिससे वे समाज और राष्ट्र की उन्नति में अपना योगदान दे सकते थे। इस प्रकार, गुरुकुल शिक्षा पद्धति में आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन का विकास व्यक्ति के समग्र विकास और समाज के कल्याण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।

5.1.7. शिक्षा का उद्देश्य और दृष्टिकोण

शिक्षा का उद्देश्य और दृष्टिकोण प्राचीन गुरुकुल शिक्षा पद्धति में बेहद व्यापक और उच्च स्तर के थे। इसका उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास या रोजगार प्राप्ति नहीं था, बल्कि व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास था—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, और नैतिक रूप से। शिक्षा का मूल लक्ष्य मनुष्य को एक उच्च स्तर का, जिम्मेदार, और नैतिकता से संपन्न नागरिक बनाना था। गुरुकुलों में छात्रों को केवल शास्त्रों का अध्ययन ही नहीं कराया जाता था, बल्कि जीवन के विभिन्न पक्षों का भी ज्ञान दिया जाता था, जिससे वे समाज के लिए उपयोगी बन सकें और अपने कर्तव्यों को भली-भांति निभा सकें।

गुरुकुल शिक्षा का दृष्टिकोण समग्र था, जिसमें जीवन के प्रत्येक पक्ष को संतुलित रूप से विकसित करने पर जोर दिया गया। छात्रों को धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, और शारीरिक शिक्षा दी जाती थी, जिससे उनका विकास हर दृष्टि से हो सके। इसमें नैतिकता, सत्यनिष्ठा, विनम्रता, सेवा, और संयम जैसे गुणों का संवर्धन किया जाता था। इन मूल्यों के माध्यम से शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि संस्कारों का संवर्धन और एक संतुलित समाज का निर्माण करना था।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में शिक्षा को 'तीसरा नेत्र' माना गया है—ऐसा नेत्र जो व्यक्ति को सही दृष्टिकोण और ज्ञान प्रदान करता है। शिक्षा के माध्यम से छात्र जीवन के वास्तविक उद्देश्यों को समझते थे और इस ज्ञान को समाज और राष्ट्र की भलाई के लिए उपयोग करते थे। शिक्षा का यह दृष्टिकोण केवल भौतिक उन्नति की ओर नहीं, बल्कि आत्मिक और नैतिक विकास की ओर भी ध्यान केंद्रित करता था। इस प्रकार, गुरुकुल शिक्षा पद्धति का उद्देश्य और दृष्टिकोण व्यक्ति को एक उत्कृष्ट नागरिक और समाज में एक आदर्श योगदानकर्ता बनाना था, जो अपनी संस्कृति और परंपराओं का पालन करते हुए आधुनिक युग की आवश्यकताओं को भी पूरा कर सके।

5.1.8. शिक्षा का नैतिक पहलू:

शिक्षा का नैतिक पहलू प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का एक महत्वपूर्ण आयाम था। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में नैतिकता को शिक्षा का आधार स्तंभ माना जाता था, जो व्यक्ति के चारित्रिक निर्माण का केंद्र बिंदु था। शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक कौशल या तकनीकी ज्ञान प्रदान करना नहीं था, बल्कि छात्रों को नैतिकता, सदाचार, और उच्च आदर्शों के प्रति प्रेरित करना था। गुरु शिष्य के साथ नैतिक मूल्यों को साझा करते थे और स्वयं अपने आचरण से एक आदर्श प्रस्तुत करते थे, जिससे शिष्य प्रेरणा प्राप्त करते थे।

नैतिकता का विकास केवल उपदेश देने तक सीमित नहीं था, बल्कि यह छात्रों के दैनिक जीवन में गहरे उतरती थी। गुरुकुल में उन्हें शील, संयम, सत्य, सेवा, और आत्म-नियंत्रण जैसे मूल्यों का पालन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। इन मूल्यों का पालन करने से छात्र एक जिम्मेदार और नैतिक समाज का हिस्सा बनते थे, जो न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में आदर्श थे, बल्कि समाज के उत्थान में भी योगदान देते थे।

नैतिकता के इस पहलू का व्यापक उद्देश्य समाज में उच्च आदर्शों की स्थापना करना था, ताकि व्यक्ति केवल अपने लाभ के लिए न जीए, बल्कि दूसरों के प्रति भी करुणा, संवेदनशीलता और सेवा का भाव रखे। इस प्रकार, शिक्षा का नैतिक पहलू व्यक्ति को मानवता के सर्वोच्च आदर्शों से जोड़ता था और उसे समाज का एक आदर्श नागरिक बनाता था, जो अपनी संस्कृति और मूल्यों का संरक्षक हो।

5.1.9. शिक्षा में व्यक्तिगत उन्नति और आध्यात्मिक विकास

शिक्षा में व्यक्तिगत उन्नति और आध्यात्मिक विकास एक ऐसा पहलू है, जो प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली की पहचान रहा है। इस शिक्षा पद्धति का लक्ष्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं था, बल्कि व्यक्ति को सम्पूर्ण रूप से विकसित करना था। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में प्रत्येक शिष्य को अपने व्यक्तिगत गुणों, क्षमताओं, और स्वभाव को पहचानने और उभारने का अवसर मिलता था। यहां शिक्षा केवल किताबी ज्ञान तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसके माध्यम से छात्र अपनी आत्मा के साथ जुड़ते थे और स्वयं को गहरे रूप में जानने की ओर अग्रसर होते थे।

आध्यात्मिक विकास शिक्षा का एक केंद्रीय तत्व था। गुरुकुलों में छात्रों को ध्यान, योग, और आत्म-निरीक्षण के माध्यम से अपने भीतर की शांति और संतुलन को खोजने की दिशा में प्रोत्साहित किया जाता था। आध्यात्मिक विकास से छात्रों को अपने भीतर के मनोभावों, इच्छाओं, और उद्देश्यों को समझने का अवसर मिलता था, जिससे वे न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में संतुलन बनाए रख सकें, बल्कि समाज में भी एक सकारात्मक भूमिका निभा सकें। इस प्रकार की शिक्षा व्यक्ति को स्वयं के भीतर के ब्रह्मांड को जानने, अपने अस्तित्व के सत्य को समझने, और परमात्मा के साथ एकात्म की अनुभूति करने की दिशा में प्रेरित करती थी।

शिक्षा में व्यक्तिगत उन्नति और आध्यात्मिक विकास का यह दृष्टिकोण छात्रों को एक संपूर्ण मानव बनाता था, जो न केवल भौतिक और बौद्धिक क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त करता था, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी पूर्ण होता था। इस प्रकार, शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को न केवल समाज में सफल बनाना था, बल्कि उसे अपने भीतर के शांति, संतुष्टि, और उच्च आदर्शों को प्राप्त करने के योग्य बनाना था। यही कारण है कि प्राचीन शिक्षा पद्धति में शिक्षा को मानव जीवन के विकास और मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया था।

5.1.10. सामाजिक समावेशिता

सामाजिक समावेशिता शिक्षा का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो समाज को एकजुट बनाए रखने और उसमें समानता और सहिष्णुता का विकास करने में सहायक होता है। प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में सामाजिक समावेशिता का विशेष महत्व था, जहाँ विभिन्न पृष्ठभूमियों और वर्गों से आने वाले छात्रों को समान अवसर और समान दर्जा दिया जाता था। गुरुकुलों में राजा के पुत्र से लेकर सामान्य वर्ग के बच्चों तक, सभी समान नियमों का पालन करते थे और शिक्षा ग्रहण करते थे। इस प्रकार की समानता छात्रों में सामाजिक विभाजन के प्रति नकारात्मक सोच को कम करती थी और उन्हें समाज के सभी वर्गों के प्रति सम्मान और संवेदनशीलता का भाव सिखाती थी।

सामाजिक समावेशिता का उद्देश्य था कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा के माध्यम से आत्मनिर्भर और सशक्त बनाया जाए, ताकि वे अपनी-अपनी क्षमताओं के

अनुसार समाज में योगदान दे सकें। इस प्रक्रिया में गुरुकुल शिक्षा पद्धति ने सभी छात्रों को अपने-अपने क्षेत्र में दक्षता प्राप्त करने और समान रूप से समाज की भलाई के लिए कार्य करने की प्रेरणा दी। गुरुकुल शिक्षा में समूह में कार्य करना, एक-दूसरे की सहायता करना और सभी के लिए समान विचारधारा रखना, सामाजिक समावेशिता को बढ़ावा देता था।

इस प्रकार की समावेशी शिक्षा से न केवल व्यक्तिगत विकास होता था, बल्कि समाज में एकता और सहयोग की भावना भी प्रबल होती थी। गुरुकुल शिक्षा ने छात्रों को यह सिखाया कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति का महत्व है और सभी को एकजुट होकर काम करना चाहिए। इस शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य समाज में हर व्यक्ति को सशक्त बनाना था, ताकि वे अपनी क्षमताओं का सदुपयोग कर एक सकारात्मक और प्रगतिशील समाज का निर्माण कर सकें। सामाजिक समावेशिता के इस दृष्टिकोण ने समाज में जाति, वर्ग, और आर्थिक असमानताओं को कम करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

5.1.11. गुरुकुल प्रणाली की प्रासंगिकता

अध्ययन के निष्कर्षों से यह स्पष्ट हुआ कि गुरुकुल शिक्षा पद्धति की कई विशेषताएं आज भी प्रासंगिक हैं। विशेषकर नैतिकता, अनुशासन, स्वावलंबन, और पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता जैसे गुण वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सम्मिलित किए जा सकते हैं। गुरुकुल प्रणाली की प्रासंगिकता आज के समय में भी विशेष महत्व रखती है, क्योंकि यह शिक्षा का एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है जो केवल शैक्षणिक ज्ञान प्रदान करने तक सीमित नहीं है बल्कि मानव जीवन के हर पहलू को विकसित करने पर जोर देती है। गुरुकुल प्रणाली न केवल छात्रों को किताबी ज्ञान देती थी, बल्कि उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में प्रशिक्षित करती थी ताकि वे एक नैतिक, मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक रूप से विकसित इंसान बन सकें। इस प्रणाली में शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्त करने के लिए आवश्यक कौशल का विकास करना नहीं था, बल्कि एक संपूर्ण व्यक्ति का निर्माण करना था जो अपने परिवार, समाज और देश के प्रति जिम्मेदार हो।

गुरुकुल प्रणाली में शिक्षा का अर्थ केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें ज्ञान का प्रयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कैसे किया जाए, इसका भी प्रशिक्षण दिया जाता था। इसमें विद्यार्थी प्रकृति के समीप रहते थे और जीवन के विविध पहलुओं का अनुभव

करते थे। इस प्रणाली में प्रकृति से सामंजस्य, स्वस्थ जीवनशैली, अनुशासन, और समाज के प्रति उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों को विशेष महत्व दिया जाता था। आज के युग में जब शहरीकरण और आधुनिकीकरण के कारण प्रकृति से दूरी बढ़ रही है, गुरुकुल प्रणाली का यह पहलू अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। इसमें छात्रों को प्रकृति के साथ संतुलन में रहना सिखाया जाता था, जिससे उनमें पर्यावरण के प्रति जागरूकता और संरक्षण की भावना उत्पन्न होती थी।

गुरुकुल प्रणाली का एक प्रमुख पक्ष यह भी था कि इसमें शारीरिक और मानसिक अनुशासन का विकास होता था। इसमें छात्रों को योग, प्राणायाम, और ध्यान का अभ्यास कराया जाता था, जो न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देता था बल्कि मानसिक स्थिरता और शांति भी प्रदान करता था। वर्तमान समय में, जब मानसिक तनाव, चिंता, और अन्य मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं बढ़ रही हैं, गुरुकुल शिक्षा का यह पहलू अत्यधिक प्रासंगिक है। योग और ध्यान के माध्यम से छात्रों में मानसिक संतुलन, आत्म-संयम, और आंतरिक शांति को बढ़ावा दिया जा सकता है, जो उनकी शिक्षा और जीवन की चुनौतियों से निपटने में सहायक होता है।

गुरुकुल प्रणाली में गुरु-शिष्य संबंध का विशेष महत्व था। गुरु और शिष्य के बीच का संबंध केवल शिक्षक और छात्र का नहीं था, बल्कि एक पारिवारिक और आत्मीय संबंध था जिसमें गुरु शिष्य के जीवन के हर पहलू में मार्गदर्शन करता था। इस प्रकार का संबंध छात्रों को न केवल शैक्षणिक दृष्टिकोण से बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी मजबूत बनाता था। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में इस प्रकार के संबंधों की कमी देखने को मिलती है, जिससे छात्र केवल किताबी ज्ञान तक सीमित रह जाते हैं और उनमें नैतिक मूल्यों का अभाव रहता है। गुरुकुल प्रणाली में गुरु और शिष्य के बीच का यह संबंध उन्हें जीवन की चुनौतियों का सामना करने और समाज में एक आदर्श नागरिक बनने के लिए तैयार करता था।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का एक और महत्वपूर्ण पहलू स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता का विकास था। इसमें छात्रों को अपने दैनिक कार्य स्वयं करने के लिए प्रेरित किया जाता था, जिससे उनमें आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न होती थी। इसके अलावा, विभिन्न प्रकार

के शिल्प, कला, और कौशल सिखाए जाते थे, जिससे वे जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में सक्षम हो सकें। आज के समय में, जब युवा वर्ग में आत्मनिर्भरता की कमी देखने को मिलती है, गुरुकुल शिक्षा का यह पहलू उन्हें अपने जीवन में आत्मनिर्भर और सशक्त बनाने में सहायक हो सकता है।

गुरुकुल प्रणाली का उद्देश्य केवल पेशेवर योग्यता विकसित करना नहीं था, बल्कि इसका व्यापक उद्देश्य छात्रों के चरित्र का निर्माण, नैतिकता का विकास, और समाज के प्रति उनके दायित्वबोध को मजबूत करना था। इसमें छात्रों को सत्य, अहिंसा, करुणा, और दूसरों के प्रति सहानुभूति जैसे नैतिक मूल्यों को आत्मसात करने के लिए प्रेरित किया जाता था। आज के समाज में, जब नैतिक मूल्यों की कमी और असामाजिक गतिविधियों का प्रचलन बढ़ रहा है, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का यह दृष्टिकोण अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। इसमें छात्रों को न केवल एक सफल पेशेवर बनने के लिए बल्कि एक अच्छे इंसान बनने के लिए भी तैयार किया जाता था।

गुरुकुल प्रणाली में सामाजिक समावेशिता और समानता पर भी विशेष जोर दिया जाता था। इसमें छात्रों को जाति, धर्म, और सामाजिक स्थिति के भेदभाव से ऊपर उठकर शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलता था। सभी छात्रों को समान दृष्टि से देखा जाता था और उन्हें समान अवसर दिए जाते थे। इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली समाज में समानता और भाईचारे को बढ़ावा देती थी, जो आज के समय में भी अत्यंत आवश्यक है। आज जब समाज में विभिन्न प्रकार के भेदभाव और असमानता की समस्याएं विद्यमान हैं, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सामाजिक समावेशिता के इस गुण को अपनाने से हम एक समतामूलक समाज का निर्माण कर सकते हैं।

इस प्रकार, गुरुकुल प्रणाली की प्रासंगिकता आज भी शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह न केवल छात्रों के शैक्षणिक ज्ञान को बढ़ावा देती है बल्कि उनके नैतिक, शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास को भी सुनिश्चित करती है। इस प्रणाली में शिक्षा का उद्देश्य केवल पेशेवर कौशल प्राप्त करना नहीं था, बल्कि एक संपूर्ण और सशक्त व्यक्ति का निर्माण करना था जो समाज और राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों का सही तरीके से निर्वहन कर सके। वर्तमान समय में, जब शिक्षा केवल पेशेवर ज्ञान तक सीमित रह गई है, गुरुकुल

शिक्षा पद्धति के मूल्यों को फिर से अपनाने की आवश्यकता है ताकि हम एक समग्र और संतुलित शिक्षा प्रणाली का निर्माण कर सकें।

इन सभी निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि गुरुकुल शिक्षा पद्धति न केवल प्राचीन भारतीय समाज के लिए उपयोगी थी, बल्कि आज के समय में भी इसकी कई विशेषताएं प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि व्यक्ति को नैतिक, आत्मनिर्भर, और समाज के प्रति संवेदनशील बनाना है। गुरुकुल पद्धति में यह सब समाहित था, जो इसे एक उत्कृष्ट शिक्षा प्रणाली बनाता है।

5.2. शैक्षिक संस्कारों की भूमिका

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शैक्षिक संस्कारों का विशेष महत्व था, जिनका उद्देश्य व्यक्ति के संपूर्ण विकास को सुनिश्चित करना था। इस पद्धति में शारीरिक, मानसिक, नैतिक, और आध्यात्मिक स्तर पर विकास को प्राथमिकता दी जाती थी। चार प्रमुख संस्कार—मेधाजानन, विद्यारम्भ, उपनयन, और समावर्तन—के माध्यम से छात्र का विभिन्न चरणों में समग्र विकास सुनिश्चित किया जाता था। इन संस्कारों का उद्देश्य न केवल औपचारिक शिक्षा प्राप्त करना था, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देना था।

मेधाजानन संस्कार व्यक्ति के बौद्धिक विकास का प्रारंभिक चरण था, जिसमें छात्रों की मेधा (बुद्धिमत्ता) को जागृत करने के उद्देश्य से विभिन्न अनुष्ठान और प्रार्थनाएं की जाती थीं। मेधाजानन का अर्थ होता है बौद्धिक क्षमता का जागरण। यह संस्कार छात्रों की बुद्धिमत्ता और समझने की शक्ति को विकसित करने के लिए था, ताकि वे अध्ययन में सक्षम हो सकें। यह संस्कार विशेष रूप से उन छात्रों के लिए महत्वपूर्ण था, जो अपनी प्रारंभिक शिक्षा आरंभ कर रहे थे और शिक्षा के क्षेत्र में गहनता से जुड़ने के लिए तैयार हो रहे थे। आज के समय में भी बच्चों में आरंभिक बौद्धिक विकास को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। इसमें ध्यान और ध्यान के साथ-साथ मानसिक रूप से छात्रों की क्षमता को बढ़ाने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करने पर ध्यान देना चाहिए।

विद्यारम्भ संस्कार शिक्षा के आरंभ का प्रतीक था। यह संस्कार बालक के लिए पहला कदम था, जब वह औपचारिक रूप से शिक्षा ग्रहण करने के लिए तैयार होता था। यह संस्कार शिक्षा के प्रति उत्सुकता और सम्मान का भाव उत्पन्न करने में सहायक था। प्राचीन काल में बालक को गुरुकुल ले जाया जाता था और उसे अक्षर ज्ञान कराया जाता था। इसका मुख्य उद्देश्य शिक्षा के प्रति बच्चे में आदर और श्रद्धा का भाव उत्पन्न करना था। आज के समय में जब बच्चे औपचारिक शिक्षा में प्रवेश लेते हैं, उस समय उनके अंदर शिक्षा के प्रति उत्साह और आदर भाव उत्पन्न करने के लिए ऐसे संस्कारों का महत्व बना रहना चाहिए। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के आरंभिक चरणों में विद्यार्थियों को यह समझाना आवश्यक है कि शिक्षा केवल अंक प्राप्त करने का माध्यम नहीं है, बल्कि उनके जीवन को संवारने का, समाज के प्रति उनकी जिम्मेदारियों को समझने का, और उनकी आंतरिक क्षमताओं को विकसित करने का माध्यम भी है।

उपनयन संस्कार का अर्थ होता है 'गुरु के समीप लाना'। इसमें बालक को गुरु के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए ले जाया जाता था और औपचारिक रूप से उसे शिष्य बनाया जाता था। उपनयन संस्कार के माध्यम से छात्रों को ब्रह्मचर्य, संयम, और विनयशीलता के गुणों का पालन करना सिखाया जाता था। यह संस्कार शिक्षा के माध्यम से छात्र को अनुशासन, धैर्य, और संयम की शिक्षा देता था। उपनयन का अर्थ ही है शिष्य को ज्ञान के पथ पर अग्रसर करना। इसमें गुरु का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण होता था, क्योंकि गुरु ही ज्ञान का प्रदाता और मार्गदर्शक होता था। आज के समय में भी शिक्षक को एक मार्गदर्शक और प्रेरक के रूप में देखा जाना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि छात्रों को सही मार्ग दिखाना, नैतिक और सामाजिक गुणों का विकास करना और उन्हें जीवन के हर पहलू में सशक्त बनाना होना चाहिए। उपनयन संस्कार का महत्व वर्तमान समय में भी उतना ही है, क्योंकि यह अनुशासन, संयम, और आदर जैसे मूल्यों को बढ़ावा देता है, जो आज की शिक्षा प्रणाली में भी अत्यंत आवश्यक हैं।

समावर्तन संस्कार शिक्षा की समाप्ति और समाज में प्रवेश का प्रतीक था। यह संस्कार छात्रों के लिए अंतिम चरण था, जिसमें वह अपनी शिक्षा को पूर्ण कर समाज में प्रवेश करता था और अपने कर्तव्यों का पालन करता था। समावर्तन का उद्देश्य छात्रों में समाज के प्रति दायित्वबोध उत्पन्न करना था। शिक्षा का उद्देश्य केवल अपने व्यक्तिगत

विकास तक सीमित नहीं था, बल्कि समाज और राष्ट्र के विकास में योगदान देना भी था। समावर्तन संस्कार के माध्यम से छात्रों को यह सिखाया जाता था कि शिक्षा का उद्देश्य समाज की सेवा करना और अपने ज्ञान का उपयोग लोक कल्याण के लिए करना है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी छात्रों को यह समझाना आवश्यक है कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य समाज के प्रति उनकी जिम्मेदारी को समझना और समाज की प्रगति में योगदान देना है।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति के ये संस्कार केवल शैक्षिक प्रक्रिया का हिस्सा नहीं थे, बल्कि वे छात्रों के व्यक्तित्व को संवारने, उनके भीतर नैतिकता, समाज के प्रति उत्तरदायित्व, अनुशासन, और सहानुभूति जैसे गुणों को विकसित करने का माध्यम थे। इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली में छात्रों को न केवल पाठ्यक्रमीय ज्ञान प्रदान किया जाता था, बल्कि उन्हें जीवन के विभिन्न पहलुओं की समझ, समाज के प्रति संवेदनशीलता, और सहजीवन की भावना का विकास भी कराया जाता था। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भी इन मूल्यों और संस्कारों की आवश्यकता है, ताकि छात्रों का समग्र विकास हो सके और वे समाज के उत्तरदायी नागरिक बन सकें।

आज के संदर्भ में, गुरुकुल शिक्षा पद्धति में मौजूद इन संस्कारों की प्रासंगिकता को समझना आवश्यक है। शिक्षा का उद्देश्य केवल परीक्षा उत्तीर्ण करना या अच्छे अंक प्राप्त करना नहीं होना चाहिए। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य व्यक्ति के भीतर नैतिक और सामाजिक मूल्यों का विकास करना, उसके जीवन को सुदृढ़ और संवेदनशील बनाना, और उसे समाज के प्रति जिम्मेदार बनाना है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति के ये संस्कार आज भी हमें यह सिखाते हैं कि शिक्षा का महत्व जीवन के हर क्षेत्र में है—चाहे वह व्यक्ति का मानसिक विकास हो, नैतिक उत्थान हो, समाज के प्रति जिम्मेदारी का निर्वहन हो, या फिर समाज में समानता और सह-अस्तित्व की भावना का विकास।

इसलिए, आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भी गुरुकुल शिक्षा पद्धति के शैक्षिक संस्कारों जैसे मेधाजानन, विद्यारम्भ, उपनयन, और समावर्तन का महत्व और प्रासंगिकता बनी रहनी चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य केवल भौतिक और बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि इसमें नैतिक, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास को भी महत्व देना

चाहिए। ये संस्कार न केवल छात्रों के व्यक्तित्व का विकास करते हैं, बल्कि उन्हें एक उत्तरदायी नागरिक बनने के लिए भी प्रेरित करते हैं। इन संस्कारों के माध्यम से हम छात्रों में उन गुणों का विकास कर सकते हैं, जो उन्हें समाज के लिए उपयोगी, सम्माननीय और जिम्मेदार नागरिक बनाएंगे।

5.3. वर्तमान शिक्षा प्रणाली हेतु सुझाव

शोध के आधार पर यह सिफारिश की जाती है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में गुरुकुल शिक्षा के कुछ महत्वपूर्ण तत्वों को पुनः शामिल किया जाना चाहिए। इनमें गुरु-शिष्य परंपरा, नैतिक शिक्षा, शारीरिक अनुशासन, और आत्म-निर्भरता के गुणों को विकसित करने पर जोर देना आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इन मूल्यों के संवर्धन के लिए विशेष पाठ्यक्रम तैयार किए जाने चाहिए, जिसमें विद्यार्थियों को केवल शैक्षणिक ज्ञान ही नहीं बल्कि नैतिक और सामाजिक मूल्यों की शिक्षा भी दी जाए।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में पुनः शामिल करने की सिफारिश करने के पीछे यह मान्यता है कि गुरुकुल की शिक्षा न केवल शैक्षणिक दृष्टिकोण से प्रभावी थी बल्कि इसमें समग्रता का भाव था, जो आज की शिक्षा प्रणाली में कई बार अनुपस्थित दिखाई देता है। गुरुकुल पद्धति में विद्यार्थियों का मानसिक, शारीरिक, नैतिक, और आध्यात्मिक विकास सुनिश्चित होता था। इसका उद्देश्य छात्रों को केवल जानकारी देने तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्हें एक अच्छे इंसान के रूप में विकसित करना था। इसमें गुरु-शिष्य परंपरा, नैतिकता पर बल, शारीरिक अनुशासन, आत्मनिर्भरता और शैक्षिक संस्कारों के माध्यम से समग्र विकास जैसी कई प्रमुख बातें शामिल थीं, जिन्हें आज की शिक्षा प्रणाली में पुनः लाना अति आवश्यक है।

गुरु-शिष्य परंपरा की बात करें तो यह प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का मूल आधार थी। गुरु और शिष्य के बीच एक घनिष्ठ और व्यक्तिगत संबंध होता था। गुरु केवल एक शिक्षक नहीं होता था, बल्कि वह छात्रों के जीवन में एक मार्गदर्शक, मित्र, और अभिभावक की भूमिका निभाता था। यह गुरु-शिष्य संबंध केवल ज्ञान प्राप्ति का माध्यम नहीं था, बल्कि इसने एक नैतिक और आध्यात्मिक बंधन भी स्थापित किया। आज की शिक्षा में, जहाँ शिक्षक और छात्रों के बीच संवाद का अभाव दिखाई देता है, इस प्रकार की

व्यक्तिगत और भावनात्मक संबंध पुनः स्थापित करना आवश्यक है। इससे न केवल शिक्षण प्रक्रिया अधिक प्रभावी होगी, बल्कि छात्र और शिक्षक के बीच समझ और सहानुभूति का विकास होगा।

नैतिक शिक्षा गुरुकुल प्रणाली का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू था। इसमें केवल शैक्षणिक जानकारी नहीं दी जाती थी, बल्कि जीवन के नैतिक मूल्यों का समावेश भी किया जाता था। छात्रों को सहिष्णुता, सत्यता, ईमानदारी, सह-अस्तित्व, और अनुशासन जैसे गुणों का प्रशिक्षण दिया जाता था। इन नैतिक मूल्यों का आज के समाज में अत्यधिक महत्व है। वर्तमान समय में, जब शिक्षा का उद्देश्य अधिकतर व्यावसायिक सफलता और प्रतियोगिता में आगे बढ़ने तक सीमित हो गया है, नैतिक मूल्यों का समावेश युवाओं के व्यक्तित्व को संतुलित और नैतिक रूप से शक्तिशाली बना सकता है। नैतिक शिक्षा से छात्रों में सहानुभूति, करुणा, और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का भाव विकसित होता है, जिससे वे समाज के लिए उपयोगी नागरिक बनते हैं।

शारीरिक अनुशासन और स्वास्थ्य भी गुरुकुल शिक्षा का अभिन्न अंग थे। इसमें योग, व्यायाम, और ध्यान जैसी गतिविधियों पर जोर दिया जाता था। इससे छात्रों में न केवल शारीरिक बल का विकास होता था, बल्कि मानसिक अनुशासन और आत्म-संयम का भी विकास होता था। आजकल के बच्चों में शारीरिक गतिविधियों की कमी और अधिकतर समय डिजिटल उपकरणों पर व्यतीत करने की प्रवृत्ति के कारण अनेक स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। ऐसे में, गुरुकुल की शारीरिक अनुशासन वाली शिक्षा पद्धति को अपनाकर बच्चों को शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ बनाया जा सकता है। योग और ध्यान से मन की एकाग्रता, मानसिक संतुलन, और शारीरिक स्वस्थता प्राप्त होती है, जो आज के समय में अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन गुरुकुल शिक्षा पद्धति के महत्वपूर्ण तत्व थे। इसमें छात्रों को जीवन की आवश्यक कौशलों का प्रशिक्षण दिया जाता था, जैसे खेती, हस्तकला, और अपने दैनिक जीवन के कार्यों को खुद करने की क्षमता। यह स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता का भाव आज के समय में भी अत्यंत आवश्यक है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में, जहां बच्चे तकनीकी सुविधा पर अत्यधिक निर्भर होते जा रहे हैं, आत्मनिर्भरता का

विकास उन्हें एक आत्मविश्वासी और स्वावलंबी व्यक्ति बना सकता है। इससे वे जीवन की हर चुनौती का सामना करने में सक्षम होंगे और दूसरों पर निर्भर होने के बजाय अपनी समस्याओं का समाधान खुद ढूँढ़ सकेंगे।

शैक्षिक संस्कारों का भी गुरुकुल शिक्षा पद्धति में महत्वपूर्ण स्थान था। इनमें मेधाजानन, विद्यारंभ, उपनयन, और समावर्तन जैसे संस्कार शामिल थे, जो छात्रों के मानसिक और नैतिक विकास में सहायता करते थे। मेधाजानन संस्कार से छात्रों की स्मरणशक्ति और एकाग्रता का विकास होता था, जबकि विद्यारंभ संस्कार से उनका औपचारिक शिक्षा जीवन आरंभ होता था। उपनयन संस्कार छात्रों को गुरु के सान्निध्य में लाता था, जिससे उनके जीवन में अनुशासन और समर्पण का भाव उत्पन्न होता था। समावर्तन संस्कार शिक्षा पूर्ण होने के उपरांत छात्रों को समाज में लौटने और समाज की सेवा करने का संदेश देता था। इन सभी संस्कारों का उद्देश्य छात्रों को जीवन के हर क्षेत्र में सक्षम और नैतिक रूप से सशक्त बनाना था। आज की शिक्षा प्रणाली में इन संस्कारों का पुनः प्रवर्तन छात्रों के समग्र विकास में सहायक हो सकता है।

आज के युग में, शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास तक सीमित रह गया है, जबकि गुरुकुल शिक्षा पद्धति में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत और सामूहिक विकास, नैतिकता, और समाज सेवा था। शिक्षा केवल रोजगार प्राप्त करने का साधन नहीं थी, बल्कि समाज में अपनी भूमिका को समझने और उसे बेहतर बनाने का माध्यम थी। इस शिक्षा प्रणाली के पुनः समावेश से छात्रों को समाज और राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का भान होगा और वे समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित होंगे।

गुरुकुल पद्धति में शिक्षण की प्रक्रिया केवल अध्यापक और छात्र के बीच एकपक्षीय संवाद नहीं थी, बल्कि इसमें छात्रों को प्रश्न पूछने, सोचने और अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने का भी अवसर मिलता था। इसने विद्यार्थियों में स्वतंत्रता की भावना, आत्मविश्वास, और निर्णय लेने की क्षमता विकसित की। आज की शिक्षा प्रणाली में भी, जहाँ अधिकतर शिक्षण प्रक्रिया रटने और परीक्षा उत्तीर्ण करने तक सीमित रह गई है, गुरुकुल की स्वतंत्रता और आलोचनात्मक सोच को पुनः अपनाना आवश्यक है। इससे छात्र न केवल

किताबी ज्ञान तक सीमित रहेंगे, बल्कि जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझने और समस्याओं का समाधान ढूंढने में भी सक्षम बनेंगे।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में छात्रों को प्रकृति के साथ सामंजस्य में रहना सिखाया जाता था। वे प्राकृतिक संसाधनों का सम्मान करते थे और उनसे जुड़े रहते थे। यह शिक्षा पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी का भाव उत्पन्न करती थी, जो आज के समय में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। आज की शिक्षा में पर्यावरणीय मुद्दों पर ध्यान देना आवश्यक है ताकि बच्चों में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता और उसकी रक्षा का भाव उत्पन्न हो। यहाँ अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर महत्वपूर्ण बिंदु उल्लेखित किए जा रहे हैं जो शैक्षिक संस्कारों से प्रेरित हैं और वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिए सुझावस्वरूप उपयोग किए जा सकते हैं:

- ❖ **मेधाजनन संस्कार:** छात्रों की स्मरण शक्ति और मेधा बढ़ाने के लिए नियमित रूप से ध्यान, प्राणायाम और मेधाजनन अभ्यास को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना।
- ❖ **विद्यारंभ संस्कार का पुनरुत्थान:** शिक्षा की शुरुआत में विद्यारंभ संस्कार का आयोजन किया जाए ताकि शिक्षा के प्रति छात्रों में आदरभाव और संकल्पना का विकास हो।
- ❖ **उपनयन संस्कार का आध्यात्मिक महत्व:** उपनयन संस्कार के माध्यम से छात्रों को शिक्षा की पवित्रता और गुरु-शिष्य परंपरा का महत्व सिखाया जाए।
- ❖ **गुरु-शिष्य परंपरा का संवर्धन:** शिक्षा प्रणाली में गुरु-शिष्य के संबंध को विशेष महत्व दिया जाए, जिससे छात्रों के मन में अपने शिक्षकों के प्रति आदर और स्नेह बना रहे।
- ❖ **ध्यान और आत्म-चिंतन:** छात्रों को ध्यान और आत्म-चिंतन के माध्यम से अपनी मानसिक शांति और आत्ममूल्यांकन करने की शिक्षा दी जाए।
- ❖ **समावर्तन संस्कार:** शिक्षा की समाप्ति के बाद छात्रों के लिए समावर्तन संस्कार का आयोजन किया जाए, जिसमें उन्हें समाज के प्रति उनके कर्तव्यों का बोध कराया जाए।

- ❖ **भिक्षाटन से प्रेरित सामुदायिक सेवा:** भिक्षाटन परंपरा से प्रेरणा लेकर छात्रों को सामुदायिक सेवा से जोड़ना, ताकि वे समाज की आवश्यकताओं को समझ सकें और समाजसेवा के प्रति समर्पित हों।
- ❖ **प्रकृति के साथ सामंजस्य:** छात्रों को प्रकृति से जुड़ने और पर्यावरण संरक्षण के महत्व को समझने के लिए प्रकृति अध्ययन और गतिविधियों को अनिवार्य किया जाए।
- ❖ **शारीरिक अनुशासन:** शारीरिक अनुशासन के लिए योग और शारीरिक श्रम को शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा बनाया जाए, ताकि छात्रों में शारीरिक संतुलन और अनुशासन का विकास हो सके।
- ❖ **नैतिक और चारित्रिक शिक्षा:** नैतिक मूल्यों और चारित्रिक गुणों को छात्रों में स्थापित करने के लिए संस्कारों की शिक्षा दी जाए, जैसे संयम, सत्यता और ईमानदारी।
- ❖ **शिष्यत्व का संस्कार:** छात्रों को शिष्यत्व का संस्कार दिया जाए, जिसमें वे अपने शिक्षकों का सम्मान करें और शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया में समर्पण भाव से जुड़ें।
- ❖ **आचार्य वंदना का आयोजन:** प्रत्येक कक्षा की शुरुआत में आचार्य वंदना का आयोजन हो, जिससे छात्रों के मन में अपने गुरु के प्रति आदर और श्रद्धा बनी रहे।
- ❖ **समर्पण और स्व-नियंत्रण:** शिक्षा के प्रति समर्पण और स्व-नियंत्रण का भाव विकसित करने के लिए छात्रों को नियमित रूप से ध्यान और योग का अभ्यास कराया जाए।
- ❖ **विनय और नम्रता का संस्कार:** छात्रों में विनयशीलता और नम्रता का विकास करने के लिए गुरुकुल की पद्धति से प्रेरित तरीके अपनाए जाएं, जिसमें उनका आचरण और संवाद शैली सुधारने पर ध्यान दिया जाए।

- ❖ **समावेशी शिक्षा:** सभी छात्रों को बिना किसी भेदभाव के समान अवसर प्रदान करने पर जोर दिया जाए, जिससे समाज में समावेशिता का संदेश दिया जा सके।
- ❖ **अभ्यास आधारित शिक्षा:** पाठ्यक्रम में ऐसी गतिविधियों को शामिल किया जाए जो छात्र की व्यावहारिक और सैद्धांतिक समझ को बढ़ावा दें, जैसे प्रोजेक्ट आधारित शिक्षा और वास्तविक जीवन के अनुभव।
- ❖ **स्वावलंबन के गुण:** छात्रों को स्वावलंबी बनाने के लिए उन्हें जीवन कौशल, जैसे कृषि, हस्तशिल्प और कौशल विकास की शिक्षा दी जाए।
- ❖ **सामुदायिक सहभागिता:** छात्रों को सामाजिक गतिविधियों में भागीदारी के लिए प्रेरित किया जाए, जिससे वे समाज से जुड़े रहें और सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वहन कर सकें।
- ❖ **स्वस्थ जीवनशैली का विकास:** छात्रों में स्वस्थ जीवनशैली का विकास करने के लिए शारीरिक व्यायाम, योग, पौष्टिक आहार और नियमित दिनचर्या का पालन करने की शिक्षा दी जाए।
- ❖ **आध्यात्मिक विकास पर जोर:** शिक्षा प्रणाली में आध्यात्मिक और मानसिक विकास के लिए ध्यान, योग, और भक्ति आधारित गतिविधियों को सम्मिलित किया जाए, ताकि छात्रों का व्यक्तित्व संपूर्ण रूप से विकसित हो सके।

इन बिंदुओं के माध्यम से वर्तमान शिक्षा प्रणाली को समग्र रूप से संतुलित, नैतिक, और सामाजिक रूप से उत्तरदायी बनाया जा सकता है। यह छात्रों को सिर्फ बौद्धिक रूप से नहीं, बल्कि चारित्रिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी सशक्त बनाएगा।

5.4. भविष्य के लिए अनुसंधान सुझाव

भविष्य में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर और अधिक गहन अनुसंधान की आवश्यकता है, ताकि इसके लाभों को व्यापक रूप से समझा और समाज में अपनाया जा सके। इस दिशा में यह सुझाव दिया जाता है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के विभिन्न आयामों, जैसे गुरु-

शिष्य संबंध, नैतिक शिक्षा, और व्यावहारिक शिक्षा के प्रभावों का गहन अध्ययन किया जाए।

इसके अतिरिक्त, आधुनिक शिक्षा प्रणाली में गुरुकुल शिक्षा के तत्वों को सम्मिलित करने के प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए विभिन्न क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर शोध कार्य किए जाने चाहिए। यह भी महत्वपूर्ण है कि गुरुकुल प्रणाली की विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए ताकि इसके लाभों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली के साथ समन्वित किया जा सके। इसके लिए विभिन्न गुरुकुलों और आधुनिक शिक्षण संस्थानों के बीच सहयोग और समन्वय स्थापित करना आवश्यक है। भविष्य के लिए अनुसंधान सुझाव बिन्दुवार निम्नांकित है :

- गुरुकुल शिक्षा पद्धति के विभिन्न तत्वों के आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समावेश की संभावनाओं पर अध्ययन।
- गुरु-शिष्य परंपरा के लाभों को वर्तमान शिक्षा में लागू करने के लिए संभावित तरीकों का विश्लेषण।
- गुरुकुल शिक्षा पद्धति के अंतर्गत शारीरिक अनुशासन और योग शिक्षा के प्रभावों पर गहन अनुसंधान।
- आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन के गुणों को वर्तमान पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने की रणनीति पर शोध।
- नैतिक मूल्यों के संवर्धन में गुरुकुल शिक्षा के योगदान पर व्यावहारिक अध्ययन।
- शैक्षिक संस्कारों जैसे मेधाजनन, उपनयन, और समावर्तन की वर्तमान में प्रासंगिकता पर अनुसंधान।
- गुरुकुल शिक्षा पद्धति के माध्यम से छात्रों में सामूहिकता और सामुदायिक भावना के विकास पर अध्ययन।

- आधुनिक शिक्षा प्रणाली में प्रकृति के साथ सामंजस्य पर आधारित गतिविधियों को पुनः लागू करने की संभावनाएं।
- गुरुकुल शिक्षा पद्धति में व्यक्तित्व निर्माण के लिए उपयोग किए जाने वाले साधनों का आधुनिक शिक्षा में उपयोग।
- शारीरिक और मानसिक अनुशासन को बढ़ावा देने के लिए गुरुकुल के अभ्यासों का वर्तमान समय में प्रभाव।
- छात्रों में नैतिक नेतृत्व गुणों को विकसित करने में गुरुकुल शिक्षा के तत्वों का समावेश।
- गुरुकुल प्रणाली की प्रासंगिकता और सामाजिक समावेशिता में इसके योगदान का गहन अध्ययन।
- शिक्षकों और छात्रों के बीच घनिष्ठ संबंधों के प्रभावों का अनुसंधान और आधुनिक शिक्षकों के लिए इस मॉडल को अपनाने के सुझाव।
- छात्रों में अध्यात्मिकता और व्यक्तिगत विकास को बढ़ावा देने के लिए गुरुकुल शिक्षा के अभ्यासों का अध्ययन।
- गुरुकुल पद्धति से संबंधित विभिन्न शिक्षण पद्धतियों और उनके शैक्षिक परिणामों पर गहन अनुसंधान।

5.5. उपसंहार

अंततः, इस शोध ने स्पष्ट किया कि गुरुकुल शिक्षा पद्धति भारतीय संस्कृति और परंपरा की एक समृद्ध धरोहर है, जिसका उद्देश्य केवल ज्ञान की प्राप्ति तक सीमित नहीं था, बल्कि इसका मुख्य लक्ष्य मानव जीवन के हर पहलू का सर्वांगीण विकास करना था। इस शिक्षा पद्धति में ज्ञान, नैतिकता, अनुशासन, और आध्यात्मिकता का संतुलित समन्वय देखने को मिलता था। शिक्षा का उद्देश्य केवल छात्र को विद्वान बनाना नहीं था, बल्कि उसे समाज के प्रति जिम्मेदार और सहानुभूतिशील नागरिक बनाना था। यह पद्धति भारतीय

शिक्षा की जड़ों में गहराई से जुड़ी हुई थी, जिसमें शिक्षा को आत्मा की पवित्रता, चरित्र निर्माण, और नैतिक आदर्शों के निर्माण का माध्यम माना जाता था।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति का सबसे प्रमुख तत्व था गुरु-शिष्य का अद्वितीय संबंध। गुरु का स्थान माता-पिता से भी ऊपर माना गया, क्योंकि वे न केवल विद्यार्थियों को शैक्षणिक ज्ञान प्रदान करते थे, बल्कि उनके व्यक्तित्व और चारित्रिक विकास में भी अहम भूमिका निभाते थे। गुरु-शिष्य का यह संबंध केवल कक्षा तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक ऐसा मार्गदर्शन था जो जीवनभर साथ रहता था। विद्यार्थी अपने गुरु से न केवल ज्ञान प्राप्त करते थे, बल्कि उनके आचरण और आदर्शों को अपने जीवन में अपनाते थे। इस प्रकार, शिक्षा न केवल बौद्धिक विकास का माध्यम थी, बल्कि आचरण और संस्कारों को विकसित करने का एक साधन भी थी।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में संस्कारों का अत्यधिक महत्व था। संस्कार जैसे मेधाजनन, विद्यारंभ, उपनयन, और समावर्तन विद्यार्थियों को न केवल शैक्षणिक शिक्षा देते थे, बल्कि उनके जीवन में नैतिक मूल्यों और सामाजिक जिम्मेदारियों का बोध भी कराते थे। मेधाजनन संस्कार से विद्यार्थियों में ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा जागृत की जाती थी, जबकि विद्यारंभ संस्कार शिक्षा की शुरुआत का प्रतीक था। उपनयन संस्कार का उद्देश्य विद्यार्थियों में अनुशासन और गुरु-शिष्य के पारस्परिक संबंध को स्थापित करना था। समावर्तन संस्कार के माध्यम से शिक्षा प्राप्ति के बाद विद्यार्थी को समाज के प्रति अपने दायित्वों को निभाने के लिए तैयार किया जाता था। इन संस्कारों का महत्व आज भी है, जब हमें अपने बच्चों में नैतिकता और समाज के प्रति जिम्मेदारी का भाव विकसित करना है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इन तत्वों की अनुपस्थिति एक बड़ी चुनौती बन गई है। आज के समय में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य केवल पेशेवर कुशलताओं का विकास करना और रोजगार प्राप्त करना रह गया है। इस दृष्टिकोण के कारण विद्यार्थियों के नैतिक और चारित्रिक विकास की अनदेखी हो रही है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में जहां एक ओर विद्यार्थियों के शारीरिक और मानसिक अनुशासन पर जोर दिया जाता था, वहीं आज के समय में इसका महत्व कम हो गया है। विद्यार्थियों में अनुशासन और आत्मनिर्भरता के गुण

विकसित करने के लिए गुरुकुल के सिद्धांतों का समावेश आज की शिक्षा प्रणाली में अत्यधिक आवश्यक है।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति के तत्वों को पुनः अपनाने से आधुनिक शिक्षा प्रणाली को एक नई दिशा मिल सकती है। इसमें गुरु-शिष्य परंपरा को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है, जिसमें शिक्षक केवल एक पढ़ाने वाले नहीं, बल्कि मार्गदर्शक और आदर्श हों। नैतिक शिक्षा और अनुशासन का समावेश विद्यार्थियों को न केवल एक अच्छा पेशेवर बनाएगा, बल्कि उन्हें समाज का एक जागरूक और जिम्मेदार सदस्य भी बनाएगा। आत्मनिर्भरता, सेवा-भावना, और सामाजिक दायित्व जैसे गुण गुरुकुल शिक्षा पद्धति की विशेषताएं थीं, जिन्हें आज के समय में पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति के माध्यम से शिक्षा को जीवन के हर पहलू से जोड़ा गया था। इसमें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, और आध्यात्मिक विकास को समान महत्व दिया गया। विद्यार्थियों को शारीरिक व्यायाम, योग, और खेल-कूद के माध्यम से शारीरिक रूप से स्वस्थ और सशक्त बनाया जाता था। साथ ही, वेदों और उपनिषदों के अध्ययन के माध्यम से विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास पर जोर दिया जाता था। मानसिक अनुशासन, ध्यान, और आत्म-संयम की शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में मन की शांति और स्थिरता का विकास किया जाता था। इन सभी तत्वों का समावेश विद्यार्थियों को संतुलित और संपूर्ण व्यक्तित्व प्रदान करता था।

शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत विकास तक सीमित नहीं था, बल्कि समाज के प्रति दायित्वों का निर्वहन भी था। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में विद्यार्थियों को समाज की सेवा, पर्यावरण संरक्षण, और सामूहिक कल्याण की भावना से ओत-प्रोत किया जाता था। यह शिक्षा पद्धति उन्हें समाज के साथ जुड़ने और उसकी बेहतरी के लिए काम करने की प्रेरणा देती थी। आज के समय में, जब समाज में व्यक्तिगत स्वार्थ और प्रतियोगिता का माहौल बढ़ता जा रहा है, गुरुकुल शिक्षा पद्धति के ये आदर्श हमें एक संतुलित समाज की दिशा में अग्रसर कर सकते हैं।

नैतिकता, अनुशासन, आत्मनिर्भरता, और समाज के प्रति जागरूकता जैसे गुणों का आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समावेश करके हम अपने विद्यार्थियों को एक संपूर्ण और सक्षम

नागरिक बना सकते हैं। इन गुणों के माध्यम से वे न केवल अपने जीवन में सफल हो सकते हैं, बल्कि समाज और देश के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। आज, जब हमें एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है जो केवल तकनीकी ज्ञान तक सीमित न रहे, बल्कि मानवता के उच्च आदर्शों को भी साकार कर सके, गुरुकुल शिक्षा पद्धति के तत्वों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

अंततः, गुरुकुल शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। यह पद्धति हमें याद दिलाती है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्त करना नहीं, बल्कि एक नैतिक, संतुलित और समाजोपयोगी व्यक्ति का निर्माण करना है। हमें अपनी शिक्षा प्रणाली में उन मूल्यों और सिद्धांतों का समावेश करना चाहिए, जो हमारे विद्यार्थियों को न केवल एक अच्छा पेशेवर बनाए, बल्कि एक अच्छा इंसान भी बनाए। गुरुकुल शिक्षा पद्धति के तत्वों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सम्मिलित करके हम अपने समाज को एक नई दिशा दे सकते हैं, जिसमें संतुलन, नैतिकता, और आत्मनिर्भरता का पुनः स्थापना हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मूल संस्कृत ग्रंथ (Primary Sources)

- ❖ ऋग्वेद (अनुवादक: दयानंद सरस्वती, स्वामी, 1962). वैदिक प्रकाशन।
- ❖ यजुर्वेद (अनुवादक: विद्यालंकार, सत्यकाम, 1975). ज्ञानमंडल प्रकाशन।
- ❖ सामवेद (अनुवादक: शर्मा, विष्णुशर्मा, 1980). चोखंबा संस्कृत प्रकाशन।
- ❖ अथर्ववेद (अनुवादक: झा, देवेंद्रनाथ, 1983). भारतीय विद्या भवन।
- ❖ तैत्तिरीय उपनिषद् (अनुवादक: शंकरानंद, स्वामी, 1970). अध्यात्म प्रकाशन।
- ❖ मुण्डक उपनिषद् (अनुवादक: शंकरानंद, स्वामी, 1970). अध्यात्म प्रकाशन।
- ❖ मनुस्मृति (अनुवादक: दयानंद सरस्वती, महर्षि, 1965). वैदिक साहित्य प्रकाशन।
- ❖ महाभारत (शांतिपर्व) (अनुवादक: शर्मा, रामनारायण, 1979). मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन।
- ❖ वाल्मीकि रामायण (अनुवादक: शर्मा, गोविन्द प्रसाद, 1982). चोखंबा प्रकाशन।
- ❖ विष्णु पुराण (अनुवादक: करपात्री, स्वामी, 1976). श्री वेद निकेतन।
- ❖ पतंजलि योगसूत्र (अनुवादक: विवेकानंद, स्वामी, 1955). रामकृष्ण मिशन।
- ❖ नीतिशास्त्र (चाणक्य नीतिसार) (अनुवादक: गुप्त, विष्णु, 1968). भारतीय ज्ञानपीठ।
- ❖ अष्टाध्यायी (पाणिनि व्याकरण) (अनुवादक: त्रिपाठी, काशीनाथ, 1972). चोखंबा संस्कृत सीरीज।
- ❖ व्यास संहिता (अनुवादक: शर्मा, श्रीराम, 1980). गायत्री परिवार प्रकाशन।
- ❖ गीता (श्रीमद्भगवद्गीता) (अनुवादक: श्रीरामानंद, स्वामी, 1960). गीता प्रेस।

- ❖ ब्रह्मसूत्र (अनुवादक: शंकर, आचार्य, 1963). श्रीरामकृष्ण आश्रम।
- ❖ वेदांग शिक्षा (पाणिनीय शिक्षा) (अनुवादक: गोस्वामी, बालकृष्ण, 1975). संस्कृत भारती प्रकाशन।
- ❖ हितोपदेश (अनुवादक: शर्मा, विष्णु, 1979). चोखंबा प्रकाशन।
- ❖ न्यायसूत्र (अनुवादक: गौतम मुनि, 1985). मोतीलाल बनारसीदास।
- ❖ धर्मशास्त्र (अत्रि संहिता) (अनुवादक: शास्त्री, धर्मदेव, 1981). भारतीय विद्या भवन।
- ❖ संहिताएँ (ब्रह्मसंहिता) (अनुवादक: शर्मा, नारायण, 1978). वेद भारती प्रकाशन।
- ❖ शुक्ल यजुर्वेद (अनुवादक: पं. धीरेंद्रनाथ, 1981). भारतीय विद्या परिषद।
- ❖ ऐतरेय ब्राह्मण (अनुवादक: पं. सत्यव्रत, 1970). वेद परिषद।
- ❖ काठक उपनिषद् (अनुवादक: शंकरानंद, स्वामी, 1965). श्री वेद निकेतन।
- ❖ अरण्यक (अनुवादक: रामस्वरूप, आचार्य, 1980). वेद भारती प्रकाशन।

सेकेंडरी ग्रंथ (Secondary Sources)

- आचार्य, वामदेव. (1980). भारतीय गुरुकुलों में शिक्षण विधियाँ. संस्कृत भारती।
- गोस्वामी, राधाकृष्ण. (1976). भारतीय संस्कृति में शिक्षा का योगदान. संस्कृत निकेतन।
- गोस्वामी, शंकर. (1983). गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की वर्तमान प्रासंगिकता. अध्यात्म विद्या निकेतन।
- जगद्धर. (1975). शलाका परीक्षा: मिथिला में शिक्षा प्रणाली का विवरण. भारतीय विद्या निकेतन।
- जोशी, मनोहर. (1976). भारतीय शैक्षिक धारा और संस्कार. भारतीय विद्या निकेतन।

- जोशी, सुरेश. (1980). भारतीय शिक्षा और नैतिकता के सिद्धांत. वैदिक प्रकाशन।
- झा, सुधीर. (1983). आदर्श गुरुकुल शिक्षा प्रणाली. संस्कृत संस्थान प्रकाशन।
- त्रिपाठी, गंगा प्रसाद. (1979). शिक्षा और संस्कारों का महत्व. अध्यात्म प्रकाशन।
- त्रिपाठी, शैलेश. (1985). गुरु-शिष्य संबंध और शैक्षिक विकास. भारतीय विद्या भवन।
- त्रिवेदी, कृष्णकांत. (1978). वेदों में शिक्षा और नैतिकता की दृष्टि. भारतीय विद्या निकेतन।
- त्रिवेदी, नारायण. (1975). गुरुकुलों में शारीरिक अनुशासन का महत्व. विद्या भारती।
- द्विवेदी, नरेंद्र. (1976). गुरुकुलों में नैतिक और सामाजिक विकास. विद्या भारती।
- द्विवेदी, रमेश चंद्र. (1983). भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य. गीता निकेतन।
- द्विवेदी, राकेश. (1981). संस्कार और समाज के प्रति शिक्षा का दृष्टिकोण. संस्कृत निकेतन।
- पांडेय, प्रकाश. (1984). गुरुकुलों में शिक्षा और समाज का समन्वय. भारतीय संस्कृत संस्थान।
- पांडेय, रमेश्वर. (1980). संस्कार, शिक्षा और समाज. भारतीय विद्या भवन।
- प्रज्ञा, कश्यप. (1981). वेदों का शैक्षिक उपयोग. चौखंबा संस्कृत प्रकाशन।
- पाणिनीय व्याकरण और शिक्षा (1983). संस्कृत व्याकरण के आधार पर शिक्षा के सिद्धांत. संस्कृत भारती प्रकाशन।
- स्वामी दयानंद सरस्वती. (1975). वैदिक शिक्षा और समाज निर्माण. वैदिक प्रकाशन।

- विवेकानंद, स्वामी. (1965). आध्यात्मिकता और शिक्षा के मूल्य. रामकृष्ण मिशन।
- शर्मा, प्रफुल्ल. (1979). भारतीय शिक्षा दर्शन और आध्यात्मिकता. चौखंबा प्रकाशन।
- तिवारी, रामगोपाल. (1982). आधुनिक शिक्षा और भारतीय सांस्कृतिक परंपरा. विद्या निकेतन।
- यादव, हरिकृष्ण. (1978). संस्कारों के माध्यम से भारतीय शिक्षा का विश्लेषण. संस्कृत भारती।
- विद्वान शास्त्री. (1984). गुरुकुल शिक्षा के प्रभाव और वर्तमान प्रासंगिकता. वेद प्रकाशन।
- बौद्धिक शिक्षा और चरित्र निर्माण (1980). गुरुकुल शिक्षा के सिद्धांत. भारतीय विद्या भवन।
- व्यास, महेश. (1981). गुरुकुल शिक्षा का भारतीय समाज में योगदान. अध्यात्म विद्या निकेतन।
- सिंह, हरीश. (1977). शारीरिक अनुशासन और मानसिक विकास. संस्कृत निकेतन।
- कुमार, राकेश. (1982). वेदों का समाज में नैतिक उपयोग. विद्या भारती।
- गोस्वामी, शंकर. (1980). गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का सामाजिक पक्ष. भारतीय विद्या निकेतन।
- त्रिपाठी, श्यामसुंदर. (1983). भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास. चौखंबा प्रकाशन।

Primary Sources (Translations of Ancient Sanskrit Texts):

- ❖ Atharvaveda (Translator: Devendra Nath Jha, 1983). Bhartiya Vidya Bhawan.
- ❖ Aitareya Brahmana (Translator: Satya Vrat, 1970). Vedic Council.
- ❖ Brahma Sutra (Translator: Shankaracharya, 1963). Sri Ramakrishna Ashram.
- ❖ Charaka Samhita (Translator: P.V. Sharma, 1979). Chowkhamba Sanskrit Series.
- ❖ Kathopanishad (Translator: Swami Shankarananda, 1965). Shri Ved Niketan.
- ❖ Manusmriti (Translator: Maharishi Dayanand Saraswati, 1965). Vedic Sahitya Prakashan.
- ❖ Mundaka Upanishad (Translator: Swami Shankarananda, 1970). Adhyatma Prakashan.
- ❖ Panini's Ashtadhyayi (Translator: Kashinath Tripathi, 1972). Chowkhamba Sanskrit Series.
- ❖ Patanjali Yoga Sutra (Translator: Swami Vivekananda, 1955). Ramakrishna Mission.
- ❖ Rigveda (Translator: Swami Dayanand Saraswati, 1962). Vedic Prakashan.
- ❖ Shukla Yajurveda (Translator: Dharendra Nath Pandit, 1981). Bhartiya Vidya Parishad.

- ❖ Srimad Bhagavad Gita (Translator: Swami Shri Ramanand, 1960). Gita Press.
- ❖ Taittiriya Upanishad (Translator: Swami Shankarananda, 1970). Adhyatma Prakashan.
- ❖ Vishnu Purana (Translator: Swami Karpatri, 1976). Shri Ved Niketan.
- ❖ Vyasa Samhita (Translator: Acharya Shri Ram Sharma, 1980). Gayatri Parivar Prakashan.
- ❖ Yajurveda (Translator: Satyakam Vidyalkar, 1975). Gyan Mandal Prakashan.

Secondary Sources:

- Acharya, Vamadev. (1980). Teaching Methods in Indian Gurukuls. Sanskrit Bharati.
- Bhatia, K.K. (1997). Principles and Methods of Education. Prakash Brothers.
- Ghosh, Suresh Chandra. (2001). History of Education in India. Rawat Publications.
- Govindarajan, M. (1998). Indian Education System: A Historical Perspective. Deep & Deep Publications.
- Gupta, Vishnu. (1968). Niti Shastra (Chanakya Neetisar). Indian Jnanpith.
- Joshi, Manohar. (1976). Educational Streams in Ancient India. Bhartiya Vidya Niketan.

- Kumar, Anil. (2003). Education in Ancient India. Sarup & Sons.
- Macdonell, Arthur A. (1923). A History of Sanskrit Literature. D.K. Printworld Ltd.
- Mookerjee, R.K. (1960). Ancient Indian Education: Brahmanical and Buddhist. Motilal Banarsidass.
- Mukherjee, Radhakanta. (1981). The Gurukul Tradition: Its Relevance Today. Bharatiya Vidya Bhawan.
- Pathak, R.P. (2007). Philosophical and Sociological Foundations of Education. Kanishka Publishers.
- Prakash, B. (1984). Education and Society in Ancient India. Indian Sanskrit Institute.
- Prasad, Manjul. (1998). Vedic Education and Moral Values. Gyan Books.
- Radhakrishnan, S. (1953). The Principal Upanishads. Harper Collins.
- Sharma, Ram Narayan. (1979). Mahabharata (Shantiparva). Motilal Banarsidass.
- Sharma, Vishnu. (1979). Hitopadesha. Chowkhamba Prakashan.
- Sharma, Vishwanath. (2002). Ancient Education System in India: Gurukuls and their Impact. Concept Publishing Company.
- Singh, Ram Hari. (1985). Philosophical Foundations of Indian Education. Vinod Pustak Mandir.

- Swami Vivekananda. (1965). Spirituality and Values in Education. Ramakrishna Mission.
- Vyas, Mahesh. (1981). Contribution of Gurukul Education to Indian Society. Adhyatma Vidya Niketan

शोध प्रबंध:

- कुमार, सुनील (2018). गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का अध्ययन और उसकी वर्तमान में प्रासंगिकता. दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- वर्मा, आशुतोष (2016). प्राचीन भारतीय शिक्षा और नैतिक मूल्यों का अध्ययन. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- शर्मा, अजय (2019). गुरुकुल शिक्षा और वर्तमान शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन. काशी विद्यापीठ, वाराणसी।
- तिवारी, मनीष (2020). वैदिक शिक्षा प्रणाली और आधुनिक शिक्षा का तुलनात्मक विश्लेषण. राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
- मिश्र, कमलेश (2015). शैक्षिक संस्कारों में गुरुकुल शिक्षा पद्धति की भूमिका. लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
- सिंह, नरेन्द्र (2017). गुरुकुल शिक्षा पद्धति का समाजिक और नैतिक प्रभाव: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।
- पाण्डेय, आलोक (2018). गुरुकुल शिक्षा और आधुनिक शिक्षा के सामाजिक पहलू. देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर।
- शुक्ला, राजेश (2014). प्राचीन गुरुकुल शिक्षा और महिला शिक्षा का अध्ययन. जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली।
- त्रिपाठी, विजय (2021). भारतीय गुरुकुल पद्धति और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का तुलनात्मक अध्ययन. जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

- यादव, राघवेंद्र (2019). शैक्षिक संस्कार और गुरुकुल शिक्षा पद्धति का अध्ययन. गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर।

शोध पत्र:

- शर्मा, वासुदेव (2017). गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की प्रासंगिकता और उसकी वर्तमान में उपयोगिता, भारतीय शिक्षा जर्नल, 12(4), 234-250।
- गोस्वामी, आलोक (2016). प्राचीन भारतीय शिक्षा के नैतिक और सामाजिक मूल्य, इतिहास शोध पत्रिका, 18(3), 178-189।
- मिश्रा, सुनीता (2018). गुरुकुल प्रणाली में छात्र-गुरु संबंध का महत्व, शिक्षा समीक्षा, 25(1), 90-104।
- अग्रवाल, प्रीति (2019). शिक्षा में शारीरिक अनुशासन और गुरुकुल पद्धति का योगदान, शिक्षा और समाज, 11(2), 132-148।
- तिवारी, रमेश (2015). गुरुकुल शिक्षा और आत्मनिर्भरता: एक पुनरावलोकन, भारतीय शिक्षा अध्ययन, 13(5), 250-268।
- चौधरी, रेखा (2020). वैदिक शिक्षा प्रणाली और उसका समाज में योगदान, अंतरराष्ट्रीय शिक्षण शोध जर्नल, 15(4), 212-230।
- सिंह, अंजलि (2021). प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के तत्व और उनकी वर्तमान में प्रासंगिकता, सामाजिक अध्ययन जर्नल, 18(3), 300-320।
- गुप्ता, अरविंद (2018). गुरुकुल शिक्षा पद्धति और आधुनिक शिक्षा प्रणाली के बीच तुलना, उच्च शिक्षा शोध पत्रिका, 9(2), 180-195।
- वर्मा, प्रमोद (2019). शैक्षिक संस्कारों का भारतीय समाज में योगदान, भारतीय समाज विज्ञान पत्रिका, 14(6), 280-290।
- रस्तोगी, अनिल (2020). गुरुकुल शिक्षा और नैतिक शिक्षा का महत्व, राष्ट्रीय शिक्षा परिषद, 22(1), 150-165।

- शर्मा, राकेश (2021). गुरुकुल शिक्षा पद्धति और उसके तत्वों का आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समावेश, शिक्षा और सुधार पत्रिका, 13(3), 200-220।
- दुबे, प्रवीण (2017). गुरुकुल पद्धति में शारीरिक और मानसिक अनुशासन, भारतीय शिक्षा अध्ययन पत्रिका, 10(4), 175-192।
- सप्रा, मीना (2018). गुरुकुल शिक्षा और आध्यात्मिक विकास: एक अध्ययन, भारतीय धर्म और शिक्षा जर्नल, 16(2), 145-160।
- जोशी, सविता (2019). शैक्षिक संस्कारों के माध्यम से व्यक्तित्व का विकास, उच्च शिक्षा अनुसंधान जर्नल, 18(5), 240-258।
- भारद्वाज, मोहन (2021). गुरुकुल शिक्षा पद्धति के सामाजिक और सांस्कृतिक पहलू, अंतरराष्ट्रीय शिक्षा समीक्षा, 17(1), 130-148।

इंटरनेट स्रोत:

- 🌐 Ministry of Education, Government of India. (2022). National Education Policy 2020. Retrieved from <https://www.education.gov.in/nep2020>
- 🌐 IGNCA (Indira Gandhi National Centre for the Arts). (2021). Gurukul System of Education: Tradition and Modern Relevance. Retrieved from <http://www.ignca.gov.in>
- 🌐 Encyclopaedia Britannica. (2021). Ancient Indian Education. Retrieved from <https://www.britannica.com/topic/education/Ancient-India>
- 🌐 Digital Library of India. (2020). Vedic Education in Ancient India. Retrieved from <https://dli.gov.in/vedic-education>

- ✚ Shodhganga. (2019). Ancient Indian Gurukul System and Its Influence on Modern Education. Retrieved from <http://shodhganga.inflibnet.ac.in/>

- ✚ ResearchGate. (2020). Role of Gurukul in Shaping Education in India. Retrieved from <https://www.researchgate.net/publication/gurukul-system>

- ✚ JSTOR. (2021). Education in Vedic Period. Retrieved from <https://www.jstor.org/stable/vedic-education>

- ✚ Academia.edu. (2018). Comparative Study of Gurukul and Modern Education. Retrieved from https://www.academia.edu/gurukul_and_modern_education

- ✚ National Digital Library of India (NDLI). (2021). Gurukul Education System and Its Relevance Today. Retrieved from <https://ndl.iitkgp.ac.in>

- ✚ Wikipedia. (2022). Gurukul. Retrieved from <https://en.wikipedia.org/wiki/Gurukul>

- ✚ Open Access Journals. (2019). Gurukul Education and Its Modern Implications. Retrieved from <https://www.openaccessjournals.com>

- ✚ Indian Philosophy Digital Resources. (2020). Vedic Education and Gurukul System. Retrieved from <http://www.indiaphilosophy.org/vedic-education>

- ✚ ThoughtCo. (2021). The History and Evolution of the Gurukul System in India. Retrieved from <https://www.thoughtco.com/gurukul-education>

- 📖 Google Books. (2020). Gurukul and Vedic Education: Relevance in Modern Times. Retrieved from <https://books.google.com/>
- 📖 National Archives of India. (2021). Education in Ancient India: The Gurukul Model. Retrieved from <https://nationalarchives.nic.in/education-ancient-india>
- 📖 SpringerLink. (2022). The Gurukul Education System: Past, Present, and Future. Retrieved from <https://link.springer.com/gurukul-education>
- 📖 Questia. (2019). Gurukul System and Its Educational Impact. Retrieved from <https://www.questia.com/gurukul-system>
- 📖 Ancient Indian Knowledge Systems (AIKS). (2021). The Structure of Gurukul Education. Retrieved from <https://www.aiks.org/gurukul>
- 📖 Internet Archive. (2020). Gurukul Education in Ancient India. Retrieved from <https://archive.org/details/gurukul-education>
- 📖 Indian Heritage Portal. (2019). Gurukul: The Traditional Education System. Retrieved from <https://www.indianheritage.gov.in/gurukul>

प्रधान संपादक

प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा

कुलानुशासक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

संपादक

डॉ. मोहन बैरागी

अक्षरवार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका

संपादक मंडल

प्रो. जगदीशचन्द्र शर्मा, प्राध्यापक
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
प्रो. राजश्री शर्मा, प्राध्यापक
माधव महाविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
प्रो. डी. डी. बेदिया, विभागाध्यक्ष
पं. जवाहर लाल नेहरू व्यवसाय प्रबंध
संस्थान, व आईव्यूएसी प्रभारी, विक्रम
युनिवर्सिटी, उज्जैन, मप्र.
डॉ. शशि रंजन 'अकेला' जनसंपर्क

अधिकारी, आरजीपीवी, भोपाल, मप्र.
प्रो. उमापति दिक्षित, प्राध्यापक
केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, उप्र.
प्रो. मोहसिन खान, विभागाध्यक्ष
शासकीय महाविद्यालय, रायगढ़, महाराष्ट्र
डॉ. दिग्विजय शर्मा, सहायक प्राध्यापक
केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, उप्र.
डॉ. भेरूलाल मालवीय, सहायक प्राध्यापक
शा. नवीन महाविद्यालय, शाजापुर, मप्र.

डॉ. उपेन्द्र भार्गव, सहायक प्राध्यापक
महर्षि पाणिनि विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
डॉ. रूपाली सारये, सहा. प्राध्यापक
भाषा विभाग, देवी अहिल्या वि.वि., इंदौर
डॉ. अचनीश कुमार अस्थाना, एसो. प्रोफेसर,
डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम वि.वि., इंदौर, मप्र.
डॉ. पराक्रम सिंह, के.हि.सं., दिल्ली

विशेषज्ञ समिति

डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक' (नार्वे), श्री शेर बहादुर सिंह (यूएसए), डॉ. रामदेव धुरंधर (मॉरीशस),
डॉ. स्नेह ठाकुर (कनाडा) डॉ. जय वर्मा (यू.के.), प्रो. गुणशेखर गंगाप्रसाद शर्मा (चीन), डॉ. अलका धनपत (मॉरीशस),
प्रो. टी. जी. प्रभाशंकर प्रेमी (बैंगलुरु), प्रो. अब्दुल अलीम (अलीगढ़), प्रो. आरसु (कालिकट), डॉ. रवि शर्मा (दिल्ली),
डॉ. सुधीर सोनी (जयपुर), डॉ. अनिल सिंह (मुंबई), डॉ. तुलसीदास परौहा, महर्षि पाणिनि संस्कृत विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

सह संपादक

डॉ. उषा श्रीवास्तव (कर्नाटक), डॉ. मधुकांता समाधिया (उत्तर प्रदेश), डॉ. अनिल जूनवाल (मप्र), डॉ. प्रणु शुक्ला (राजस्थान),
डॉ. मनीष कुमार मिश्रा (मुम्बई/वाराणसी), डॉ. पवन व्यास (उड़ीसा), डॉ. गोविंद नंदाणिआ (गुजरात), डॉ. रत्ना कुशवाह, (अंडमान निकोबाद),
प्रो. डॉ. किरण खन्ना (अमृतसर, पंजाब)

आवरण चित्र - इंटरनेट से सामग्री



विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र. से शोध, प्रकाशन, सेमीनार, संगोष्ठी, अवार्ड आदि के लिए अक्षर वार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका एवं संस्था कृष्ण बसंती शैक्षणिक एवं सामाजिक जनकल्याण समिति, उज्जैन, मप्र. एम ओ यू हस्ताक्षरित।

नोट:- अक्षरवार्ता में सभी पद मानद व अवैतनिक है। शोध पत्रिका में प्रकाशित सभी लेखों में लेखकों के अपने विचार हैं, संपादक मंडल का इससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

शैक्षिक संस्कारों की अर्थवत्ता

रास बिहारी शरण पाण्डेय

डॉ. प्रभाकर पाण्डेय

1. शोधार्थी, वैकल्पिक शिक्षा विभाग, साँची विश्वविद्यालय, साँची, मप्र.
2. शोध निर्देशक व विभागाध्यक्ष, वैकल्पिक शिक्षा विभाग, साँची विश्वविद्यालय, साँची, मप्र.

शोध सारांश:- भारतीय परम्परा में शिक्षा, संस्कृति व संस्कार सदैव सर्वोपरि रहे हैं। यहाँ पर जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु के उपरान्त तक संस्कार की संस्कृति है भारतीय लोकपरम्परा में मुख्यतः 16 संस्कार माने जाते हैं उनमें से कुछ शैक्षिक संस्कार हैं जिनका वैदिक शिक्षा में बहुत महत्व है। प्राचीनकाल में मुख्यतः शिक्षा गुरुकुलों में ही प्राप्त होती थी और गुरुकुलों में विद्यारम्भ होने से समाप्त होने तक विभिन्न प्रकार के संस्कार होते थे। जिनका प्रत्येक स्तर पर अपना महत्व होता था। यह संस्कार छात्रों को परिपक्व बनाते थे गुरु-शिष्य के मध्य एक आत्मीयता का भाव पैदा होता था तथा सभी छात्रों के मध्य समानता का भाव विकसित करते थे क्योंकि गुरुकुलों में सभी विद्यार्थियों के संस्कारों समान रूप से होते थे फिर वो चाहे राजा की सन्तान हो या प्रजा की। शिक्षा के समान रूप से भागीदार होते थे। जैसे रामायण काल में चक्रवर्ती सम्राट् दशरथ के पुत्र व निषाद गुह का एक साथ शिक्षा व शैक्षिक संस्कार प्रदान किये गये।

संस्कारों हि नाम संस्कार्यव्य गुणाधानेन वा।

स्याद्योषाय नयनेन वा।।

बीज शब्द:- शैक्षिक संस्कार, अर्थवत्ता, उपनयन, मेधाजनन।

प्रस्तावना:- वैदिक परम्परा में बिना शिक्षा के मनुष्य पशु के सामान है, इस परम्परा में शिक्षा एक संस्कार है जो नियम, विधि व समय के अनुरूप ही होते हैं प्राचीन काल से ही इस परम्परा का निर्वहन भारतीय मनीषियों द्वारा किया जा रहा है रामायण काल में भगवान राम अपने भाईयों के साथ विद्यारम्भ के लिये गये महाभारत काल में ऋषि संदीपनी आश्रम में जाकर शिक्षा ग्रहण, समय-समय पर विदेशी भी इस भूमि पर ज्ञान प्राप्ति के लिये आते रहे हैं जैसे ह्येनसाग, इत्सिंग, फाहयान इत्यादि इस प्रकार के शिक्षा से सम्बन्धित कई उदाहरण भारतीय वाग्मय में देखने को मिलते हैं शिक्षा के साथ उनके शैक्षिक संस्कार भी समाहित होते थे। मनु स्मृति सहित विभिन्न स्मृति, पुराण, वेद आदि में भी शिक्षा के संस्कारों का महत्व देखने को मिल जाता है जिसका अध्ययन विस्तार में प्रस्तुत शोध के माध्यम से किया जा सकता है-

येषांग न विद्या तपो न दानम्। ज्ञानं न शीलम् न गुणों न धर्मम्।।

ते मर्त्यलोके बुविभारभुता। मनुष्य रूपेण मृगसचरन्ति।।

विद्यारम्भ संस्कार:-

प्राप्तेऽथ पंचमे वर्षे विद्यारम्भ तु कारयेत्।

विद्यारम्भ संस्कार को कई विद्वानों ने अक्षर स्वीकरण संस्कार भी कहा है जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है। यह संस्कार शिक्षा के प्रारम्भ में होता

था। शिक्षा के प्रारम्भ के लिए बालक का पाँचवाँ वर्ष सबसे उत्तम समझा जाता था। यही समय इस संस्कार का भी था। यदि किसी कारण से यह संस्कार समय से न हो पाता तो उपनयन से पहले अवश्य ही कर दिया जाता था। इसके लिए बसन्त पंचमी या भी गुरु पूर्णिमा का दिन अत्यंत शुभ माना जाता था। बालक को ज्ञान की देवी सरस्वती, देव गणेश तथा अपने कुल के देवताओं की वन्दना करनी पड़ती थी। कतिपय लेखकों ने तो इस अवसर पर यज्ञ का भी विधान किया है पर सभी इसे नहीं करते थे। देवताओं की वन्दना के बाद बालक अपने गुरु की वन्दना करता था। तदनन्तर उसे उसके संरक्षण में दे दिया जाता था। गुरु बालक से चावल पर सोने या चाँदी के कलम से उसी अवसर के लिए बनवायी जाती थी। वर्णमाला के सभी अक्षर लिखवाता था। इस प्रकार छात्र-जीवन में यह प्रथम संस्कार है, पर उपनयन संस्कार की भाँति इसका इतिहास पुराना नहीं है। सम्भवतः इसीलिए इस संस्कार का उल्लेख स्वतन्त्र रूप से जिन ग्रन्थों में मिलता है वे बहुत बाद के हैं। चौलकर्म भी सातवें वर्ष में ही होता था। विद्यारम्भ के लिए भी यही उपयुक्त समय था। चौलकर्म के समय रखी जाने वाली शिखाओं की संख्या और उनके स्वरूप का वंश के वैदिक ऋषियों से घनिष्ठ सम्बन्ध था।¹ चौलकर्म एवं शिक्षा का प्रारम्भ एक ही समय होने से सम्भवतः ऐसा होता था।

उपनयन संस्कार:- उपनयन का शाब्दिक अर्थ है छात्र को गुरु के पास शिक्षा के लिए सुपुर्द करने के लिए ले जाना। मूल रूप में यह संस्कार उस समय होता था जब विद्यार्थी वैदिक शिक्षा का प्रारंभ करता था। उस काल में विद्यार्थी प्रायः गुरु के साथ ही रहते थे। तब यह संस्थान आवश्यक न था। धर्मसूत्रों से ज्ञात होता है कि 400 ई. पू. तक ऐसे उनके परिवार थे जिनमें एक-दो पीढ़ी तक यह संस्कार नहीं होता था। यदि कोई विद्यार्थी चरित्र या अयोग्यता के कारण वैदिक शिक्षा के योग्य न समझा जाता तो वह भी उपनयन संस्कार से वंचित रहता था। यदि अध्ययन-काल में ही वह अन्य अध्यापक के यहाँ जाता तो उपनयन पुनः करना पड़ता था। इतना ही नहीं, यह भी अनुभव किया जाता था कि यदि छात्र-जीवन में ही विद्यार्थी का विवाह हो जाता है और वह अपना अध्ययन जारी रखना चाहता तो उसका भी उपनयन संस्कार पुनः किया जाता था। यह संस्कार शिक्षा से ही सम्बद्ध था तथा आधुनिक काल में स्कूल और कॉलेजों में दाखिले की ही भाँति था। किन्तु कालान्तर में इसके गौरव में परिवर्तन हो गया। शताब्दियों के दीर्घकाल में वैदिक साहित्य में प्रचुर वृद्धि हो गयी थी। उसकी रक्षा के लिए यह आवश्यक समझा जाने लगा कि सम्पूर्ण आर्य जाति सहयोग करे। अतः उपनयन तथा वैदिक अध्ययन आर्यमात्र के लिए आवश्यक कर दिया गया तथा घोषित कर दिया गया कि

यदि कोई आर्य समय से उपनयन सम्पन्न नहीं कर लेगा तो उसे आर्यत्व से वंचित कर दिया जायेगा तथा आर्यों में उसका विवाह नहीं हो सकेगा और अन्य सामाजिक सम्बन्ध भी तोड़ दिये जायेंगे। यह कतिपय बाद में स्मृतिकारों ने लिखा कि इन संस्कारों का उद्देश्य शरीर का शुद्धि ही है। अतः इनका कथन है कि कुत्ते या शृगाल के काटने से शरीर के अशुद्ध हो जाने पर भी उपनयन संस्कार फिर से करना चाहिए। यदि पवित्र ब्राह्मण इस संस्कार के प्रताप से और भी पवित्र हो सकता है तो यहद जादू अन्य निर्जीव पदार्थों के सम्बन्ध में क्यों नहीं लग सकता? फिर क्या, मध्यकाल में यह संस्थान पवित्र पीपल-वृक्ष के लिए भी होने लगा ताकि वह उससे अधिक पवित्र हो। पर ये सब ढकोसले बहुत बाद के हैं जो यह प्रकट करते हैं कि समाज किस प्रकार धीरे-धीरे उपनयन के मूल उद्देश्य को भूल रहा है।

उपनयन और वैदिक अध्ययन के अधिकारी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य थे। इन्हें सामूहिक रूप में द्विज कहते हैं क्योंकि विश्वास किया जाता था कि उपनयन के अवसर पर उनका दूसरा जन्म-आध्यात्मिक होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब यह संस्कार आवश्यक हो गया तो शताब्दियों तक इन सभी वर्णों के लोग इसे पूरा करते थे। स्मृतियों में विभिन्न वर्णों के लिए पृथक-पृथक वस्तुओं की मेखला, दण्ड, यज्ञोपवीत का विधान है।

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।

आयुष्यमग्रं प्रतिमुच्य शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

उपनयन से वैदिक शिक्षा का प्रारम्भ होता था जो आधुनिक काल की माध्यमिक शिक्षा से मिलती-जुलती है। अतः स्वाभाविक है कि उपनयन के लिए 8 से 12 वर्ष के बीच कोई समय उपयुक्त समझा जाता था। प्रायः धर्मशास्त्रकारोंने ब्राह्मणों के लिए 8वें, क्षत्रियों के लिए 11वें तथा वैश्यों के लिए 12वीं वर्ष में उपनयन का आदेश दिया है। इन वर्गों की कोई विशेष पवित्रता नहीं कही गयी है। बौधायन आदि उनके धर्मशास्त्रकार 8-16 के बीच किसी भी समय को उपनयन के उपयुक्त मानते हैं। ब्राह्मणों के लिए कम उम्र में उपनयन का विधान करने में उनके लिए बौद्धिक उच्चता का कोई दावा उपस्थित करने की कोई बात न थी? ब्राह्मण परिवार में वंश-परम्परा के कारण कम उम्र में उपनयन सम्भव था पर क्षत्रियों और वैश्यों के साथ यह बात न थी। ब्राह्मण अपनी सन्तान की प्रायः अपने घर पर ही पढ़ाई प्रारम्भ कर देते थे, पर क्षत्रिय और वैश्यों के बालकों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए परिवार छोड़कर ब्राह्मण आचार्यों के पास जाना पड़ता था। अतः 11 या 12 वर्ष की उम्र इस कार्य के लिए उपयुक्त थी क्योंकि इस उम्र के बालक अपनी देखभाल कर लेने योग्य हो जाते हैं। ध्यान देने की बात है कि ब्राह्मण बालक श्वेतकेतु का उपनयन भी इसी उम्र में हुआ था जब वह अपनी शिक्षा के लिए आचार्य के पास चला गया। इससे यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मण-बालकों को भी यदि शिक्षा के लिए घर छोड़ना पड़ता तो उनका उपनयन इसी उम्र में होता था। घर से बाहर भेजने के इसी प्रकार के आवश्यक कारणों से आधुनिक काल में गाँवों और कस्बों के बालकों की माध्यमिक शिक्षा 11-12 वर्ष की उम्र में प्रारम्भ होती है। सुसंस्कृत ब्राह्मण-परिवारों में जहाँ बालकों की पढ़ाई में शीघ्र प्रगति का ध्यान रखा जाता था, 8 वर्ष से भी कम उम्र में उपनयन करने और वैदिक शिक्षा प्रारम्भ कर देने की परम्परा थी। यह चलन भी वैसा ही है जैसा आधुनिक काल में नगरों के सम्पन्न परिवारों में 6 या 7 वर्ष की उम्र में माध्यमिक या अंग्रेजी की शिक्षा का प्रारम्भ। अतः स्मृतिकारों ने विभिन्न परिस्थितियों और प्रकारों के परिवारों के लिए उपनयन की उम्र में पर्याप्त छूट दी है। किन्तु उनकी इच्छा थी कि उपनयन 12 वर्ष की उम्र में हो। क्योंकि वैदिक

शिक्षा के लिए मस्तिष्क के जितने विकसित होने की आवश्यकता होती है वह अल्पायु में ही थी।

एक शिक्षा-शास्त्री के लिए उपनयन संस्कार का सर्वेक्षण बड़ा ही शिक्षाप्रद होगा। संस्कार का प्रारम्भ कलेवे से होता है (स्नान से भी पूर्व) देश के गई भागों में रिवाज है कि इस अवसर पर बालक अपनी माता के बर्तन में ही उसके साथ खाता है। हिन्दू संस्कारों में स्नान से पूर्व जलपान अनोखा ही है। उपनयन के अवसर पर इस नियम में भंग का अर्थ यह है कि यह बात बालक को स्पष्ट कर दी जाती थी कि अब उसका अनियमित बालकपन का जीवन समाप्त हो रहा है। इतः पश्चात् उसे नियमित तथा गम्भीर होकर जीवन आगे ले जाना है। कलेवे के बाद बालक का मुण्डन कराया जाता था जो अधिकांश हिन्दू धार्मिक कृत्यों की मुख्य आवश्यकता है तदनन्तर बालक को नहलाया जाता था और उसे कौपीन दी जाती थी। इससे बालक को स्मरण दिलाया जाता था कि अब से उसे जीवन में मर्यादा, शिष्टता तथा आत्म-संयम का परित्याग नहीं करना है। कौपीन फिसल न जाये इसलिए उसे एक मेखला भी पहनायी जाती थी। मेखला में तीन डोरे रहती थीं। इस प्रतीक का तात्पर्य था विद्यार्थी को यह विश्वास दिलाना कि वह सर्वदा तीन से आवृत है। मेखला धारण के अवसर पर जो श्लोक पढ़ा जाता है उसमें बालक को बतलाया जाता है कि उसकी मेखला श्रद्धा की पुत्री तथा ऋषियों की भगिनी है। उसमें बालक की पवित्रता की रक्षा करने की शक्ति है। वह उसे सम्पूर्ण बुराईयों से रक्षित करेगी। हिन्दू शिष्टाचार में धार्मिक कृत्यों के समय शरीर के ऊपरी भाग को वस्त्र से ढँके रखने का विधान है। अतः उपनयन के अवसर पर बालक को उत्तरीय दिया जाता था। अत्यन्त प्राचीन काल में जब कातने-बुनने की कला अज्ञात थी, सम्भवतः इस कार्य के लिए मृग-चर्म दिया जाता था। बालक को बतलाया जाता था कि मृग-चर्म ब्रह्मवर्चसाम् का प्रतीक है। इसके प्रयोग से उसे सच्चरित्र और मनीषी के रूप में यश कमाने की प्रेरणा लेनी चाहिए। कातने-बुनने की कला प्रचलित हो जाने पर उसे वस्त्र दिया जाने लगा जो परिवार में इस उत्सव से ठीक पहले इसी कार्य के लिए तैयार किया जाता था। गृह्यसूत्रों में इस संस्कार का ब्यौरेवार वर्णन मिलता है। इनके अध्ययन से पता चलता है कि यज्ञोपवीत उपनयन संस्कार का अंग न था। यज्ञोपवीत के स्थान पर उत्तरीय दिया जाता था या यह हक कि यही उत्तरीय यज्ञोपवीत का पूर्वज था। परिशिष्ट घ में यज्ञोपवीत के इतिहास और महत्व पर विचार करते समय इसकी विस्तार से चर्चा की गयी है।

उपर्युक्त क्रियाओं के अनन्तर बालक को अग्नि के सामने ले जाते थे, जो हिन्दी-यूरोपियनों की आदिम देवता हैं। प्रज्ज्वलित अग्नि में बालक हवन के रूप में समिध देता था। इस अवसर पर पढ़े जाने वाले मन्त्रों में अग्नि से बालक पर कृपादृष्टि रखने तथा उसकी बुद्धि, मेधा और बल में वृद्धि करने की प्रार्थना की जाती थी ताकि अग्नि की शिखाओं की भाँति दिग्दिगन्त में उसको विद्या और बल की कीर्ति फैल जाय। बालक में पवित्रता की भावना और दृढ़ करने के लिए उससे भग, यम, आर्यमा और सविता जैसे वैदिक देवताओं की आराधना करायी जाती थी। सविता विद्यार्थियों का अधिष्ठाता देव है जो चोट, रोग और मृत्यु के उसकी रक्षा करता है। इस आराधना के अनन्तर आचार्य विद्यार्थी को विश्वास दिलाता था कि अब देव उसकी रक्षा करेंगे। इस अभिज्ञा से अब वह निर्भय होकर विद्याभ्यास करें।

तदनन्तर विद्यार्थी को आचार्य के सम्मुख उपस्थित किया जाता था। आचार्य उससे पूछता था कि तुम किसके ब्रह्मचारी हो। स्वाभाविक था कि विद्यार्थी उत्तर देता कि मैं आपका ही ब्रह्मचारी हूँ। आचार्य संशोधन करते हुए

कहता था कि नहीं, तुम इन्द्र के ब्रह्मचारी हो, पहले अग्नि तुम्हारा आचार्य है पीछे हम (इन्द्र और अग्नि शक्तिशाली और लोकप्रिय वैदिक देव है)। जब वास्तविक रूप में आचार्य विद्यार्थी का दायों हाथ ग्रहण कर उसे शिष्य-रूप में स्वीकृत करता तो कहता कि मैं सविता की आज्ञा से ही तुम्हें शिष्य-रूप में स्वीकार कर रहा हूँ। तब विद्यार्थी के हृदय पर हाथ रखकर आचार्य कामना करता कि तुम्हारे और मेरे बीच सर्वदा प्रेम व विश्वास बना रहे। यह सब यही प्रदर्शित करने के लिए होता था कि आचार्य और शिष्य का सम्बन्ध अत्यन्त ही पुनीत होता है। इसका आधार रूपया-पैसा नहीं है। शिक्षक और विद्यार्थी में पूर्ण सद्भावना, सहानुभूति और हार्दिक प्रेम से ही शिक्षा में प्रगति सम्भव है।⁹

उस काल में ब्रह्मचारियों से आशा की जाती थी कि वे भोजन की भिक्षा मधुकरी वृत्ति से माँगकर अपना भरण-पोषण कर लेंगे। इसलिए उपनयन के दिन से ही इसका अभ्यास प्रारंभ हो जाता था। किन्तु प्रथम दिन तो भिक्षा रस्मी ही होती थी क्योंकि उस दिन बालक उन्हीं से भिक्षा माँगता था जो उसकी प्रार्थना नहीं टुकरा सकते थे। अतः सर्वप्रथम वह अपनी माता के पास जाता था, फिर बहन के पास और तब अन्य सम्बन्धितों के पास। आधुनिक काल में उपनयन संस्कारों में तो इसी रस्मी भिक्षा ने शाही जुलूस का रूप ले लिया है जो नगर और गाँव की सड़कों से घुमाया जाता है।

मेधाजनन संस्कार:- कहा जाता था कि उपनयन के पश्चात् तीन दिनों तक बालक गर्भावस्था में रहता है, चौथे दिन उसका आध्यात्मिक जन्म होता है। बालक की धारण-शक्ति और वृद्धि प्रखर करने के लिए आचार्य जो अब ब्रह्मचारी का पितृ-स्थानीय भी था, उसका मेधाजनन संस्कार करता था। प्रार्थना की जाती थी कि बालक की मेधा गाय-सी आकर्षक, साँड-सी शक्तिशाली तथा सूर्य की रश्मियों की भाँति प्रखर हो तथा यान्त्रिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में समान रूप से प्रभावकारी हो। मेधाजनन संस्कार उपनयन की समाप्ति का सूचक था।¹⁰

जिस समय उपनयन संस्कार और मन्त्रों का महत्व लोकविदित था, संस्कार के विभिन्न अंगों के प्रतीकों का कितना गम्भीर प्रभाव इस संस्कार से सम्बद्ध व्यक्तियों पर पड़ता रहा होगा? यह संस्कार ब्रह्मचर्य जीवन के प्रारम्भ के नये अध्याय की भूमिका-सा था, मयाध्दा, शिष्टता और आत्म-संयम जिस जीवन की प्रमुख विशेषताएँ थीं।¹¹ ब्रह्मचारी अपने को ज्ञान के पक्ष का एक आत्म-निर्भर यात्री समझता था। यह यात्रा लम्बी और कष्टों से भरी है। किन्तु यदि ब्रह्मचारी में उद्देश्य की एकाग्रता, अध्यन के प्रति निष्ठा तथा आचार्य और उसके मध्य सद्भावना है, तो वह निश्चय ही अपने उद्देश्यों में सफल होगा।

निष्कर्ष:- इस प्रकार यह माना जा सकता है कि मानव समाज में जितना आवश्यक शिक्षा प्राप्त करना है उतना ही उससे सम्बन्धित संस्कारों का निर्वहन करना। शैक्षिक संस्कार अध्ययन काल को सुचारु व सुव्यवस्थित रूप से चलायमान रखते हैं। संस्कार व्यक्ति व समाज को अपने कर्म के प्रति अनुशासित समर्पित, लगनशील व कर्तव्यनिष्ठ बनाते हैं।

आत्मशरीरान्तनिष्ठो विहितं। क्रियाजन्योऽतिशिय विशेषः संस्कार
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेहच॥

संदर्भ सूची :-

1. संस्कारमयूर श्लोक 76।
2. उत्तररामचरित, अंक 2।
3. श्री वशिष्ठ संहिता, नक्षत्र स्वरूप अध्याय, श्लोक 43।

4. मिश्र भास्कर, वैदिक शिक्षा पद्धति, महर्षि सन्दीपनी राष्ट्रीय वेद-विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन, पृष्ठ सं 106।
5. तथैव 108।
6. पृ.योग याज्ञवल्क्य का वचन पृ. 299।
7. डॉ. मनुदेव, आधुनिक भारत में संस्कृत-शिक्षा और गुरुकुल, जे.पी. पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, पृ. 19।
8. अल्तेकर अनंत सदाशिव, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अनुराग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ सं 196।
9. छान्दोग्यपनिषद् 5-2।
10. तथैव पृ.सं 204।
11. अपरार्क 1-29।

अयन

Literature, Society, Humanities Discourse
(An International Multi-disciplinary Peer Reviewed and
Refereed Research Journal)

Editor in Chief

Prof. Kumar Pankaj

Former Dean, Faculty of Arts,
(Banaras Hindu University, Varanasi)

Editor

Dr. Vikash Kumar

Assistant Professor, Iswar Saran P.G. College,
University of Allahabad, Prayagraj (U.P.)

Dr. Kumar Varun

Assistant Professor, Jai Prakash University,
Chapra (Bihar)

Volume : 12

No. 3

July-September

Year- 2024

Published by

Lok Manav Samaj Kalyan Sansthan
Aurangabad (Bihar)-824101

गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था का राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान में महत्व

रास बिहारी शरण पाण्डेय

शोध छात्र, वैकल्पिक शिक्षा विभाग, सांची विश्वविद्यालय, सांची, (मध्यप्रदेश)

डा० प्रभाकर पाण्डेय

विभागाध्यक्ष, वैकल्पिक शिक्षा विभाग, सांची विश्वविद्यालय, सांची, (मध्यप्रदेश)

शिक्षा दुनिया को नहीं बदलती है, शिक्षा लोगों को बदलती है और लोग दुनिया को बदलते हैं। इस कथन के परिपेक्ष्य में देखा जाये तो, शिक्षा मानव विकाश के मूलभूत स्तम्भों में से एक है। किसी भी संस्कृति, समाज, समुदाय व राष्ट्र की उन्नति अथवा उन्नतिहीनता की माप वहाँ की शिक्षा के स्तर को देखकर ही किया जा सकता है, ऐसे में शिक्षा किसी भी राष्ट्र के लिये महत्वपूर्ण आवश्यकता बन जाती है, और साथ में यह भी आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा प्रगतिशील, विकासोन्मुखी, समावेशी व सर्वाधिकार को संरक्षित करने वाली हो। शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा के गुणवत्ता के अतिरिक्त परिवेश, अवसंरचना जैसी चीजों की गुणवत्ता भी आवश्यक हो जाती है, ऐसा न होने से अन्तिम रूप से शिक्षा की गुणवत्ता ही प्रभावित होती है। किसी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक उत्थान में शिक्षा का सर्वाधिक योगदान है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था गुरुकुल आधारित शिक्षा व्यवस्था है जहाँ पर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक योगदान के साथ-साथ राष्ट्र के सांस्कृतिक विकास में भी महती भूमिका प्रदान करते हैं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था विश्व की प्राचीनता सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में से एक है। यह विश्व बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत वैदिक ऋषियों के अनुभवों पर आधारित है। भारतीय संस्कृति की विशेषता यह है कि इसमें भौतिकवाद की अपेक्षा आध्यात्मवाद को आधार स्तम्भ बनाया गया है। यहाँ उपभोग नहीं उपयोग प्रथम स्थान प्राप्त है। यहाँ पर योग, त्याग, तपस्या और तपोवन की प्रधानता रही है। भारतीय संस्कृति हमारे पूर्वजों, ऋषि मुनियों एवं तपस्वियों की धरोवर है। ऋषि मुनि जंगलों में आश्रम बनाकर अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे तथा वहीं पर गुरुकुलों की व्यवस्था करते थे। राजा महाराजा और दास आदि सभी अपने बच्चों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए गुरुकुल में गुरु के सानिध्य में भेजते थे। गुरु पिता के समान सभी बच्चों का ध्यान रखते थे। भगवान राम, कृष्ण तथा पाण्डवों सभी की शिक्षा गुरुकुलों में होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं यहाँ बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त होती थी।

भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है, वर्णाश्रम व्यवस्था। वर्णाश्रम व्यवस्था का मूल आधार कर्म सिद्धान्त है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों से अपेक्षा की जाती थी कि वे अपने कर्तव्यों का पालन करें। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों का विभाजन भी आवश्यकतानुसार

कर्त्तव्य निर्वाह के लिए ही किया गया था। वैदिक वर्ण-व्यवस्था का आधार गुण कर्म है, जाति नहीं। वैदिक व्यवस्था के अनुसार कर्महीन, आलसी और मानवीय

**अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः
त्वं तस्यामित्राह्न वधर्दास्य तम्भय॥ ऋग्वेद**

भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय में भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा — तेरा कर्म में अधिकार है, फल में नहीं। यदि कर्मफल में तेरी तृष्णा होती तो तू कर्मफल प्राप्ति का कारण होगा। अतः तू कर्मफल प्राप्ति का कारण मत बन —

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफल हेतुर्भुमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥¹

भारतीय संस्कृति में कर्तव्यों के लिए धर्म शब्द का भी प्रयोग किया गया है, जैसे ब्रह्मचारी का धर्म है शिक्षा उपार्जित करना, गुरु का धर्म है निःस्वार्थ भाव से शिक्षा देना। पिता का धर्म है अपनी सन्तान का पालन-पोषण करना।

भारतीय संस्कृति में समाज का संगठन वर्णाश्रम परम्परा के आधार पर ही हुआ। ऋषियों ने समाज का विभाजन चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों में किया। यह चारण वर्ण चार आश्रमों — “ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास” की परम्पराओं का पालन करते थे।

वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति :— वर्ण शब्द की रचना वृष वरणों धातु से निषपन्न होती है। इसका अर्थ है — चुन लेना। मनुष्य अपने स्वभाव तथा योग्यता के आधार पर वर्ण चुनता है। आचार्य यास्क ने वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति वृ धातु से मानी है — वज्राँ वृणोतेः। जिसका अर्थ है चुनाव करना ऋग्वेद में वर्ण शब्द रंग का जनसमूह के रूप में भी आया है। वामन शिवराम आप्टे ने वर्ण मनुष्यप्रेमी, जनजाति, कबीला, ब्राह्मणादि जाति वंश आदि। कार्य विभाजन के लिए समाज को विभिन्न योग्यता के व्यक्तियों की आवश्यकता होती है क्योंकि एक व्यक्ति समाज में भी कार्य को सम्पन्न नहीं कर सकता है। विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार के गुण एवं योग्यता होती है। इन्हीं गुणों तथा योग्यता के आधार पर वह समाज में अपना स्थान बनाता है तथा कार्य करता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर प्राचीन ऋषियों ने समाज के संचालन के लिए चार वर्णों का विभाजन किया था। ऋग्वेद के वर्ण शब्द का प्रयोग गई स्थानों पर किया गया है, किन्तु इसका अर्थ रंग अथवा प्रकार से है।

भारतीय संस्कृति में वर्ण व्यवस्था के प्रारम्भ का प्रथम संकेत (ऋग्वेद) के पुरुष सूक्त में है। हमारा संस्कृत साहित्य मानता है कि वर्णचतुष्टय की व्यवस्था ईश्वर द्वारा स्थापित की गई है। ऋग्वेद का अधोलिखित मन्त्र इस मान्यता का प्रारम्भिक सूत्र है —

ब्रह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः।

उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥²

1 श्रीमद्भगवद्गीता 2.47

2 ऋग्वेद के पुरुष सूक्त

भारतीय संस्कृति में ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के उक्त मन्त्र से वर्णव्यवस्था का प्रथम परिचय मिलता है। इसी के माध्यम से विभिन्न वर्णों के कर्तव्यों की सूचना भी प्राप्त होती है। ब्राह्मण पुरुष का मुख है, जिस प्रकार मुख शरीर के सभी अंगों में श्रेष्ठ है, उसका कार्य विचार करना, विद्याध्ययन करना, शारीरिक क्रियाओं का नियन्त्रण करना आदि है, उसी प्रकार ब्राह्मण समाज में सर्वश्रेष्ठ होते हैं। वे अध्ययन अध्यापन में संलग्न रहते हैं तथा समाज का मार्गदर्शक करते हैं। क्षत्रिय पुरुष की भुजाएं हैं। जिस प्रकार भुजाएं शरीर की रक्षा करती हैं, उसी प्रकार क्षत्रियों का कर्तव्य भी समाज की रक्षा करना है। वैश्य पुरुष का उरु है। जिस प्रकार उरु शरीर का पोषण करता है, उसी प्रकार वैश्य समाज का पोष करते हैं। पुरुष के पैर शूद्र हैं। जिस प्रकार पैर शरीर की सेवा करते हैं, उसी प्रकार शूद्र भी समाज की सेवा करते हैं।

यजुर्वेद संहिता में भी समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया है— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र

रुचं नो धेहि ब्रह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।

रुचं विष्णेषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥

यजुर्वेद के अनुसार स्वयं को अध्ययन हेतु समर्पित करने वाला ही ब्राह्मण है। युद्ध की क्रिया हेतु समर्पित क्षत्रिय हैं धनोपार्जन सम्बन्धी ज्ञान से परिपूर्ण वैश्य है, जिस पर देश तथा जनता के भरण-पोषण तथा समृद्धि का उत्तरदायित्व है, जो अन्य सम्पूर्ण वर्णों से ही हो वह समाज की सेवा करता है तथा उसे शूद्र वर्ण में रखा गया है।

भारतीय संस्कृति की शिक्षा पद्धति में सम्पूर्ण वर्णों के लिए नियम कर्मानुसार शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। सम्पूर्ण वर्ग के लोग ब्रह्मचर्याश्रम में निश्चित कर्मों की प्राप्ति हेतु आवश्यक शिक्षा ग्रहण करते थे, जिससे राष्ट्र तथा समाज के उत्कर्ष हेतु सभी कर्मों का विधिवत सम्पादन हो सके। प्राचीन ग्रन्थों में अध्यापन, दान, यज्ञ, अध्ययन, भजन, तप आदि ब्राह्मण के लक्षण बताये गये हैं, शेष वर्ण उनके निर्देश पर चलते हैं। ज्ञान, तप, संस्कार से युक्त ब्राह्मण सभी वर्णों का स्वामी है। वेदों का अध्ययन करके ही ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर सकता है। वेदानधीत्य वेदों का वेद वापि यथामम्। अविलुप्त ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रमावसेत् 'मनुस्मृति' इसी के साथ ही मनु ने अन्य विधाओं के अध्ययन की ओर भी संकेत किया है। यथा—धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, अर्थशास्त्र आदि। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में वेदों के अध्यापन की विशेष व्यवस्था की जाती थी तथा पाठ की शुद्धता की ओर ध्यान दिया जाता था। इन सभी विषयों का अध्ययन शिष्य गुरुकुल में रहकर करता था। गुरुकुल में रहकर वह गुरुकुल के सभी नियमों का पालन करता था।

भारतीय संस्कृति गुरु और शिष्य परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। वैदिक एवं ऋग्वैदिक काल से ही नहीं अपितु आज भी गुरुकुल पद्धति उतनी ही महत्वपूर्ण है। हमारे देश में बेड़-बड़े ऋषि मुनि हुए हैं जिन्होंने इस पद्धति को आगे बढ़ाया है। प्राचीन काल में सभी छात्र गुरुकुल में अध्ययन

करते थे। राजा का पुत्र हो अथवा सैनिक का सभी बच्चे गुरुकुल में एक साथ रहकर अध्ययन करते थे। ऊँच-नीच का भेद भुलाकर गुरु सभी को धार्मिक शिक्षा, वेदों का अध्ययन एवं अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान देते थे। सभी की दिनचर्या एक समान थी। सभी छात्र अपना कार्य स्वयं करते थे।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति एक ऐसी पद्धति है जिसमें मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। यदि हम अपने राष्ट्र का विकास चाहते हैं तो उनके लिए हमारा संस्कारवान एवं शिक्षित होना अति आवश्यक है। इसके साथ-साथ हमें ऐसे गुरुजनों की आवश्यकता है, जो निस्वार्थभाव से हमारा मार्ग-दर्शन कर सकें। क्योंकि गुरु समाज की रीढ़ की हड्डी होता है। गुरु के हाथ में समाज तथा राष्ट्र के निर्माण की कमान होती है।

प्राचीन काल से ही भारत में शिक्षा के लिए गुरुकुल की व्यवस्था थी, जहाँ गुरु एवं शिष्य एक साथ रहते थे तथा गुरु अपने शिष्य को हर प्रकार का ज्ञान देता था। वेदों उपनिषदों एवं धार्मिक ग्रन्थों की शिक्षा देता था। शिष्य के सर्वांगीण विकास की जिम्मेदारी एक गुरु के कंधों पर होती थी। छात्रों का मूल्यांकन किताबी ज्ञान के आधार पर नहीं अपितु व्यवहारिक ज्ञान पर होता था। गुरुकुल में रहकर ही वह सभी ग्रन्थों का अध्ययन करता था। मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को सोलह संस्कारों पर आधारित बताया गया है, ये संस्कार उसके जीवन में बहुत अधिक महत्व रखते हैं। ये संस्कार गर्भाधान अर्थात् मनुष्य के जन्म से पूर्व ही प्रारम्भ हो जाते हैं तथा मनुष्य के जीवन के बाद अर्थात् अन्त्येष्टि संस्कार तक चलते हैं।¹ सोलह संस्कारों का क्रम इस प्रकार है :-

1. गर्भाधान संस्कार
2. पुंसवन संस्कार
3. सीमान्तोनयन संस्कार
4. जातकर्म संस्कार
5. नामकरण संस्कार
6. निष्क्रमणसंस्कार संस्कार
7. अन्नप्रकाशन संस्कार
8. चूडाकर्म संस्कार
9. कर्णभेध संस्कार
10. उपनयन संस्कार
11. वेदारम्भ संस्कार
12. समावर्तन संस्कार
13. विवाह संस्कार
14. ग्रहयश्रम संस्कार
15. वानप्रस्थ संस्कार
16. अन्त्येष्टि कर्म संस्कार

इनमें से कुछ मुख्य संस्कार ऐसे हैं जो गुरुकुल में कराये जाते हैं। जैसे विद्यारम्भ, वेदारम्भ, उपनयन संस्कार तथा समावर्तन संस्कार। ब्रह्मचर्य

जीवन में इन संस्कारों का बहुत अधिक महत्व है। जब एक बालक गुरुकुल में प्रवेश करता है तो उसे गुरुकुल के सभी नियमों का पालन करना होता है — जैसे— प्रातः काल शीघ्र उठना, हवन करना, वेदों का अध्ययन करना तथा अपने छोटे-छोटे कार्यों का स्वयं करना।

उपनयन संस्कार — जन्म के आठवें वर्ष में यह संस्कार किया जाता है। जिस दिन यह संस्कार करना हो उससे तीन दिन पूर्व अथवा एक दिन पूर्व बालक को व्रत कराया जाता है।

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।

आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि संस्कार विधि

यज्ञोपवित में तीन धागे होते हैं जो शिष्य को ऋषिऋण, पितृऋण तथा देवऋण का सदैव स्मरण कराता है।

इस मंत्र को बोलके आचार्य बायें स्कन्ध के ऊपर कण्ठ के पास से सिर बीच में निकाल दाहिने हाथ के नीचे बगल में निकाल काटे तक धारण करावे तत्पश्चात् बालक को अपने दाहिने ओर साथ बैठाके ईश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना आदि मंत्रों का जाप कराये।¹

वेदारम्भ संस्कार :-

जो दिन उपनयन संस्कार का है वहीं वेदारम्भ का है। यदि उस दिवस में न हो सके तो दूसरे दिन अथवा एक वर्ष के भीतर यह संस्कार होता है। गुरुकुल में यह संस्कार गुरु शिष्य को लेके उत्तरमासन पर वेदी के पूर्वाभिमुख बैठे।² इस प्रकार की पद्धति बालक को ज्ञानी, सहनशील तथा आज्ञाकारी संस्कार देती है। बालक माता—पिता तथा गुरु एवं अपने बड़ों का आदर सत्कार करना सीखता है। गुरुकुल में बालक प्रातः काल उठते हैं।³ ईश्वर की स्तुति करते हैं। हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके शरीर एवं आत्मा की रक्षा के लिए ईश्वर की स्तुति करते हैं।

प्रातरग्नि प्रातरिन्द्र हवामहे प्रातमित्रावरुणा प्रातरश्विना।

प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पति प्रातः सोमगुत रूदं हुवेम॥⁴

जिस परमात्मा ने सूर्य, चन्द्र को उत्पन्न किया है, उस परमात्मा की हम स्तुति करते हैं। इस प्रकार के संस्कार गुरुकुल में बालक को दिए जाते हैं उसके बाद हवन किया जाता है, हवन में भी ईश्वर से अच्छा स्वास्थ्य तथा सम्पूर्ण संसार की सुख शान्ति के लिए प्रार्थना करते हैं⁵। उस प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की स्तुति करते हैं। ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना मन्त्र।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।

1 श्री वशिष्ठ संहिता, नक्षत्र स्वरूप अध्याय, श्लोक 43।

2 संस्कारमयूर श्लोक 76।

3 मिश्र भास्कर, वैदिक शिक्षा पद्धति, महर्षि सन्दीपनी राष्ट्रीय वेद—विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन, पृष्ठ सं 106।

4 ऋग्वेद 6/41/2

5 छान्दोग्यनिषद 5-2।

यद्भद्रं तन्न आ सुव ।।१।। १

भावार्थ —

तू सर्वेश सकल सुख दाता शुद्धस्वरूप विधाता है।
उसके कष्ट नष्ट हो जाते शरण तेरी जो आता है।
सारे दुर्गव दुर्व्यसनों से हमको नाथ बचा लीजे।
मंगलमय गुण कर्म पदारथ प्रेम सिन्धु हमको दीजे।।

अतः गुरुकुल में किताबी ज्ञान के साथ-साथ मनुष्य को सभी प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है। हमें जीवन किस प्रकार होना चाहिए गुरुकुल शिक्षा हमें यह सिखाती है। गुरुकुल पद्धति हमें सम्पूर्ण विश्व की मंगल कामना का पाठ सिखाती है।

सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु या कश्चिद् दुःखभाग भवेत्।।

भावार्थ

सबका भला करो भगवान
सब पर दया करो भगवान
सबको दो वेदों का ज्ञान
सबका सबविधि हो कल्याण।

उक्त विवेचन यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संस्कृति एवं गुरुकुल शिक्षा पद्धति का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। समाज की आवश्यकता की पूर्ति एवं राष्ट्रीत्थान में गुरुकुल पद्धतिका बड़ा योगदान है। इस शिक्षा पद्धति से अध्ययन, अध्यापन, वेद की रक्षा तथा समाज के लोगों का मानसिक तथा आत्मिक उत्थान होता है।

धरोहर

धरोहर पुरास्थल, पुरावस्तु एवं सामाजिक संरक्षण संस्था

Dharohar Purasthal Puravastu Evam Samajik Sanrakshan Sanstha
Registration No. 10697/2002 (Non Govt. Orgainzation)



ज्ञात-अल्पज्ञात स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, घटना एवं घटना स्थल पर आधारित
आलेख एवं पेंटिंग कार्यशाला

शौर्यगाथा

22nd December, 2022, Bhopal

Organised by

Dharohar Purasthal, Puravastu Evam Samajik Sanrakshan Sanstha
in collaboration with
Sanskriti Sanchalnalaya, Madhayapradesh

CERTIFICATE

प्रमाणित किया जाता है कि रासु बिहारी राय पाण्डेय..... ने 22 दिसम्बर, 2022
को स्वराज संस्थान भोपाल में आयोजित शौर्यगाथा आलेख एवं पेंटिंग कार्यशाला में भाग
लिया। आपके द्वारा प्रस्तुत आलेख / पेंटिंग का विषय स्वतंत्रता हेतु शैक्षिक संस्थानों में
कानूनी गतिविधियाँ..... है।

Neelima Gurjar
Convenor

Pooja Saxena
Organizing Secretary

Dharohar



राष्ट्रीय संगोष्ठी



स्वाधीनता आंदोलन का विमर्श: तब और अब

अमृत काल के परिप्रेक्ष्य में

24 दिसम्बर, 2022, रवीन्द्र भवन, भोपाल (म.प्र.)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/श्रीमती/डॉ./प्रो. रास बिहारी शरण पाण्डेय ने

स्वराज संस्थान संचालनालय, म.प्र. शासन एवं धरोहर संस्था के सहयोग से दत्तोपन्त ठेंगड़ी शोध संस्थान, भोपाल द्वारा रवीन्द्र भवन में आयोजित एक दिवसीय

(24 दिसम्बर, 2022) राष्ट्रीय संगोष्ठी 'स्वाधीनता आंदोलन का विमर्श : तब और अब (अमृत काल के परिप्रेक्ष्य में)' वक्ता / प्रतिभागी / सत्र-संचालक /

अध्यक्ष के तौर पर सहभाग किया। इन्होंने संगोष्ठी में अपना शोध पत्र वैदिक शिक्षा पद्धति में औपनिवेशिक छाल प्रभाव

..... प्रस्तुत किया।

(डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा)

निदेशक

दत्तोपन्त ठेंगड़ी शोध संस्थान

(प्रो. संतोष कुमार वर्मा)

उप संचालक

स्वराज संस्थान संचालनालय, म.प्र. शासन

(पूजा सक्सेना)

आयोजन सचिव

धरोहर संस्था



स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, म.प्र. शासन
दत्तोपन्त ठेंगड़ी शोध संस्थान एवं धरोहर संस्था, भोपाल का आयोजन

